❀ सद्गुरवे नमः ❀

सत्यज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

(नव नियम सहित)

लेखक व टीकाकार-

प्रेमदास

* सद्गुरवे नमः *

सद्ग्रन्थ

सत्यज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

नव नियम बीजकादि प्रमाणों के सहित

लेखक—

शान्ति सन्देशक वैराग्य प्रवर गुरुवर

श्री विशाल साहेब के शिष्य

'प्रेमदास'

प्रकाशक—

दस्तगीर

सन् १९९९ —०— मूल्य रु० १६.००

अर्पण

छंद—हे दयासागर ज्ञान आगर पतितपावन नाथ हो।
हे तरण तारण ताप हारण दीनबन्धो साथ हो॥
हे शरण रक्षक सत्य शिक्षक मान मद गो जीत हो।
हे शांति मूरति भ्रांति नाशक हम अधम के मीत हो॥
हे बोध कर्त्ता पाप हर्त्ता सूर्य सम तव ज्ञान हो।
हे पूर्ण त्यागी हम सबों को ज्ञान दीना दान हो॥
हे भक्त मन रंजन सकल दुख भंजनं कबीर हो।
हें सद्गुरो हो मुक्त जीवन धीर हो गम्भीर हो॥
हे परख रूप बिशाल गरुबर संत रूप भुवाल हो।
सादर समर्पित प्रेम ये है पुस्तकं जय माल हो॥
हे सदगुरो! मुझ में नहीं कुछ आप का सब ज्ञान है।
आप को हम अर्पते हैं क्या मेरा अहिसान है॥

[दास की भावना]

छंद—जेहि सत्य पद में शांत होकर सत्य बादी सब भये।
जेहि गुरु रहस्य को धार के सब संत भवनिधि तर गये॥
जेहि रीति प्रीति प्रतीति लहि गुरु शिष्य धारा धर्म से।
सोई सद्गुरु का न्याय वर जेहि परख थिति हो पर्म से॥१॥
परख पद के बोध कर्त्ता दे अधार निर्बाह जू।
नित्य नौमि नमामि शतसः भक्ति दान प्रदान जू॥
आप पद को छोड़ि भटकत ताप त्रय अति दाह जू।
गुरु पद प्रकाश के पावते यह जीव शांत अचाह जू॥२॥
प्रतिकूलता विद्रोहता सारी विषमता नष्ट भौ।
हृदि सर्व पल स्थित भया जग राग द्वेषहिं कष्ट गौ॥
अब सर्व गुण ग्राही बने बलवान पद में तिष्ठ भौ।
गुरु कृपा के सेवते को नहिं भला जन श्रेष्ठ भौ॥३॥

पूज्यपाद सद्गुरु श्री बिशाल देव के आश्रित

दस्तगीर कबीरपंथी

ग्रन्थ-प्रवेश

इस सद्ग्रन्थ में क्या वर्णन है ? यह तो पूरा पढ़ कर ही जाना जा सकता है । प्रथम प्रवेश द्वार में कुछ सावधानी पर चर्चा करनी है । बुद्धि विभेद रहना सदा से ही अनिवार्य है, इससे यह नहीं कि स्व सिद्धान्त का परिचय न देना, देना अवश्य ! पर सोच विचार कर ! दोनों प्रकार से सद्ग्रन्थों में निर्देश पाया गया है । 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्' गीता मेंभी कहा है 'इसलिये तत्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुये प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान' वे मर्म को जानने वाले ज्ञानी जन तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेगें । ४-३४

दोहा—कहत सकल मत पंथ है, इक स्वर से यह बात ।
सत्यज्ञान श्रद्धा विना, कबहुँ न हृदय समात ॥
(स० मणिमाला)

सबसे ज्ञान कथने की मनाही भी की गयी है—

साखी—हीरा तहां न खोलिये, जहँ कुजरों की हाट ।
सहजै गांठि बाँधि के, लगिये अपनी बाट ॥

पंडित सो बोलिय हितकारी । मूरख सो रहिये झख मारी ॥ बीजक

अतएव

बचन कहो संसार में, सबकी बुद्धि समान ।
जहाँ बुद्धि पहुँचै नहीं, तहाँ न करौ बखान ॥

क्या रेल में, मोटर में या पैदल यात्रा में हमारे साथ कोई थोड़ी दूर का या बहुत दूर का साथी मिल जाय जो कि हमारे गाँव को न जानता हो तो क्या उससे लड़ना-झगड़ना मार कूट या राष द्वेष बढ़ाना

ठीक है ? कदापि नहीं ! सद्बुद्धि यह नहीं कहती कि आप भी करके पछतायें और दूसरा भी पश्चताप करे।

दोहा—जा कारज के किये ते, अन्त होय पछताप।
तिसे आरम्भ मत कीजिये, आदि विचारो आप॥

सार निर्णय यह है कि सिद्धान्त वाद की छेड़बाजी सबसे मत कीजिये, प्रथम रहस्यवाद पर ही चर्चा चलाइये, क्योंकि सदाचार दैवी सम्पति साधु गुण, मानव धर्म, उच्चतम आचरण ये सब लगभग सबके सब शुभ ग्रन्थों में आदेश दिये गये हैं—जैसे मनुजी ने १० धर्म के लक्षण बताये हैं यथा—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीः विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥ अर्थ—धैर्य क्षमा, मनो दमन, चोरी परित्याग, पवित्राचार, इन्द्रिय जीतना, सद्बुद्धि बढ़ाना, विद्या सद्बोध प्रकाश लेना, या लौकिक विद्या पढ़ते हुये पारलौकिक विद्या का ज्ञान लेना। सत्य और क्रोध विहीनत्व इस प्रकार सर्व को दश लक्षण लेना कर्तव्य पथ है। सद्गुरु श्री कबीर देव कहते हैं।

आपा तजे हरि भजे, नख शिख तजे विकार।
सब जीवन से निर्वैर रहे, साधु मता है सार॥

रामायण में कहा गया है—

दोहा—शुचि सुशील सेवक सुमति, कहु प्रिय काहि न लाग।
वेद पुराण कहे नीति अस, सावधान सुनु काग॥
उमा जो रामचरण रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहि जगत, कासन करहि विरोध॥

सारांश यह कि किसी भी मत से देखिये अनधिकारी के लिये कथन असिद्ध है। सबके मिलने पर परस्पर शील विनम्रता शिष्टाचार धारण करना उचित है और रहस्याचरण पर प्रथम कहना सुनना शांत वर्धक है। सिद्धान्तकी बात कोई किसीको एकाएकी बैठा नहीं सकता। हठी, पक्षी, अनमिल और अन्य दिशा लक्षक को कोई एकाएक नहीं समझा

सकता। न समझा पाने पर सत्य मत मिथ्या नहीं हो सकता, क्योंकि आँख बन्द कर लेने या अन्य दिशा देखने पर भी सूर्य मिथ्या नहीं होता, किसी मत पथ ग्रन्थ के अधिक प्रचार या कम प्रचार से भी सत्यासत्य निर्णय नहीं होता, सत्य तो सत्य के गुण धर्मों के साधर्म्य लक्षण विधानों के द्वारा अधिकारी शुद्ध शोधक इच्छुक को ही समझाया जा सकता है।

छन्द—सत्य के सन्मुख कभी मिथ्यात्व आता है नहीं।
मिथ्यात्व के सन्मुख कभी भी सत्य भाता है नहीं॥
क्या सत्य है इस शोध हित सब ग्रन्थ पंथ अनन्त हैं।
गुण लक्षणों से जानिये गुण लक्ष शोध लहन्त हैं॥ १॥

सत्संग प्रेम प्रकाश है सत्संग खोलै नेत्र को।
सद्ग्रन्थ मर्म तभी लहे जब संग ज्ञान सु हेत को॥
जस बुद्धि है तस मान सो इस हेतु बैर न कीजिये।
जस चल सके जस योग्यता तस शोध बोध सु लीजिये॥ २॥

सब पन्थ में क्षमता व समता शीलता धारण कहे।
इस हेतु मान मर्दि केहु निर्वाण प्रिय चारण लहे॥
जब अधिक सम्मेल हो जब चाव गर्ज सु भाव हो।
तब ही कहिय सिद्धान्त पारख बीज भूमि प्रभाव हो॥ ३॥

दोहा—बुद्धि पृथक पर क्रोध क्या, अपनो करहु सुधार।
इच्छुक जन आपै चलै, को न चहत दुख क्षार॥

विशेष विवेकवान संत गुरु तो सब जानते ही हैं—यह बात अपनी स्मृति के साथ नवीन जिज्ञासु को सावधानी के लिये हैं।

विनीत
प्रेमदास

सद्गुरवे नमः

सत्यज्ञान प्रकाश व ज्ञानमार्तण्ड का सूचीपत्र

विषय प्रथम प्रकाश	पृष्ठ
मंगलाचरण छन्द-मंगलमई	१
प्रार्थना-हे दीन बन्धू सद्गुरु	३
शब्द-हे संत दीनबन्धू	४
ग्रन्थाधार	४
दृष्टांत सुविचार तिसके तीन पुत्र	५
अधिकारी निरूपण	११
अधिकारी लक्षण लावनी सरल	१३
गुरु बोध से लाभ और बोध विमुखता से हानि	१५
गुरु महिमा	१६
स्वार्थ परमार्थ विचार	२०
दृष्टांत-तृष्णा दास सेठ और तिसकी स्त्री सुकृति	२४
संत रहस्यावली	२६
ज्ञान और भक्ति निरूपण	३०
भक्ति निरूपण	३६
प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है	४१
बिनयावली	४३
मंगल-श्रम समाज मृग निकर	
द्वितीय प्रकाश	५०
गृहस्थाश्रम धर्म बर्णन	५२
प्रार्थना-हम सब जनों की प्रार्थना	५२

विषय	पृष्ठ
शब्द मुझे ज्ञान अपना	५३
आश्रम सुधार-सुशील की कथा	५६
कर्कशालक्षण	५६
धर्म अंग	५8
शब्द-कर ले संतों का सत्संग	६४
षट् पशु धर्म सुधार	६६
शब्द-इच्छा द्वेष प्रयत्न	६७
शब्द-जो कोइ रहम न लावे	६७
शब्द-नशा को त्याग प्यारे	६९
शब्द-दया धरम की चाल गृहस्थी में	७२
भजन-यह जग भूलि गयो है	७३
शब्द-जेहि भक्ति से सब सुख	७४
शब्द-जो गुरु की कृपा दृष्टि	७४
शब्द-मानुष क तन पाके	७७
शब्द-तुम्हें कर्म भोगों को	७८
दृष्टांत-राजा निर्मोही	८०
कबित्त-संत गुरू देखि उठि	८२
शब्द-आये हैं संत प्यारे	
तृतीय प्रकाश	८३
गुरू गुरुवा प्रसंग बर्णन	८७
प्रार्थना-हम दीन दुखी नित	८९

शब्द-सतगुरु बैदा को न जाने ६१
दृष्टांत-भानू भाँड़ ६२
एक जिज्ञासु और चार गुरुवों
का सम्वाद ६७
गुरु के लक्षण सवैया-
गुरुदेव वही १०३
ऐसे गुरुदेव सकल भ्रमहारी १०३
भजन-सखि संत पधारे १०५
शब्द-जो गुरु प्रेम को नित १०६
गुरु महिमा-भुजंगी छन्द-
प्रकाश चतुर्थ १०८
कर्त्ता विषय निर्णय ११६
प्रार्थना-श्री सद्गुरू के ज्ञान ११७
दृष्टांत-लाल बुझकर १३५
दृष्टांत-नक्कट्टा १३८
भजन-परख बिना सब भटक
रहे १४०
छन्द-बिन बिचार संसार यह १४१
प्रार्थना-सतगुरु तु दीनबन्धू १४३
दृष्टांत-एक विप्र का विषय
बश चमार होना १४५
शब्द-मनुवाँ परखि ले सार
असार १४८
स्तोत्र छन्द-हैं विवेकी वैराग्य १५०
दृष्टांत-परुष रहते स्त्री राँड़ १५२
शब्द-दिल में बिचार प्यारे १५३
भजन-था ऐसे गुरु परख के १५५
दृष्टांत-सोढरमल १५६
भजन-नहीं पहिचान थी तेरी १५८
कर्त्ता विषय लावनी १६२
पंडित से ब्रह्मवाद औ तत्त्व
वाद बिषय गुरु का निर्णय . १६७
छन्द-बिष्णु नाभि से भौ
कमल १६९
लावनी-नेत्र,देखी जो वह मानै १७३
दृष्टांत-दो गप्पियों का गप्प १७४
भजन-जगत अनादी जानो रे १७६
गजल-जगत ये अनादी रहाया १७७
भजन-बिना गुरु परख के सदा १७८
बन्दना-गुरु कृपाल नमों नमों १८०
त्रिबिधि भूल निवारण १८१
अद्वैत वाद पर विचार १८४
जड़वाद विषय-शिष्य प्रश्न १८५
सत्यधारी के पाँच सिद्धांत १९२
धर्म के दश लक्षण
पंचम प्रकाश १९२
स्वरूप ज्ञान प्रसंग १९५
प्रार्थना-गुरु भक्ति दान दे दो १९५
बिनती सुन लो हे गुरुदेव १९६
भजन-नरतन है सौभाग्य की १९६
गजल-उर में ठहर के देखो १९९
शिष्य बिनय-जय गुरु ज्ञान
स्वरूप प्रभो २००
छन्द-जय देव विशाला २०५
पुनर्जन्म सम्बन्ध आवागमन
कर्मफल यथार्थ निरूपण १०९

अनादि बन्धन की निवृत्ति २११
दृष्टान्त-चेतचन्द राजा का पुत्र मनश्चन्द २२४
गजल प्रार्थना-शरणों में हम तुम्हारे २२६
रहस्यामृत छन्द-भव छूटन चाह २३६
शब्द गजल-गुरुदेव मुझको सदा २३७
चैतन्य भजनाष्टक
षष्टम प्रकाश २३९
बोध निर्णय संक्षिप्त प्रश्नोत्तर २४४
प्रार्थना सवैया-श्रीगुरु संत २४४
गजल-सद्गुरुतुम्हारिमहिमा २५२
भजन-सद्ज्ञान का डंका २५२
गजल-भरोसा है मुझे तेरा २५३
गजल-हमारे इष्ट सद्गुरु २५३
बोधिका मंगल-काय वचन मनसा २५५
बिनय-दुनियाँ के जालों से २५६
भजन-जी सदा सत्य परमार्थ २५७
प्रश्न चतुर्दश २५९
शब्द-हम से क्या वास्ता २६१
भजन-गुरु पद किप्राप्ति जिस २६३
भजन कीर्तन-जय गुरु पारख २६६
आप के वचनों को २६७
सप्तम प्रकाश
रत्नावली-जीवन्मुक्ति स्थिति २६९
मुमुक्षु टेर-आसक्ति मेरी हटा दो हे गुरुवर २६९
रत्नावली प्रारम्भ २७२
भजन-सो लखौ जिव आपनि २७७
स्थिति रक्षक अंग २८०
ज्ञान कबगादि २८४
अष्ट बशिता और निवारण यत्न छन्द २८७
भजन-सो ऐसे गुरु सन्त के २८८
भजन-सो ऐसे प्रभु सन्त हैं २८९
भजन-दुख दुख दुख रूप २९०
सकलों दुनियां के भोगों १२९
प्रार्थना=कुछ ऐसा ज्ञान दृढ़ा २९३
नव नियम २९४
विदेह मोक्ष स्थिति २९५
छन्द-गुरु रहस्याष्टक १९९
बिनय-सन्मित्र नमों २ ३०२
गजल-श्री पारखी गुरुदेव जी ३०३
आरती-गुरु आरती हो आप ३०६
बसंत वन्दिका ३०७
नव नियम सटीक ३०९

* सूचीपत्र समाप्त *

❀ सद्गुरवे नमः ❀

सत्य ज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

❀ प्रथम प्रकाश प्रारम्भ ❀

* मङ्गलाचरण—छन्द *

मंगल मई गुरु पद रजौ, मंगल मई गुरु ध्यान जू।
मंगल मई वैराग्य बित, मंगल मई गुरु ज्ञान जू॥
मंगल मई गुरु मूर्ति नख शिख, सर्व मंगल गान जू।
मंगल मई गुरु दरश पर्श जु, सेव मंगल ठान जू॥१॥
मंगल मई गुरु परख के शुचि, वाक्य सुनि भव हान जू।
मंगल मई गुरु परख ने, अविनाशि धन दे दान जू॥
मंगल मई गुरु परख से, सब विघ्न द्वन्दहुँ हान जू।
मंगल मई गुरु परख से, हो शान्त शान्त महान जू॥२॥

सोरठा—हे प्रभु मङ्गल मूल, परख प्रकाश कबीर हो।
हरहु कठिन मम भूल, शिशु सेवक मोहिं जानि के॥
हरहु सकल अघ मूल, धर्म धुरन्धर ज्ञाननिधि।
शमन ताप त्रय शूल, बन्दीछोर दयाल हो॥

सकल सदगुणागार, हित सन्मार्ग दिखाव मोहिं ।
खानि बानि दुइ धार, तासे सदा बचाइये ॥
क्षमिय सकल अपराध, जानि महा मतिमंद मोहिं ।
दीजै बुद्धि अगाध, बार बार बन्दन करौं ॥

* चौपाई *

बन्दौं पारखि संत समाजू । जिनकी कृपा सफल हो काजू ॥
सत्य प्रेम से मन कर्म बानी । त्रय बच बन्दौं ताप नशानी ॥
गुरु विशाल साहेब पद बन्दौं । प्रेरहु बुद्धि काल मुख खन्दौं ॥
सत्य ज्ञान परकाश प्रकाशो । त्रिबिधि ताप सकलो दुख नाशो ॥
जे न अमद गुरु सनमुख आवैं । ते प्रमाद बश किमि पद पावैं ॥
ऊँच भूमि में जल नहिं टिकई । अहिक वृश्चि विषधर जिव रहई ॥
नीच भूमि में जल बहि आवै । ईख अन्न बहु सुख उपजावै ॥
हंस निर्पक्षिक तिमि जिज्ञासू । तिनके हृदय ज्ञान परकाशू ॥
जड़ चेतन निर्णय जेहि नाहीं । सदगुरु संगति जे नहिं आहीं ॥
मत पंथ पक्ष दुराग्रह१ जिनके । कल्पित बचन भरे हिय तिनके ॥
विषयन से जिनके हिय काले । काम क्रोध मद में मतवाले ॥
ते किमि समझहिं ज्ञान प्रकाशा । जिनके हिये काग बुधि आशा ॥
ते देखिहैं यहि महँ अति दोषू । सूर्य उदय जिमि गीदर२ रोषू ॥
जिमि मणि भवन में चींटी छेदा । ढूँढ़त रहैं अबुध तिमि भेदा ॥
दो०—सत्य ज्ञान प्रकाश का, अज्ञ न जानत भेद ।
शाक बणिक मणि मोल जिमि, का कहि सकत अछेद ॥

टिप्पणी—१. मिथ्या हठ पक्ष । २. चमगादर ।

* छन्द लावनी *

दोष को जल्दी गहत अशुध जन, थन लगि जोंक जो खून भखै।
दूध पियै नहिं सदगुण लेवै, हित को अनहित मानि [1]नखै॥
गुणग्राही मधुमक्खी भौंरा, बन में जाय के मधुहिं लहै।
यदपि भणित भदेश नीम वत, पै पीवै तेहि त्रिज्वर ढहै॥१॥
वाक्य निपुण आदर किमि करिहैं, पिंगल भाषौ शुद्ध नहीं।
रसिकौ जन यहि देखि ऊँघिहैं, नौ रस पृथक स्वरूप कही॥
मुख्य हेतु अपनो हित बनिहै, औ भाविक कोइ लेय हिये।
टेढ़ो घाट तृषित नहिं देखत, कूप नदी जल जाय पिये॥२॥
सुरस मीठ फल गन्ना टेढ़ो, गहि अधिकारी जान जिये।
सत्पद इच्छुक असद मोद युत, पढ़ैं गुनैं परकाश हिये॥
सत स्वरूप चैतन्य भूप जो, द्रष्टा रूप प्रसिद्ध लिये।
अमृत पान करि अजरामर हो, जीवन लाभ सुजान किये॥३॥

* प्रार्थना *

हे दीनबन्धो सद्गुरो! मुझ दास को अपनाइये।
निज चरण का आधार देकर, शरण में बैठाइये॥
विविधि मत के खैंच से, हम ऐंच निज पद भूलते।
सिद्धांत सब गुरुआ जनों की, सार आप लखाइये॥
मैं कौन हूँ? यह जग्त क्या है? फिर किसे कर्त्ता कहूँ?
जिस युक्ति से बन्धन नशै, सो युक्ति भेद बताइये?
हा! कष्ट बहु पाया सदा, खानी व बानी जाल में।

---

१. छोड़ देते।

प्रमदा भयंकर फाँसि बंचक, गाँसि आप हटाइये ॥
हम दीन हीन मलीन हैं, भ्रम धार में बहते सदा ।
हे भर्म नाशक ! हम भ्रमिक को, ज्ञान पोत चढ़ाइये ॥
हे पतितपावन ! अघबिनाशि, विशाल गुरुवर आप हो ।
मुझ "प्रेम" बाल अबोध की, बिनती को सुन परखाइये ॥

* शब्द ग० *

हे संत दीनबन्धो ! मङ्गल स्वरूप तेरा ।
तव पद नमन मैं करता, नाशो कुविघ्न मेरा ॥टेक॥
सद ज्ञान प्रकाश कर दो, प्राबल्य ज्ञान भर दो ।
अज्ञान मोह मरदो, मार्तण्ड ज्ञान उजेरा ॥१॥
भव जाल खानि वानी, बंचक व वाम तानी ।
सब जीव हैं हिरानी, शान्ती करो बसेरा ॥२॥
कर के दया दयालो ! गुरुवर विशाल पालो ।
हम हीन क्षीण बालो, बिनती सुनो सबेरा ॥३॥
मेरे हृदय में आवो, सदज्ञान गान गावो ।
आपत्ति सब हटावो, ये "प्रेमदास" टेरा ॥४॥

❁ ग्रंथाधार ❁

दो०—कर्म भूमिका ग्राम में, अज्ञ तज्ञ दुइ मित्र ।
अज्ञ उभय कर जोरि के, तज्ञहि बिनवत चित्र ॥
आहु सकल गुण धाम हित, सत्य वृत्ति आरूढ़ ।
जेहि प्रकार मम होय हित, कहहु कथा सोइ गूढ़ ॥
ज्ञानवान निज ओर लखि, पात्र बस्तु धरि देत ।

साधू जन साधत सुकृत, सत्य कथा कहि चेत ॥
तज्ञ सुबुध इमि शोध करि, कहन लग्यो हर्षाय ।
जेहिविधि मित्रहिं बोध हो, सुनहु तात चित लाय ॥

एक नगर का नाम कर्म भूमिका था, उसमें एक तज्ञ-बोधवान दूसरा अज्ञ-अबोधवान दोनों मनुष्यों का आपसमें किसी प्रकार मेल था। एक दिन अबोध ने सुबोध से हाथ जोड़ विनय पूर्वक कहा—हे मित्र! आप शील संतोषादि गुणों के धाम तथा सत्य को जान कर उस पर स्थिर हो, सो जिस प्रकार से हमारा सब दुख छूटे वही श्रेष्ठ कथा सुनाइये? ज्ञानी मित्र उसे सन्मुख अधिकारी प्रेम पात्र जाना। सन्त लोग सुकृत सत्य वस्तु ऐसे ही पात्र में धर के तरण तारण होते हैं, ऐसे विचार कर अज्ञ को जिस प्रकार ज्ञान हो वह दृष्टांत से कहने लगा।

दो०—संतत नामक नगर में, रहै एक सुविचार।
तमतनु रजतनु सत्वतनु, त्रय सुत ताहि अधार ॥
सतसंगति सदग्रंथ रुचि, दया दान संतोष।
भक्ति रीति नव नीति रत, चहै विचार सुमोष ॥
एक समय सुविचार ने, कियो अनन्त बिचार।
क्षण भगी सुख भोग हित, बहौं मूढ़ तेहि धार ॥
निज २ दुख से दुखी सब, मैं अपने दुख दीन।
अंध कूप ज्यों अंध गिरि, शलभ कुरँग फँसि मीन ॥
भूल जनित करणी हरण, करन एक रस खाश।
सत्य सिद्धि स्थिति जनक, सत्यज्ञान परकाश ॥

श्रवण सुकीर्तन मनन करि, गुरु पद ध्येय सुपुष्ट ।
यह बिचार कहि तनुज सह, लहेउ स्वमोक्ष सुतुष्ट ॥

संतत नगर में एक सुबिचार नामक मनुष्य था । उसके तमतनु, रजतनु, सत्वतनु नामक तीन पुत्र थे । वह सुविचार सत्संग और सद्ग्रंथ में रुचि वाला था और दयावान सन्तोषी उदारचित्त निर्मानता निःछलता सेवा आदि गुरु भक्ति के सब गुण उसमें बिराजते थे, बहुत दिन आश्रम नीति सुभाचरण भक्ति आदि करने से उसका अन्तकरण सूर्यवत निर्मल हो रहा था । ऐसी दशा में एक दिन उसे अनन्त बिचार भया, जिससे वह नित्य स्वरूप से पृथक इस तुच्छ दृश्य से अत्यंत उपराम हुआ । वह सुबिचार नामक मनुष्य विचार करने लगा, अहो ? मुझ शुद्ध चैतन्य और शरीर तथा शरीर सम्बन्धियों का क्या सम्बन्ध है ! वह कब तक रहेगा ? शरीर तो क्षण भंगी है, सगे सम्बन्धी साथ जाने वाले नहीं हैं । इन्द्रिय जनित सुख तृष्णा रूप हैं, विषयों की आसक्ति ही मन है । मन का स्वामी-अपने स्वरूप की गाफिली व अज्ञान है । इस जड़ ग्रंथि शरीर में बस कर हानि के सिवा लाभ कौन मिल रहा है ? जिस मन का राजा अज्ञान तम है, रानी जिसकी आसक्ति मोह है, लड़के जिसके काम यम, क्रोध काल, लोभ दलदल, मोह फाँस, अहंकार पिशाच, आशा तृष्णा पिशाचिनी पुत्रियाँ हैं । उस अज्ञान के राक्षस रूपी राग द्वेष दो भ्राता, अनीति, अधर्म हिंसा जबर्दस्ती आदि जिसके सकल कुटुम्बी; जन्म मरण,

तीन ताप, चार खानियों में मिलना बिछुड़ना, नाद बिन्द खानी बानी, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि पंच कोश जिसकी सकल सम्पत्ति; जड़ तत्त्वों की साधक बाधक क्रियायें, प्रारब्ध भोग सब जेल-खाना, ऐसे आपत्ति रूप राज्य में चाहना, क्रिया, भोगों में सुख मान कर पड़े रहना ही अज्ञान है। चाहना, क्रिया, भोग से ही संयोग सम्बन्ध है तथा जड़ देह संयोग ही से पूर्वोक्त प्रवाह रहट माला वत चल रहा है, तिस अज्ञान शासन में सब प्राणी दुखी हैं तथापि जिस प्रकार मृग, पाँखी, मछली जो कि शब्द, दीप, बंशी में दीन हुए, उसी प्रकार मैं भी दुखी हो रहा हूँ, ऐसा मेरा अज्ञान है। यह अज्ञान कोई पदार्थ न होते हुए भी हमे नचा रहा है। अज्ञान क्या ? हम ही स्वयं जड़ सम्बंध दोष से अज्ञानी हो नाच रहे हैं। अब हम अज्ञान और अज्ञान के कुटुम्ब राज्य का यथार्थ पारख द्वारा नाश कर अपना नित्य स्वयं प्रकाश अचल राज्य प्राप्त करेंगे। अब हम झूँठे झगडों में अपनी आयु नहीं खोवेंगे। ऐसा विचार कर साथ ही अपने आधार में रहे हुए इन पुत्रों को भी परमार्थ का इशारा दे देना चाहिये। परमार्थ साधन में चलते हुए अपने समीपी को यथा शक्ति परमार्थ में लगा देना सज्जन का धर्म है। यह स्वरूप ज्ञान धन ऐसा है कि खर्च करने ही से कमी के बदले बढ़ते जाता है। बाणी आचरण, मनन, पुरुषार्थ और संग, जब सर्व अमृत गुरु पद की ओर का घेरा बन जाय, बस जीव अज्ञान राज्य से छुट्टी पा जाय, हमें भी यही करना चाहिये।

सद्गुरु के बोध, आचरण कथन का बार २ मनन करने ही से जगत जहर नाश होता है। इसलिये सदगुरु के ज्ञान सँदेश को निष्काम अंतः करण द्वारे कहने और सुनने वाले सब का हित ही होता है। इस प्रकार विवेक करने के पीछे सुविचार–विचार करता है कि ये तीनों पुत्र तो तीन स्वभाव वाले हैं। एक उत्तम पुण्यात्मा, एक मध्यम उभयकर्मी, एक पूर्ण अधर्मी, इन तीनों को एकी लाठी से हाँकना निष्फल होगा। इसलिये इनके अधिकार के अनुसार गुरुदेव की कथा सुना कर इनको भव मार्ग से रोक गुरु मार्गमें लगाना चाहिये। फिर तो सुविचार–ऐसे विचार से तीनों पुत्रों को बुलाया और सत्यज्ञान प्रकाश की कथा क्रमशः आदि से अंत तक सादर अर्थ सहित कई दिनों तक सुना कर पूर्ण किया, जिससे उत्तम सत्वतनु तो जीवन्मुक्ति का अधिकारी हुआ और रजतनु ज्ञान भक्ति सहित मोक्ष के पंथ में चला तथा तमतनु-गृहस्थाश्रम में शुभाचरण करके मनुष्य होने का पात्र बना। हे मित्र! वही गुरुशिष्य सम्वादरूप कथा कह कर सुविचार स्वरूप निष्ठा का घेरा, वैराग्य साधन अभ्यास आदि बनाने में जुट गया। स्वरूप बोध और साधन द्वारे गृहासक्ति और शरीरासक्ति दोनों को वह निर्मूल कर जीवन्मुक्ति सहित अंत में अचल स्वरूप सदा के लिये स्थित हुआ, वही सम्वाद ज्ञान कथा हे मित्र! तुम से कहूँगा, जिससे कि उन तीनों के समान जैसा अंतःकरण स्वभाव रोग तुम्हारा हो उसके समान औषध रूप यह गुरुदेव की कथा हमैं तुम्हैं और

सब के लिये कल्याणकारी हो। लाभ मार्ग औषधी संयम सिद्धांत भले प्रकार पूर्ण रूप से परीक्षा कर लेना चाहिये। फिर तो जैसी २ समझ दृढ़ होगी वैसी २ पुरुषार्थ की धारा बहन होना निश्चय है। जैसे जौहरी के बहुत दिन अर्श पर्श संगत अभ्यास से रत्न हीरे जवाहिरातों की परीक्षा दृढ़ होती है, उसी प्रकार पारखी सन्तों के अर्श पर्श सत्संगादि द्वारे ही सत्यदेवकी परीक्षा दृढ़ होती है। और नित्य वही सत्संग सदग्रंथादि घेरा में प्रेम रखने से स्वयं सत्यदेव में स्थिरता बनी रहती है। जैसे गुरुदेव के सत्यज्ञान की कथा से सुबिचार और सुविचार के तीनों पुत्र अपने कल्याण मार्ग में प्रवेश करके स्थिर घर में पहुँच गए, इसी प्रकार हे मित्र! गुरु कथा तुम से भी कहूँगा, इतना सुन कर लघु मित्र प्रसन्न चित्त हुआ। गुरु कथा सुनने के लिये अति उत्सुक होकर बोला--

दो०-मित्र! मुझे गुरुदेव की, कहहु कथा समुझाय।
त्रिविधि ताप अज्ञान भव, जेहि ते सकल नशाय॥

* श्रेष्ठ मित्र वाक्य *

सुनहु मित्र तुमको हुई, प्रगट मुक्ति की आश।
पूर्ब उदय तव भाग्य भो, उपजी भव से त्राश॥
बैन स्वजाती तोर मोहिं, अति सुखदायक लाग।
यहि मिस निर्णय गुरु रहनि, पावन कहब अदाग॥
भूल शूल भव भय दहन, गुरु शिष कर सम्बाद।
सुनहु चित्त एकाग्र करि, मिटिहैं सकल विषाद॥

बिचरत संत सतत इक ज्ञानी। शोध बोध निज पद ठहरानी ॥
दया क्षमा सत धीर बिचारा। सहित विवेक रहत निरधारा ॥
इन्द्री विषय स्वभावहुँ जीते। राग-द्वेष से रहित अभीते ॥
खानि बानि का बंधन जेता। त्यागि रहत नित शांत सचेता ॥
परम बिरागि एकाकि निवासी। दुख सुख द्रष्टा धर्म प्रकाशी ॥
लखत पात्र शिक्षित हितकारी। संशय चूर करत अविकारी ॥
जानत सब सिद्धान्त जु नीके। सत्यज्ञान गुण अब्धि अमीके ॥
सत्स्वरूप निष्ठक गुरु स्वामी। स्वयं प्रकाश एक रस धामी ॥
ऐसे संत स्वतः पद माहीं। माया पार स्वच्छन्द रहाहीं ॥
जहँ जैसी अनुकूलै पावैं। सह विवेक प्रारब्धि बितावैं ॥
जीवन्मुक्त सु ऐसे साधू। बाद विवाद न मति औगाधू ॥
बिचरत माहिं मिल्यो यक ग्रामा। कछुक दूरि नदी तेहि ठामा ॥
सुन्दर जल बन बागै पेख्यो। भू स्वतंत्र निज मन में लेख्यो ॥

छन्द—जहवाँ अनेकों बृक्ष घन, फल फूल दल सु हरे भरे।
शीतल सु छाया कोकिलादिक, मोर धुनि जहँ तहँ करे ॥
बहत नदि गम्भीर तेहि के; तीर नित झरना झरें।
वैराग्य योग्य सु ठाँव लखि, शुचि संत तहँ बासा करें ॥

दो०—निज अनुकूलै पाय के, रहन लगे तहँ सन्त।
सुनि सब तहँ आवन लगे, नर अनेक बुधिवन्त ॥
यद्यपि मीत बिरक्त जन, एकै ठौर न बन्ध।
तदपि विषम सम ठाँव लखि, ठहरत चलत अबन्ध ॥

तहँ के धर्मधीन बहु लोगू। सेवा करहिं जो करने जोगू ॥

बहुत सुजन मन अति हरषाहीं । कछुक काल यहि भूमि रहाहीं ॥
सरल अमल शुचि संत स्वच्छन्दा । निवसत देखि सुखी जन बृन्दा ॥
यथायोग्य सब करत प्रबन्धा । खान पान शुचि योग्य सबन्धा ॥
समय पाय तहवाँ चलि आवैं । सुनि सत्संग सुखी ह्वै जावैं ॥
समता सहित संत उपदेशा । भर्म निवारि न देयँ कलेशा ॥
ताते जिज्ञासुन की प्रीती । बढ़त रहत नित ही नव नीती ॥
अबुधन मन पचक्यो यहि भांति । ढोंग न देख्यो कछु नहिं थाती ॥
नहिं भभूत नहिं दुवा तबीजा । ताते अबुध जीव नहिं भीजा ॥
निज हित इच्छा जेहि मन माहीं । आवत नित्य संत पद पाहीं ॥
दो:—निर्णय चर्चा चलत नित, जहँ राजत गुरुदेव ।
मंगलमय गुरु के बचन, सुनत धन्य जन तेव ॥

* अधिकारी निरूपण प्रारम्भ *

एक समय सब मिलि जिज्ञासू । आये सदगुरु निकट हुलासू ॥
बैठे चहुँ दिशि प्रभु को घेरी । जनु उदार गृह याचक हेरी ॥
तिनमें इक बोलत कर जोरे । सुनहु प्राण प्रिय बिनती मोरे ॥
हम सब जीव मोह मद साने । काम क्रोध भ्रम हाथ बिकाने ॥
क्षण भंगुर काया के सुख में । हौं अबोध स्वारथ के रुख में ॥
कौन अहौं ? का करना चहिये ? केहि बिधि सुफल मनुज तन लहिये ?
जानत नहिं केहि बिधि दुख छूटे ? तेहि ते पूछत शरण अटूटे ?
सो प्रभु यहि बिधि तुम संतुष्टौ । जेहि बिधि मोर मिटै त्रय कष्टौ ॥
दो०—समाधान के प्रथम गुरू, अन्तर स्वतः सँभारि ।
कछुक देर द्रष्टा ठहरि, पुनि निज धर्म बिचारि ॥

सुनहु मित्र सत पुरुष के, निज पद रखि व्यवहार ।
न्याय धर्म उर समय लखि, बोलत सुचित बिचार ॥
गुरु अति प्रीति देखि सब केरे । कहन लगे रवि सम बच हेरे ॥
सुनहु सबन मिलि सुन्दर बैना । जो टकसार देत शुचि सैना ॥
साखी–शब्द है गाहक नहीं, बस्तु है महँगे मोल ।
बिना दाम काम न आवै, फिरै सो डामाडोल ॥ बी०
बिषयी पामर औ जिज्ञासू । मुक्त चार श्रेणी जन जासू ॥
जिज्ञासू जग से चहे मुक्ती । मुक्त थीर पद पूर्ण बिरक्ती ॥
मुक्त श्रेष्ठ जिज्ञासू मध्यम । बिषइउ कछु अधिकृत मिलि रज तम ॥
तेहि में पामर अनअधिकारी । पर धन पर इर्षा ब्यभिचारी ॥
धर्माधर्म रजो युत बिषई । पामर पाप रूप तम लसई ॥
लोलुप भोग हेतु अनरीती । मोह बिबश हिंसादिक प्रीती ॥
बपुबादी बिषयन मद मस्ती । हृदय असूझ त्यागि नय भक्ती ॥
औंधे घट ते श्रद्धा हीने । सुनि सत्संग क्रोध जे कीने ॥
तेउ संयोग सुसंगति पाये । संस्कार श्रम बुधि पलटाये ॥
तेहि ते सब हितकार सुसंगति । अघ कुभाव क्षण में जो पलटति ॥
दो०–समय पाय अधमहुँ पलट, सत्संगत सबन्ध ।
चोरपुरवा को चोर ज्यों, बिबशहुँ सुनि शुभ सन्ध ॥
सो तथापि उर शुद्धि युत, सत्संगत आधार ।
नाव बायु केवट सकल, योग शीघ्र भवपार ॥
बिन गाहक निष्फल बच कैसे । ऊषर बीज बादि श्रम जैसे ॥

अमृत कथा को खारी कहई । श्रद्धा सुरुचि बिना का लहई ।
तेहि ते सब मिलि हो अधिकारी । योग्य भूमिका जिमि तरु भारी ॥

सो०—कहहु दयानिधि गाय, अधिकारी के चिन्ह कछु ।
सुनहु कहहुँ समुझाय, पात्र शुद्ध करि वस्तु रखि ॥

* अधिकारी लक्षण लावनी सरल *

ते अधिकारी नर औ नारी, सतसंगति में चाव गहैं ।
चोरी करैं न चुगुली केहु की, सब के प्रति जो दया लहैं ॥
बोलैं वचन बिचारि सँभारि के, समयासमय में मौन रहैं ।
मान भंग करि शलत केहु नहिं, मान रक्षि हित सबहिं चहैं ॥१॥
माँस न खायँ न करत शिकारौ, पर पीड़न नहिं भूलि करैं ।
भूत प्रेत औ देबी देवा, कल्पि न कबु बलि वद्ध करैं ॥
निज निज कर्मों के फल दुख सुख, अस जिय जानि सु धैर्य धरैं ।
पुरुषार्थ करन में नहिं अलसावैं, सत्य शोधि हित कार्य बरैं ॥२॥
शुभ कर्मन से देह निबाहैं, जबरन नोचि न धनहिं गहैं ।
शक्ति देखि निज कार्य करैं सब, बहुत लोभ करि नाहिं दहैं ॥
जग की बात न बहुत बढ़ावैं, बहसा बहसी नाहिं ढहैं ।
मंद जनों के गोल न जावैं, समय परे नहिं कटुक कहैं ॥३॥
मंद जनों से बदला ना ले, उल्टे तेहि हितकार रहैं ।
सनमुख विमुख न बैर बार्ता, क्षमा क्षमा ही शस्त्र गहैं ॥
जग दुख को सब याद रखैं नित, ताते पाप से बहुत डरैं ।
पर नारी औ पर धन इर्षा, दुख खंदक लखि तासे टरैं ॥४॥
निजहुँ बस्तु में हो न आसक्ती, लत छोड़न हित युक्ति करैं ।

यथा ग्रास में ले संतोषहिं, बीर सुमार्ग में नित्य चरैं ॥
जननी जनक सहोदर भ्राता, मेली जौन सबंधी हैं।
न्यायशील सह धर्म यथोचित, गृह के धर्म प्रबंधी हैं ॥५॥
स्वार्थ के गुरु तो स्वार्थ में पूज्य हैं, परमार्थिक गुरुदेव अहैं।
अस जिय जानि गुरू पद ध्यावैं, सेवक ह्वै निर्मान रहैं ॥
साखी शब्द को पाठ करैं औ, वैर प्रेम में नाहिं बहैं।
नाच रंग मदखोरि अमल तजि, सत्य रहनि आरूढ़ रहैं ।६॥
नई पुरानी रीती जो कुछ, लोक रु बेदाचार जितै।
धर्म के साधक सब अंग गहि, बाधक अंगहिं त्याग तितै ॥
सहसा काज न सहसा बोलत, सोचि सिहारि के कार्य हितै।
इन्द्रिय मन के चाल बिकारी, तोड़ि चलैं सन्मार्ग नितै ॥७॥
ब्रह्मचर्य दृढ़ गहैं बिबिध बिधि, नारिउ जन अधिकारी हैं।
पूर्व गुणों को गहैं सकल बिधि, आश्रम तजैं न सारी हैं ॥
लज्जा विनय प्रेम हित राखैं, झगड़ा कलह निवारी हैं।
झूँठ चपलता स्वार्थ दृष्टि तजि, एक ब्रती आधारी हैं ॥८॥
सो०—यहि बिधि सद्गुण अंग, नर नारी जे धारिहैं।
तेइ अधिकारि अभंग, ज्ञान प्राप्त तेहि होइहैं ॥
दोउ दिशि कुशल सुभाग्य, पारख गुरु को संग है।
तेई बड़े अभाग्य, जो हित बैन न रोचही ॥
सुनि गुरु बचन सकल जन हर्षे। सूखत धान मेघ जनु बर्षे ॥
निज निज दुर्गुण त्यागन हेतू। भली भांति प्रण कीन्ह सचेतू ॥

अधिकारी निरूपण समाप्त

गुरु बोध से लाभ और बोध विमुखता से हानि निरूपण

* शिष्य वाक्य *

सो०—गुरु पद को अधिकार, पाय कवन फल होत है ?
जो न हिये तेहि धार, तौ का गति तेहि नरन की ?

* गुरु वाक्य *

सो०—सोऊ सुनहु हे तात, गुरु सँग पाये दुख छुटै।
गुरु पद तजि कुशलात, चहै सो पय दुहि शुन्य से ॥
बिन गुरु बोध के जीव, पचत रहत जग दग्ध बन।
पाहि पाहि कहि पीव, छादित दृष्टी सम भ्रमै ॥

छं०—दग्ध वनमें दृष्टि छादित परि जलै अंगार से।
बन तराई सरि रह्यो किहु भाँति पहुँच्यो तार से ॥
शीतल भयो कछु पुनि मिल्यो केवट तहाँ इक प्यार से।
नाव पर बैठाय तार्‍यो नैन मल तेहि टार से ॥

सो०—केवट भयो सहाय, दृष्टि दियो पुनि पार करि।
छादित सुख को पाय, केवट को यश हृदय रखि ॥

छं०—दृष्टि छादित जीव यह यहि दग्ध बन जगमें रहे।
आदत विषय के भोग बश ख्वाहिश अगिनमें नित दहे ॥
किहु भाँति दुखिया जीव यह सत्सँग तराई से जुरै।
तहँ सदगुरू मल्लाह मिलि आवर्ण दलि पारै करै ॥

सो०—उपकारी गुरु देव, तेहि के संग से दृष्टि लहि।
सब सुख गुरु पद धेव, तेहि बिन अंधा सम दुखित ॥

दो०—रंक अंध रोगी ग्रसित, डूबत जीव अनाथ।
गुरु करुणामय ज्ञानदै, सब बिधि कियो सनाथ॥

❀ गुरु महिमा प्रारम्भ ❀

दो०—शोक मोह दुख रहित पद, गुरु पद स्वयं प्रकाश।
भूल भर्म आसक्ति तम, नाशक अचल निवाश॥
सो गुरु पारख रूप हैं, मंगल मोद निधान।
द्वन्द बिघ्न आपति शमन, ध्यान धरत अघ हान॥

राज काज सुख सम्पति नाना। अनुज सकल अनुकूल प्रधाना॥
इच्छित वस्तु सुखन के भोगी। नित नव नारि निरत संयोगी॥
गुरु बिन ते कब सुखित अभागी। तपत अवाँ इव ख्वाहिश आगी॥
इच्छा पूर्ति यतन संतोषा। गुरु बिन सोपि लहत नहिं कोषा॥
गुरु बिन शब्दारण्य भुलाने। ताल राग रस रसिक बिकाने॥
गुरु बिन रूप देखि क्षण भंगी। जरत मोह बश दीप पतंगी॥
गुरु विन गंध रूप रस शक्ती। रसना रसबश निशिदिन लसती॥
भोगचाह लतबिघनयतन दुख। गुरुबिनमृगइव भ्रमत दुसह दुख॥

दो०—पंच बिषय सुख भोग सब, आहुति मन कहँ देत।
नित नव प्रबला ज्वलित लव, गुरु विन तपत अचेत॥

महा मोह तम बादल घेरे। सूझि न परत बिषय बन गेरे॥
काम क्रोध मद लोभ भयावन। डसत नाग बिष २ दुख दायन॥
अंध दृष्टि बुद्धिहुँ गइ मारी। बिषय नीम कटु लगतन प्यारी॥
कहँ पुरुष बनि शासन चाहै। नारि बिरह संतप्त अथाहै॥
गुरु विन कठिन काम के चेरे। मिलन बछोह दुसह दुख घेरे॥

कहँ नारि बनि बहुत लोभावै । घट स्वभाव वश कलह बढ़ावै ॥
गुरु बिन मद लहि कालह्वै क्रोधी । लोभ मोह मनरुजहिं अबोधी ॥

दो०—भोग उन्मादी स्वारथी, देखत नहि पर पीर ।
हिंसा पर धन बाम रत, गुरु बिन सह भव भीर ॥
चारि वरण लघु भूप कोउ, नर नारी विद्वान ।
गुरु पद नौका शरण बिन, परे सिन्धु भय खान ॥

भोग अशेष भोग तउ भूखी । तृष्णा डाकिनि नित नव रूखी ॥
खानि बानि हन्ता बिकरारा । भूल भर्म संसृत वह धारा ॥
कारण कारज बस्तु अशेषा । सुखाध्यास तेहि भवँर अलेखा ॥
राग द्वेष त्रय ताप सकल दुख । हिंसक जंतु देत दुख ही दुख ॥
चारि खानि घट मिलन वियोगा । दुख मय फेन करम संयोगा ॥
तत्त्व सृष्टि जिव सृष्टि बिरोधी । उभय तरंग प्रबल दुख शोधी ॥
काम रूप बहि बहु नद मेली । अगम मनोमय सिंधु अकेली ॥
जन्मत मरत बहत सब प्रानी । बिन गुरु अगम सिंधु भय खानी ॥

दो०—सहन रहित इह खार जल, पार चहत सब जीव ।
इच्छा पुर्ती हेतु सब, पाहि पाहि कहि पीव ॥
बिन गुरु पारख दृष्टि के, ज्यों ज्यों यतन करेय ।
ईश ब्रह्म जड़ सृष्टि त्रय, सिंधु रूप दुख देय ॥
कहूँ भोग सब सत्य कहि, इन्द्रिन विषय स्वभाव ।
लोभादिक दुर्गुण लहै, सहत काल को दाव ॥
कहुँ हरि माया दुरत्यया, एकोहं बहुश्याम ।
अगुण सगुण कहि मोक्ष पद, आवत जात सकाम ॥

जगदात्मा ब्रह्माब्धि हं, जग तरंग सहजेय ।
तत्त्वमसी सु तरंग भव, बिन पारख दुख लेय ॥
भ्रम अज्ञान बहु बासना, दूत बसी बपु नर्क ।
कटि पिटि छिदि जरि बरि विवश,त्रिविध ताप रुज गर्क ॥
गुरु बिन चेतनदेव की, भयो दशा विपरीत ।
श्वान मृगा झष अलि शलभ, दुख भाजन हरि हीत ॥
यदपि दुःख कर मूल भ्रम, सत्य मनोमय नाहिं ।
स्वप्न रज्जु अहिश्वान तऊ, गुरु बिन भ्रम नहिं जाहिं ॥

यहि कारण गुरुपद कहँ शोधै । बोध प्रकाश लहै तम रोधै ॥
सकल परीक्षक पारख गुरुपद । भास अध्यास दलन सकलौ मद ॥
गुरु की दया दया गुण आवै । हिंसा घात सकल बिसरावै ॥
क्षम्य मूर्ति लहि क्षमा समावै । सत्य शरण गहि सत्य सुभावै ॥
धैर्य्य धाम गुरु से लहि धीरा । साधत परम अर्थ ह्वै वीरा ॥
गुरु विचार धारा के सन्निधि । छुटत ताप लहि साधन सब सिधि ॥
परम विवेक रूप गुरु शरना । जड़ से भिन्न रूप चिद धरना ॥
निराश निवृत्त परम बैरागी । सुकृत एन लहि सो बड़ भागी ॥
शुद्ध समान अमानी गुरुवर, भक्ति भाव गहि भवनिधि सो तर ॥

दो०—घन श्रेणी के घन गुरू, ठौर ठौर से मान्य ।
सो तथापि भ्रमचक्र विच, केहि विधि गुरु सम जान्य ॥
जेहिके पद पंकज शरण, आवत बोध प्रकाश ।
सो रहस्य सर्वांग युत, भय भ्रम तम करि नाश ॥
गुरुपद के लक्षण यही, बोध रहस्य यथार्थ ।

भव निधि नौका रूप गुरु, शरण लहे परमार्थ ॥
धर्म ध्वजी बैडाल वृत्ति, कामी हिंसक जोय ।
असुर गुरु के योग्य नहिं, अंध अंध गति होय ॥
पतित अधम पापी मलिन, सुखाध्यास वश बाम ।
हिंसक क्रूर कठोर तेउ, गुरु पद लहि शुभ ठाम ॥
अमल अदाग अतीत गुरु, अमद अलाग अचाह ।
अमन अचल अशरण शरण, भूरि भाग्य पद लाह ॥

गुरु बिन साहस कौन बढ़ावै ? बहत धार को धैर्य बँधावै ?
गुरु बिन संयम साधन नाना । परमारथ को किमि हो ज्ञाना ?
गुरु बिन मन ज्वाला को नाशै ? सबै जलत को तृप्ति बिकाशै ?
अंध कूप गृह देख स्वभाऊ । गुरु बिन को तहँ पार लगाऊ ?
नित्य तृप्त कृतकृत्य स्वरूपा । गुरु बिन कौन कहै जिव भूपा ?
मनोवेग को भेद बतावै । गुरु बिन मन से कौन छुड़ावै ?
सकल जीव मन धारा माहीं । गुरु बिन रक्षक कौन तहाँहीं ?
बिधि हरि हर ब्रह्मण्य परात्पर । सकल परीक्षक पारख दुखहर ॥
सो गुरु पाय धन्य ते जीवा । काय वचन मन शरण सदीवा ॥

दो०—अनुज तनुज जननी जनक, तन धनादि सुख वृत्ति ।
खैंचि मेलि बटि रजु सुदृढ़, गुरु पद बाँधै धृत्ति ॥
आलस कपट कुचाल अघ, लोभ देह सुख अर्पि ।
मन अर्पण करि स्वामि रुचि, गुरु भक्ती लहि तर्पि ॥
सहज स्वभाविक एक चित, गुरु पारख में नेह ।
ते नर सुकृत सुभाग्य वर, काल जाल सब क्षेह ॥

पारख गुरु पर इष्ट नहिं, गुरू परे नहिं देव ।
धर्म कर्म सिद्धांत गुरु, गुरू कृपा दुख छेव ॥
सो सद्गुरु को धाम लहि, होउ कृतारथ जीव ।
संत गुरू पद छोड़ि के, वादि मथत जल घीव ॥
शुद्ध सुमति सदज्ञान दै, शमन सकल उर शाल ।
सकल सुमंगल सार प्रद, उर बस सतत विशाल ॥
रहट हिंडोला चक्र रु फाँसी । बहत बचायो गुरु अविनाशी ॥
सो महिमा गुण धाम प्रकाशी । रबि सन्मुख दीपक कि उजासी ॥
महिमा मूल बसौ सुखरासी । गुरुतजि कतहुँ न लहै सुपासी ॥
नित प्रति पढ़ै गुनै चित लासी । हो कृतकृत्य सकल दुख जासी ॥

गुरु महिमा समाप्त

छं०-गुरु पद यथार्थ महातम सुनि, अति सत्वतनु हर्षित भयो ।
धन्य पितु गुरु देव सम, यहिभांति सद् शिक्षाकियो ॥
गुरु कथा सुनि सुनि सुहावनि, दोष दुख हिय के क्षयो ।
सादर सुनब पुनि गुरुकथा, आगे कहहु अमृत मयो ॥
सो०-सुनुहु वत्स ते धन्य, जे गुरु पारख ऐन लहि ।
तेई जग में मन्य, परमारथ जे गहत हैं ॥

स्वार्थ-परमार्थ विचार प्रारम्भ

शिष्य वाक्य

निःछल अमद सरल शुचि वाणी । बोला शिष्य जोरि दोउ पाणी ॥
बड़े भाग्य सतसंगत योगू । मिटहिं दोष दुख मन के रोगू ॥

यदपि सकल गुण दास में नाहीं । तदपि भरोस तोर इक आहीं ॥
सत्पुरुषन के क्षण भरि संगा । भवनिधि नौका शुचित प्रसंगा॥
सब गुण फल सत्संगत प्रीती । दलि अघ अवगुण सकल कुरीती॥
संतन में जेहि प्रीति अभंगा । मोक्ष होन को ताहि प्रसंगा ॥
बहुत कहौं का अन्तर्यामी । हौं स्वभाव वश जग मग कामी॥
अस कछु कृपा करहु यहि ऊपर । गुरु पद तजि नहिं भावै दूसर ॥
श्रेष्ठ साधु साहेब के आगे । बहुत कहब बड़ पातक जागे ॥
तदपि दोष दुख आरत जानी । क्षमा करब तो निबहौं मानी ॥
पुनि कछु पूछौं ज्ञान विधाता । स्वारथ परमारथ की बाता ॥
स्वारथ परमारथ केहि कहिये ? योग्य अयोग्य करन को चहिये ?
लखि जन की गति धरमनुकूला । ह्वै प्रसन्न बोले सुख मूला ॥

गुरु वाक्य

दो०—लेन देन गृह काज सब, नारी कुल सुत भार ।
स्वारथ ताको कहत हैं, गो मन हित व्यापार ॥
स्वारथ मे जो न्याय युत, सब सुरीति व्यौहार ।
तेइ परमारथ योग्य नर, यहि बिधि करे बिचार ॥
शील दया सत्संग रत, एक व्रती संतोष ।
हिंसा गत ते शुचि गृही, ते अधिकृत निर्दोष ॥

इन इन्द्रिन कृत जहँ लो दरशत । शब्द रूप रस गंध जु परशत ॥
सो सब स्वारथ माया रूपा । देह मानि निज भ्रम के कूपा ॥
सुत धन धाम बाम सुख देहा । लाभ अलाभ अंत ह्वै खेहा ॥
देह सुखन हित स्वारथ दाऊ । दाँव जीति को केहि पर भाऊ ॥

मनोराज्य मद निशि अँधियारी । देखत सपना अधिक पियारी ॥
खगन उड़ावन फेंकत लालै । सो नहिं आवत बीति जो कालै ॥
देह काज स्वारथ क्षणभंगू । जीव काज परमार्थ अभंगू ॥

दो०—देहादिक निर्वाह बिन, सधत न यदि परमर्थ ।
घरहिं सवाँरत दिन गयो, रहनहार का अर्थ ॥
तेहि ते स्वारथ साथ ही, करत रहित परमार्थ ।
अहिरा खेती साँझ सुबु, गहिय सुसंग हितार्थ ॥
तीन गँजेड़ी भोज रचि, पत्ता बिन वै मौन ।
भूखे रहि सब कष्ट सहि, तजे न हठ शठ जौन ॥
इमि अविवेकी जौन नर, धर्मादिक से मौन ।
धर्म कर्म सब खोय कर, चौरासी दुख भौन ॥

करु विचार स्वारथ परमारथ । नहिं तो कर अग्रह लहु भारथ ॥
स्वयं सत्यता से सब साँचो । मानत श्वान गेह इह काँचो ॥
अहै अमरपंथी यहि चेतन । बसत सराय तजत क्षण में तन ॥
पूर्व जन्म के बालक माहीं । संस्कार परत्यक्ष दिखाहीं ॥
हर्ष शोक भय मैथुन पाना । पूर्व कर्म कृत भोग है नाना ॥
एक पिता के बालक नाना । पूर्व स्वभाव भेद बिलगाना ॥
राजा रंक रु रोगि अरोगी । त्रिगुण कर्म वश दुख सुख भोगी ॥
जाग्रत बेग स्वप्न अवलोकत । तथा पूर्व कृत दुख सब भोगत ॥
अमित बीज लय पृथ्वी माहीं । प्रगटत समय फूल फल छाहीं ॥
तथा निरंतर में यह शक्ती । कर्म समय पर संसृत जग्ती ॥
पाप पुण्य जस बोवत बीया । तैसहिं लुनत आपनो कीया ॥

दो०—बिन परमारथ लाभ किमि, रथी रथै में लीन।
खेती लाभ मजूर लै, भूप लाभ मंत्रीन॥
स्वार्थ करिय परमार्थ हित, स्वार्थै माँ जो लीन।
जुवा लाभ जूऐ गयो, घाटा घर से दीन॥
इन्द्रिन करि इन्द्रिन दियो, सध्यो नहीं परमार्थ।
तो सराय के टट्टु वत, तृष्णा बोझ दुखार्थ॥

जेहि स्वारथ में निशिदिन भूले, मेरो धन जन कहि कहि फूले॥
तात मात सुत भ्रात कुटुम्बी। जे स्वारथ प्रिय निज अवलंबी॥
जेहि वश मोह करत नर छल बल। करत पाप बहु चितवत अनभल॥
सो सब अंत न लेत बटावा। निज निज करम बीज फल पावा॥
मन स्वभाव बशि स्वप्न समाना। कहि न जाय दुख भोगत नाना॥
नर पशु अण्डज उष्मज योनी। देखि लेहु दुख निज निज होनी॥
तेहि ते धर्महिं साथ सँभारहु। दाद खुजावत द्वार न टारहु॥
धर्म किये सुख उभय प्रकारा। सब कर हित यहि माहिं बिचारा॥
तेहि ते धर्महिं गहो सँभारी। यहि परमारथ है सुखकारी॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य सुसंगा। दान धरम परमारथ अंगा॥

दो०—दान सत्य संतोष शुचि, शम दम दया सुसंग।
धर्म अंग परमार्थ यह, तजि अघ अनय कुसंग॥

रक्षण पोषण स्थिति सबहीं। सतसंगत अनुराग सततहीं॥
खेत पाँसि पानी वहि एकै। भिन्न भिन्न बीजी फल टेकै॥
तैसहिं बुधि अनुसार नरन गति। कर्माकर्म संग तस गति मति॥
तेहि ते धर्म मूल भल संगति। भल संगति फल होय सुमति रति॥

सबहिं सुमति फल मूल अहिंसा। जिव रक्षा करु तौ सुख हंसा॥
जीव दया फल परम उदारा। सेवा धरम दान बिस्तारा॥
तेहि कर फल संतन नित संगा। तेहि ते लहिय विवेक अभंगा॥
तेहि विवेक कर फल गुरुभक्ती। गुरुभक्ती फल परम बिरक्ती॥
होय बिरक्त जब थिर ह्वै जीवा। तब परमारथ रूप सदीवा॥
ज्ञान भक्ति संतन कर संगा। करत करत सुकृत बढ़ि अंगा॥
बिपुल जन्म के सुकृत जागे। मिलै मोक्ष संयोग सुभागे॥

दो०—मानुष तन सदगुरु मिलब, मोक्षहु इच्छा होय।
दुर्लभ तीनों परम हैं, पाय सुयोग न खोय॥
बिन पुरुषारथ घुमत नहिं, भव स्वभाव को चाव।
तेहि ते संयम कीजिये, मन रुज औषध लाव॥
भाग्यहुँ पूरब यत्न फल, यत्न बिना कछु नाहि।
तेहि ते यत्नहिं करहु नित, लहहु अचल पद जाहि॥
साधु सेव निर्णय बचन, शील सत्य उपकार।
मन इन्द्री काबू करब, यह पुरुषारथ धार॥

* दृष्टान्त *

तृष्णा दास सेठ इक नामी। सुकृती नारि तासु के धामी॥
सुकृती सुकृत पंथ रुचि ठानै। सेठ कछू परमार्थ न जानै॥
छल बल करि बहु धन उपजाई। महल रत्न गज बाजि बँधाई॥
दासी दास बिपुल व्यवहारा। क्षण न सुपास लेत श्रम भारा॥
द्रव्य बढ़ावन धावन निशिदिन। मन इंद्रिन वश लोलुप छिन छिन॥
सुकृती ताहि बहुत समुझावै। सुनहु नाथ कुछ संग न जावै॥

अनुज तनुज तरुणी धन धामा । अन्त न आवत एकौ कामा ॥
डारि बारि सब गाड़ि के दूरी । अन्त करम फल पावत भूरी ॥
जो कुछ पुण्य नहीं बनि आई । तौ दुख में को होय सहाई ॥
बीज लोभ करि बोवै नाहीं । का फल मिलै? न पुण्य कराहीं ॥
तेहि ते कुछ परमारथ धेवो । साधु संग करि कछु सुधि लेवो ॥
दो०—जब जब नारी अस कहै, तब तब बोलै साह ।
आगे कुछ कर लेइहौं, अभी मृत्यु का आह ॥
ऐसेहिं कहत बहुत दिन बीते । सेठके व्याधि भयउ अति भीते ॥
देहु दवा मोहिं साह जु भाखिसि । वैद्य बोलाय दवा लै राखिसि ॥
पुनः साह औषध तेइ माँगी । बोली नारि सहित अनुरागी ॥
अबहिं मृत्यु का आई नेरे? आगे देउँ दवा हित हेरे ॥
मैं मरि जाउँ दवा केहि काजा? मृत्यु याद भइ तुम कहँ आजा ॥
दो०—जो मैं तुमहि बतावती, कुछ शुभ काज करेहु ।
तौ मृत्यू निज दूर कहि, पचत सदा यम गेहु ॥
अब दुख में मृत्यू सुधी, गई रही अब राखि ।
जो प्रभु परमारथ चलहु, देहुँ दवा मैं साखि ॥
सुनत बैन अतिशय प्रिय लागे । खुले नैन शुभ संसृत जागे ॥
कहेउ सेठ अब मृत्यु न भूली । अहो नारि तैं धन्य समूली ॥
धन्य नारि सुत भ्राता जननी । सेवक मित्र धन्य ते बरनी ॥
हित पथ रक्षि चलावैं साथी । धन्य धन्य गुरु पद दे माथी ॥
गुरुपद पारख दृष्टि रहित नर । अंध सरिस धृग जीवन तेहि कर ॥
अस कहि सोच विमोचत पानी । धृक मोहिं अजहुँ न गुरु मति सानी ॥

नारि दवा दइ भयउ सु नीका । करन लग्यो परमारथ ठीका ॥
सत्संगत नव नेह बढ़ाई । साँच झूठ निर्णय बिलगाई ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य सुसंगा । करि धरि लहेउ जो सत्य अभंगा॥
अस सत्संग सुमति उपजावन । कस न करै सब कुमति भगावन ॥
दो०—सहन चहन परिश्रम सब , सुमग कुमग दोउ माहिं ।
विष अमृत इक दाम तो , क्यों न अमृत पद लाहिं ॥
विधि हरि हर इन्द्रादि सुख, जेहि सनमुख सब तुच्छ ।
सो पद सेवै कस न नर , पारख गुरु पद स्वच्छ ॥
सब संयोग वियोगहिं जानी । करत रहहिं परमारथ ज्ञानी ॥
साधन दान सुकर्म सवेरी । वैर न्याय अघकृत में देरी ॥
पालब देह सुफल ह्वै तबहीं । जब जिव काज लगन रखि नितहीं ॥
जीव काज पारख गुरु ऐना । भिन्न गहहु तेहि लइहु सुचैना ॥

स्वार्थ परमार्थ निरूपण समाप्त

❀ संत रहस्यावली प्रारम्भ ❀

शिष्य वाक्य

सुन्यों सकल परमार्थ सुबानी । गुरु बिन कौन कहौ अस दानी ॥
संशय शोक मोह भ्रम हरणा । काय वचन मन बन्दौं चरणा ॥
तात मात सुत भ्रात तियादिक । खेलत जुआ स्वार्थ मद मादिक ॥
तिन महँ जो कोउ होत सयाने । करि सत्संग धरम महँ साने ॥
तेइ धर्मी परमारथ शोधक । अपर सकल यम स्वारथ बोधक ॥
बिन धरमार्थ सकल वे काला । एकहिं एक फाँसि बेहाला ॥

धरम करम शिश्नोदर जाने । स्वारथ तत्पर हिंसा साने ॥
सो बेहाल तम मेटनहारे । अब कुछ जानहुँ कृपा तुम्हारे ॥
सुनुहु नाथ परमारथ चिंतक । मन संभव दुख दोष बिध्वंसक ॥
जो अनूकूल दास निज जानिय । औ अपने आश्रित प्रभु मानिय ॥
तौ यह प्रश्न करत अनुरागी । उत्तर सुनि होइहौं बड़ भागी ॥
साधु गुरू की सुन्दर रहनी । सुना चहौं कलिमल भव दहनी ॥
सुनि अधिकारी वचन प्रवीना । लखि आरत जिज्ञासु नवीना ॥
कहन लगे गुरु हित की बानी । भव भंजन रंजन जन दानी ॥
शुचि संतन के सहज स्वभाऊ । कहत सुनुहु राखहु करि चाऊ ॥
सत्य परीक्षक ज्ञान निधाना । समता सजग नम्र शुचि बाना ॥
क्षमा दया संतोष अदागी । भव स्वभाव पलटत अनुरागी ॥
पढ़त सुग्रन्थ रहत स्वच्छन्दा । बसत एकन्त तोड़ि सब फन्दा ॥

दो०—धन प्रमदा वाणी विभव, स्वार्थ भोग व्यवहार ।
राग द्वेष तृष्णा मई, करत प्रलोभ अपार ॥
निज स्वरूप के बाद सब, देखत सब में दोष ।
सकल प्रलोभन त्यागि के, रहत सदा निर्दोष ॥

माया माहिं भुलानि शक्ती । तेहि ते रहत उदास निवृत्ती ॥
जानि वासना वश जिव संता । भूलि कुसंग करैं नहिं हंता ॥
सार मुख्य हित सरल अबाधू । समता सहित वचन वर साधू ॥
क्रोध लोभ मद मोह जु कामा । अतिशय नाश करत सुख धामा ॥
शत्रु मित्र पुनि राग अरु द्वेषा । त्याग सतत परमार्थ निदेशा ॥
नीच स्वभाव शत्रु करि जानैं । भल स्वभाव निज मित्र पिछानैं ॥

साधन पक्ष बलिष्ठ सु करहीं । निज स्वभाव देखत नित रहहीं ॥
दुष्टन से बदला नहिं लेवैं । परम क्षमालु तोष सब देवैं ॥
दुख सुख हानि लाभ सब सपना । जानि अमर पद भिन्न कल्पना ॥
पर दुख देखि सकुचि जिय जावत । पर सुख में इर्षा गत भावत ॥

दो०—सत साधन शुभ गुण सकल, मीन गहन को नार ।
वंशी सम तेहि जानि के, त्यागहिं आठ प्रकार ॥

जड़ासक्ति नाशन की युक्ती । जानत सकल अमल पद मुक्ती ॥
मेलामेल जगत क्षण भंगू । वृत्ति समेटि रहत निःसंगू ॥
हिम्मत साहस धीरज श्रद्धा । गहत महाव्रत बोध सुबृद्धा ॥
सत पथ पंथी नित अनुरागी । ध्येय लक्ष्य से टरत न त्यागी ॥
सकल स्वजाती हैं मम जीवा । सर्ब हितैषी गुण गण लीवा ॥
हिम्मत साहस कबहुँ न त्यागैं । धर्म कर्म शम दम में पागैं ॥
गुण ग्राही परिछिद्र दुरावा । जीत मान तजि मन कसि पावा ॥
तजि आरम्भ सकल भव करनी । बर विराग गहि भव सरि तरनी ॥

दो०—तजत न गुरु पद ऐन कों, चैन करत सत्संग ।
बैन न बोलत दोष के, निर्णय जड़ चिद अंग ॥

निज निर्बाह हेतु नहिं शठता । वड़ संतोषी तजहिं विषमता ॥
मान रक्षि सब कर हित सोचत । परम अनुभवी भोग न रोचत ॥
देखत रहत सकल स्मरणा । अंतःकरण स्ववश नित करणा ॥
हठ वश जीतन जो कोउ आया । ताहि जीत दै रहत अमाया ॥
सत सिद्धांत विशारद नीके । बंध मोक्ष पद जानत ठीके ॥
तजि ऐश्वर्य न करत बढ़ावा । आये हुये प्रलोभ दुरावा ॥

देश समाज मनोभव हलचल। बहत न तृष्णा डाकिनि दलमल॥
खान पान सम्मान उदासी। बड़े नम्र गुरु केर उपासी॥
नाद बिन्द खानी अरु बानी। तजत सकल पारख पद जानी॥
मूल जानि के अंत न बहहीं। रमता राम न ममता गहहीं॥
हानि लाभ को जानत सन्ता। निज पद जानि समाधि लहंता॥
विद्या और अविद्या माया। काल सन्धि झाईं अलगाया॥
शिक्षत कबहुँ न अन अधिकारी। रीझि खीझि नहिं सम कामारी॥
दो०—द्वेष न होवे काहु से, रागहुँ बढ़े न फिक्र।
याहि ध्येय सन्तत रखत, करि परमारथ जिक्र॥
मनकी क्रिया तजत सुख स्वादा। जानि जमा नित घटत न ज्यादा॥
निर्णय पथ अनुराग गोसाईं। चलत फिरत यक चित पद पाई॥
जीवन गति मन वेग स्वभावा। जानि पृथक रहि काल को दावा॥
पांचो विषय महाविष मीठे। तृष्णा श्रम अनरथ तजि दीठे॥
अन्न शुद्ध करि जल को छानैं। कबहु बिवाद विषाद न ठानैं॥
शरणागत की भक्ति निबाहैं। पतित जीव को करत सुराहैं॥
जो कुछ हंस दशा की रहनी। शोध बोध धारत सब करनी॥
परमारथ विद्या के पण्डित। मंगल कुशल निधान अखंडित॥
शुद्धाचार मध्य व्यवहारा। सहसा करत न कछु टकसारा॥
बार बार मन सुख श्रम देखत। बीर धीर परमारथ लेखत॥
कहे न इति संतन गुण सिंधू। तारण तरण दीन के बंधू॥
गुरु साधू सज्जन गति एकू। जिनके रहनि बिमल पद टेकू॥
काय वचन मन संतन शरणा। गहहु चहो जो भवनिधि तरणा॥

दो०—दोष सिंधु जिमि दुष्ट जन, काम क्रोध मद रोष।
गुण वारिधि तिमि संत जन, बोध तृप्ति संतोष॥
सहि गहि रहि मन मारिके, थीर करत मन वेग।
तेहि कर फल लहि शांत पद, लिये बोध कर तेग॥

संत रहस्यावली समाप्त

॥ ज्ञान और भक्ति निरूपण प्रारम्भ ॥

संतन के गुण मति अनुसारा। कह्यों कछुक तुम सुनेउ बिचारा॥
सरि पैरै की नौ चढ़ि लेवै। सहज मिलै गति संतहिं सेवै॥
अब तेहि ग्रहण हेतु श्रम कीजै। जेहि ते जन्म मरण दुख छीजै॥

शिष्य वाक्य

सुने साधु गुण द्वन्द विनाशक। नमों नमों गुरु ज्ञान प्रकाशक॥
जन संशय नाशक गुरु बाना। धृक गुरु तजि जो और लुभाना॥
सुनि सतसंग छकित मति जाके। सो पिपासु नहिं बोध सुधाके॥
बेर बेर बलि जाउँ गोसाईं। सुनत कथामृत हिय न अघाई॥
विमल संत गुरु जेहि पर दाया। करहु सद्य तेहि छूटत माया॥
शिशु बल मातु मोर बल स्वामी। अब आगे पूछहुँ अभिरामी॥
दो०—बोध शोध साधन करन, मोक्ष हेतु नर देह।
तेहि महँ बहु विघ्नहुँ अहैं, जानत प्रभु तुम येह॥
अल्प आयु शिशुपन कुछ जावै। अंत वृद्ध वय शक्ति अभावै॥
बीच अवस्था सभरन हेतू। तहाँ आधि बहु व्याधि अचेतू॥
गृह के चोर मदादिक कामा। शुभ गुण लूटि देत दुख धामा॥
नाना व्याधि व्यथा तन माहीं। तृष्ति मृगा इव भोग अमाहीं॥

सर खोदत आशा बय गयऊ। तृषा बुझानि न स्थिति लयऊ॥
सिकता घर जरतै बन माहीं। यतन बिघन तृष्णादव लाहीं॥
प्रिय जन मिलन बिछोहके द्वन्दा। आदत मन इन्द्रिन के फन्दा॥
काल गाल मम आशा कैसे। फाँसी चढ़त लगन लगि तैसे॥
स्वारथ जुवा सबंधिन मेले। चूकेउँ दाँव सकल मोहिं ठेले॥
केहि केहि मन पूरा करि पाऊँ। राग द्वेष में हिय झुलसाऊँ॥
एक जीव को चहुँदिशि खैंचहिं। सुख मनसा हित निज२ ऐंचहिं॥
जग दुख देखि अलग जो जाऊँ। बानी बहुत बहुत सुनि धाऊँ॥
बिबिधि ग्रन्थ सिद्धांत प्रचारी। एक जीव कर को हितकारी॥
केहि २ पढ़हुँ गहहुँ कहँ जावहुँ। मृत्यु खड़ीशिर कहँथिति पावहुँ॥
अहि के गाल भेक चह डाँसा। खानि बानि कहुँ पूरी आशा॥
बहुत कहौं का गुरु के आगे। चंचल दोष दास कहं लागे॥
बलि पशु सम जानहु गति मोरे। रक्षा करहु शरण मैं तोरे॥
जो स्वरूप लहि परम विरागी। रहहु अचाह अभार अदागी॥
निःसंशय निर्भय पद राजत। मन स्वभाव लत पार विराजत॥
पूरण काम अभय अविनाशी। जन्म मरण भव बीज विनाशी॥
चाह क्रिया परवशता मोचन। सार शब्द कहिये हिय रोचन॥
बोधशोध गति मति प्रभु जैसे। सत्य पाल चाहहुँ पद तैसे॥

दो०—नित्य तृप्त चिद एक रस, गुरु पद स्वयं प्रकाश।
यह पद चाहत दुख रहित, कहिय जानि निज दास॥
ज्ञान भक्ति कर भेद कहि, अभय दान दै देहु।
हौं अनाथ जग बन पचौं, करि गहि पथ लै लेहु॥

सुनि अस आरत बचन सु सादर। निर्णय बचन कहत गुण आगर ॥

गुरु वाक्य

ज्ञान भक्ति महँ कुछ है अंतर। वह धन वह रक्षक सुनु मन्तर ॥
धन रक्षा बिन काम न आवे। ज्ञान भक्ति बिन नहिं ठहरावै ॥
ज्ञान रूप जो स्वतः स्वरूपा। नित्य अनादि अखंड अनूपा ॥
सोइ ठहराव भक्ति आधारा। नाशै संसृत हो निरधारा ॥
भूलहिं से सब दुख जिव केरा। यथा सपन दुख रजु अहि घेरा ॥
निज स्थिति जाने बिन ताता। कबहुँ न होत जीव कुशलाता ॥
विद्या सकल क्रिया चतुराई। कौशल कला जहाँ लगि भाई ॥
सब जानत सब करत ये जीवा। शोक मोह तम बढ़त सदीवा ॥
हेर फेर पाँचहिं में घेरे। निज स्वरूप जाने बिन प्रेरे ॥
स्वतः प्रकाश बिना सब साँचो। भव भ्रम बारि तासु सुख राँचो ॥
स्वयं सत्यता को जब ज्ञाना। सोवत से तब जागि ये जाना ॥
स्वयं बोध रवि जब उगि आवै। जड़ आशा तम किमि ठहरावै ॥
रवि ढाकन घन मद जो छावै। ताहि प्रभंजन भक्ति उड़ावै ॥
दया क्षमा सत शील विचारा। देखि परत पथ शुचि टकसारा॥
सब से श्रेष्ठ अकाट्य अबाधू। स्वयं स्वरूप रमत जहँ साधू ॥
जाहि लहे ह्वै संतत थीरा। सुनहु ज्ञान सोइयकचितधीरा ॥
सब इन्द्रिन के गुणहिं प्रकाशे। जानि मानि सुख उर में ग्रासे ॥
नाम रूप गुण कर्म प्रतीती। करत याद गो मन पर जीती ॥
पूर्व विषय धारण करि हियमें। सन्मुख सब अनुभव करजियमें ॥
तीन काल जाको होय भासा। प्राण प्रकृति गो मनहिं उजासा ॥

भास प्रत्यक्ष प्रोक्ष जड़ दूरी । भासिक चेतन स्वयं हजूरी ॥

दो०—भू अग्नी जल वायु गुण, गंध रूप रस पर्श ।
शब्दादिक पांचो महैं, मन भव शोक न हर्ष ॥

गंध गंध कहँ कबहुँ न जाने । रूप रसादिक ज्ञान न आने ॥
पाँचो विषय रूप सब भूता । कारण कारज जड़हिं सबूता ॥
पंच विषय के पार न जावै । गो गोचर जो दृश्य दिखावै ॥
त्यागब गहब परीक्षा नाहीं । दुख सुख गत सबजड़ दरशाहीं॥
कारण कारज एक स्वरूपा । बीज वृक्ष जड़ सब अँध कूपा ॥
जेहि में जेहि अत्यंत अभाऊ । सोअभाव मिलि बनत न भाऊ ॥
जड़ जड़ मिलि चेतन कि उजासा ।सकल टौर मिलि तमकि प्रकाशा॥
ज्ञान भाव ज्ञाता तहँ जीवा । कारण कारज रहित सदीवा ॥
जगत ब्रह्म का निश्चय कर्त्ता । षट प्रमाण को जो कोइ धर्त्ता ॥
विधि निषेध करि जो अवशेषा । सोइ न्यायक अपरोक्ष विशेषा॥
पांचो विषय गहत है जोई । दुःख जानि फिर त्यागत सोई ॥
सो अपरोक्ष सकल कर द्रष्टा । अजर अमरसो नाहिन भ्रष्टा॥

दो०—स्वयं सत्य परकाश ते, भासत सब कुछ सांच ।
भास अध्यास बिकलप सब, कारण कारज कांच ॥
राम कृष्ण ब्रह्मादि सब, जेहि बदते सब सिद्ध ।
सोइ जीवन पद श्रेष्ठ लखु, सिद्धक परम प्रसिद्ध ॥
सदा एक रस अछत निज, तृप्त स्वतः सद रूप ।
सो तथापि सम्बन्ध वश, मृग इव बहि भ्रम कूप ॥
जड़ चेतन सम्बन्ध में, भूल भरम है तात ।

भूल भर्म वश ग्रन्थि यह, मेल अनादि लखात ॥
सूंघि स्वाद सुनि पर्श लखि, पाँचो में सुख मानि ।
उर में फोटू टिकत सोइ, मन स्वरूप भ्रम खानि ॥
करत क्रिया शुभ अशुभ दुइ, पंच विषय के हेत ।
काल कर्म अध्यास वश, क्षण थिरता नहिं लेत ॥
ज्यों परमाणुन मेल से, यथा योग्य जड़ सृष्टि ।
बीज वृक्ष फल फूल जड़, शीत उष्ण बहु वृष्टि ॥
उड़ि बहि केहु बिधि बीज जिमि, आय लीन निज ठाँव ।
समय पाय फिर उगत सोइ, दल फल फूल स्वभाव ॥
जीव सृष्टि तिमि ग्रंथि युत, संस्कार आधार ।
पाप पुण्य कृत दुख सुखौ, तजत गहत वपु क्षार ॥

निज निज मनोसई आधारा । करत कर्म फल लहत अपारा ॥
जाग्रत वेग सपन बहु देखै । लीन सुषुप्ति जगत वहि लेखै ॥
आवागमन रु गर्भ अवस्था । जन्ममरण फल सकल व्यवस्था॥
गुण गति भोग अवस्था योगू । संस्कार वश सब भव भोगू ॥
पूर्व जन्म शिशु संसृत दरशै । क्षीर पान भय शोक जु हरषै॥
संस्कार वश चव की रासी । नर पशु अण्डज उष्मज भासी॥
पर पीड़ा कृत दुःख अपारा । पर हितसे सुख बास सम्हारा ॥
अस हिय जानि सुबुध पर पीड़ा । कबहुँ न करहिं घात कर क्रीड़ा॥
मन वच कायक धर्म कराहीं । तेहि करफल सुख बहुपुनिपाहीं॥
करत करत शुभ कर्म अनेका । अंतःकरण शुद्ध करि टेका ॥
कोऊ मोक्ष हित करत प्रयत्ना । जस जस यतन करत लहि रत्ना ॥

जे जड़ बादी तामस लोगू। कर्म भोग फल मानि अयोगू॥
महाघोर हिंसादिक पापा। विषय परायण सुमति न व्यापा॥
महा मोह वश दुख दे औरै। भोगत विविधि दुसह दुख बोरै॥

दो०—क्षण मात्रहु नहिं स्थिति, अहो ग्रन्थि दुख रूप।
काम क्रोध रज तम वशी, गिरत पचत भ्रम कूप॥
कहुँ अग्नी महँ जलत नित, कहुँ जल माहिं डुबाय।
तीर तुवक असि वार से, घायल घुर्मित हाय॥
फाँसी चढ़ि कहुँ जेल लहि, कहुँ पनही शिर त्रास।
बाँधा मारा जाय कहुँ, बिलखत सुख के आश॥
कुष्ठी अंधा लूल कहुँ, शूल विविधि विधि रोग।
नहिं चाहत भोगत विवश, देह बासना शोग॥
नारी सुत धन धाम भू, प्रिय सुख मानत जाहि।
तेहि वियोग में जलत नित, शिर धुनि धुनि पछिताहि॥
करत परिश्रम भोग हित, ज्यों ज्यों पावत भोग।
त्यों त्यों चूसत रक्त तेहि, तृष्णा डाकिन शोग॥
राज काज भव वस्तु को, ज्यों ज्यों करत एकत्र।
त्यों त्यों दुश्मन होत सब, जरत पचत सब तत्र॥
प्रेमी जन के मनहुँ को, पूर्ण करन की भूख।
होय सकामी पूर्ण कब, कलह करत सब दूख॥
भोग मिलन हित पचत नित, मिलतहिं तृष्णा और।
अनमिल दुख त्रयकाल में, तबहुँ भूल वश दौर॥
सदा हानि है सामने, चाह भूख दुख देत।

केहु विधि पूरण चहत तेहि , मथत बारि घृत हेत ॥
ईश ब्रह्म जड़ सृष्टि त्रय , मनोमई को रूप ।
सोई रूप निज मानि के , जरत दुसह दुख भूप ॥
ईश्वर से जग होत कहिं , ब्रह्महु जगत स्वरूप ।
जड़ सृष्टी जग रूप ही , कहँ स्थिति तहँ भूप ॥
स्वयं सत्य हरिदेव भ्रमि , सहत दुसह दुख भार ।
सन्ध्या सुनि हरि खर लह्यो , परख लहे तेहि डार ॥
सुनहु मित्र भय भास को , तत्वमसी त्रय कर्म ।
परखि जाल भव शूल को , त्याग लहे पद पर्म ॥
जो सन्मुख नहिं चाह तो , क्रिया करत नहिं जीव ।
चाह वीज सब जारि के , ठहरत मुक्त सदीव ॥
भास आश के राग में , दुःख देखि वैराग्य ।
करहु परीक्षा दृष्टि दृढ़ , जीवन मुक्त अदाग ॥
ज्ञान बोध पारख यही , जड़ से भिन्न स्वरूप ।
जड़ासक्ति तजि एक रस , निराधार थिर भूप ॥

ज्ञान निरूपण समाप्त

❋ भक्ति निरूपण—छन्द ❋

शिष्य वाक्य

ज्यों अंध लहि निज नैन, त्यों जानि जिव भौ चैन ।
नित आहुँ अमृत रूप , पर भूल वश अँध कूप ॥
लहि रंक पारस कोष , गुरु ज्ञान कहि त्यों पोष ।

नित जीव जमा जस थीर, जस ग्रन्थि टूटै भीर ॥
सो भक्ति केहि विधि होय? बाधा करै तेहि कोय ।
पुनि भक्ति साधक अंग, कहिये दयालु प्रसंग ॥
कबु होउँ नहिं विपरीत, तव प्रेम अघटित नीत ।
करि आपने अनुसार ? वर भाग्य दर्श तुम्हार ॥

गुरु उत्तर

दो०—ज्ञान परख धन नित्य तव, तेहि मूसत मन वेग ।
मद स्वभाव आसक्ति ठग, लिये प्रलोभन तेग ॥
चोरन को ममता अधिक, तजि न सकत यह हाल ।
तेहि ते परखै प्रथम छल, ठग संगत दुख काल ॥
सो पारख गुरु संग से, होत दृष्टि पुनि पुष्टि ।
होय अमद गुरु शरण लहि, जग में रखि दुख दृष्टि ॥
गहब स्वभाव अनादि से, होत स्वभाव बलिष्टि ।
आदत मन इन्द्री बली, भ्रमत चक्र सम सृष्टि ॥
ज्ञान होत ठहरत नहीं, तेहि कारण यह जीव ।
धारा प्रबल प्रवाह है, चंचल करत सदीव ॥
तेहि ते थिर यहि होन को, देखि परत इक युक्ति ।
जो पारख गुरु संत शुचि, तेहि पद गहि कर मुक्ति ॥
भक्ति ज्ञान कर हेतु है, ज्ञान भक्ति कर हेतु ।
दोनों बिच वैराग्य है, तीनों भवनिधि सेतु ॥
बिन गुरु भक्ती के किये, बाढ़त मन के रोग ।
जग के सब उत्पात करि, पावत नित प्रति शोग ॥

विधि हरि हर सुर असुर बहु, प्रतिमा जड़ आधार।
अग जग सर्व सरूप पुनि, गुरु पद बिन किमि न्यार॥
अस कछु जानि परै सुनु मीता। बिन गुरु भक्ति न यम कहँ जीता॥
भोग विराग रूप निज रागी। गुरु तेहि भक्ति लहैं बड़ भागी॥
भक्ति अखण्ड सत्य पद देनी। सुलभ सरल मन रुज कहँ छेनी॥
सुमति सुचाल सुयश गुण आवै। स्वारथ परमारथ सुख पावै॥
तृष्णा हत हो बंधन टूटै। गुरु पद प्रेम अचल सुख जूटै॥
यथा पाथ सब तालहिं आवै। नम्र अमद बिच गुण सब धावै॥
शिशु धन धाम बाम भरपूरी। चतुराई विद्या गुण भूरी॥
बिन गुरु भक्ति सकल सुख ऐसे। सपने की बहु सम्पति जैसे॥
ज्ञानी गुणी शूर कवि दाता। पढ़नहार जे वेद विधाता॥
बिन गुरु परख पुरुष के पाये। पति बिन जार यथा भटकाये॥
ईश ब्रह्म स्वर्गादिक देवा। भव भव मूल भूल थिति केवा॥
संशय सर्प डसे भव धारा। काम क्रोध मद लोभ अपारा॥
गहि अभिमान भूल भ्रम कंटक। असमंजस कुंदुक इव संकट॥
यतन विघ्न तृष्णा सब शोगा। ज्ञान भक्ति बिन सब दुखभोगा॥
यहि कारण जे बुध अधिकारी। बोध सहित भक्ती कहँ धारी॥
तेहि ते भक्ति भरत सम लीजे। जेहि ते भव दुख सबहीं छीजे॥
दो०—गुरु को हेतु न स्वार्थ कछु, जड़ तम रहित प्रकाश।
हेतु आपनो जानि के, बनि गर्जी ह्वै दास॥
नित्य अखंड अनन्त धन, तेहि सम कौड़ी सेव।
का दै समता कीजिये, स्वयं सत्य गुरुदेव॥

मनसा गुरु की पालियत, सेवन भक्ति आदि।
तेहि को फल अपनो लहै, यथा खेत बीजादि॥
ह्वै सकाम भक्ती करै, तौ पावै जग सुक्ख।
जो अकाम गुरु शरण ह्वै, तौ नाशै भव दुक्ख॥
उभय भांति से लाभ लखि, जो न गहै पथ भक्ति।
नर तन लहि फल का लह्यो, यथा सूम धन शक्ति॥
धीर सुयश गुण ज्ञान हू, शुद्ध स्वभाव सुचाल।
मन बांछित दातार फल, भक्ति तजै मति बाल॥
निज मनसा को मेंटि के, गुरु मनसा गहि लेय।
सेवा साधन कर्म मन, गुरु को भार न देय॥
यहि विधि पूरण भक्ति से, निज स्वरूप ठहराय।
बाधक लोभ कुसंग मद, कामादिक तजु भाय॥
साधक रक्षक अंग जे, गहे भूप जस सैन्य।
सो रक्षक भट अमित हैं, कछुक कहत सुख दैन्य॥

जेहि ते कबहुँ न भक्ती छूटै। वह मन्तर अब सुनहु अटूटै॥
रक्षा अंग प्रथम गहि लेहू। साधु संग में मन चित देहू॥
दूसर सार शब्द जो टेरे। निर्णय कथा सुनहु बहुतेरे॥
तीसर अंग दासपन लेवै। सज्जन वृन्द विविधि विधि सेवै॥
चौथे शुभ गुण सबहीं लावै। सत्य क्षमा संतोष बढ़ावै॥

दो०—पंचम धीरज गुण सहित, अवगुण जीतै मीत।
इन्द्रिय दमि भव पंथ से, गुरु पद प्रिय नवनीत॥
छठो कुसंगति नहिं करै, बंचक कुमतिन संग।

सतयें सतग्राही रहै, मद न लहै अष्टंग[१] ॥
नौधा वपु सम्बन्ध ही, देखै दुख को रूप ।
चाह भूख तृष्णा विघन, लखि उपराम अनूप ॥
दशधा अपने दोष गुण, करै परीक्षा नित्त ।
साहस हिम्मत नहिं तजै, भक्ति एकादश नित्त ॥
द्वादश नित सदग्रन्थ कहँ, करै पाठ मन लाय ।
रक्षक अंग द्वादश गहे, सो न कबहुँ विनशाय ॥
एकौ दुइ गुण गहि भले, तजै नहीं सतसंग ।
तो सब साथी आव इमि, रक्षि मातु शिशु ढंग ॥
निरअभिमानी निष्कपट, प्रिय तेइ सरल सुजान ।
अब आगे औरौ कहब, भक्ति अंग सुख खान ॥
दर्शन पर्शन प्रेम भय, लेय ज्ञान औ ध्यान ।
सेवा मेश भक्ति के, सप्त अंग परधान ॥
सो०—आलस औ अभिमान, लोभ कपट जब त्याग हिय ।
तब सेवा मन आन, रक्षण पोषण सकल विधि ॥
तरु माली रक्षक फल पावै । तथा भक्ति फल थिति गति आवै ॥
करम स्वभाव वेग मन काला । तुरत नशै मातहिं शिशु पाला ॥
सो सब कह्यों सकल तोहिं भेदा । एक वृत्ति हो शरण अछेदा ॥
कैसउ हीन दीन अविचारी । भक्ति करत भेटैं अधिकारी ॥

शिष्य वाक्य

साहेब दया बहुत सुख पायों । जन्म जन्म की प्यास नशायों ॥

टिप्पणी-१ देह-धन-रूप-राज्य-विद्या-तप-सिद्धि-ज्ञान ये अष्ट मद त्याग ।

सुनि सुनि गुरु साहेब की बानी। दग्ध हृदय यह बहुत जुड़ानी ॥
उभय ग्रन्थि बन मन भव आगी। जरत दुसह दुख जीव अभागी ॥
निर्णय वचन बरषि सुखदाई। शान्त कीन्ह दव श्री गुरुराई ॥
तव लगि दास चहत आधारा। जब लगि तनु तजि होउँ न पारा ॥
भक्ति ज्ञान गुण पारख नाहीं। मन प्रवाह में फिरहुँ सदाहीं ॥
जौन बासना आगे आवै। प्रबल भवँर सोइ मोहिं डुबावै ॥
सो अनाथ लखि करुणा रूपा। कर गहि निज सम सम करि भूपा ॥
फाँसी चढ़त बहत भव धारा। देखि बचायउ परख उदारा ॥
सो उपकार चुकाव कि होवै। निज हित हेतु दास पद जोवै ॥
जिनकी कृपा दिव्य हो नयना। भरम पहाड़ उड़्यो सुनि बयना ॥
सदा एक रस सद्गुण घेरे। विचरत अभय भक्त गुरु केरे ॥
जे गुरुदेव प्रताप सकल सुख। भूलि जाउँ तौ यहि है बड़ दुख ॥
हृदय भाव जानत गुरु स्वामी। संतत करहु मोहिं अनुगामी ॥
लोक वेद पथ चहु विस्तारै। बिन गुरु परख मीत अंधियारै ॥
देखहु मित्र शिष्य कर भाऊ। कबहुँ न हंता सनमुख आऊ ॥
पुनि देखहु गुरुकी शुचि रीती। दलन ताप अघ अवगुण जीती ॥
गुरु स्वामी हम दास सदाई। बिन यहि भाव न भव तरि जाई ॥
सुनुहु तात गुरुभक्ति बिना सुख। स्वप्न सरिस भ्रम जानहु सब दुख ॥

छन्द—

प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है ॥ टेक ॥

धन धाम सुत वित बाम ये, क्षण भंग देह दिखाय है।
जितना करो सुख भोग तृष्णा, डाकिनी बढ़ि जाय है ॥

मूल भ्रम आसक्ति तृष्णा, राग द्वेष जगर्थ है।
दुखसिंधु में ही पच रहे, प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है ॥१
नर मोह निद्रा में पड़े, गुरु मंत्र नाहिं सुहाय है।
दाम चाम गुलामियो में, करत निशि दिन हाय है॥
स्वार्थ मद में मस्त हो, कहुँ काम अग्नि बुझर्थ है।
काम अगिनी में जले, प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है ॥२

चाह सिंधु भयावने, नौका सुबोध सुहावने।
गुरु साधु खेय के पार करि, अविचल सुठौर को पावने॥
पद पंकजौ जेहि सेवते, हो दीन हीन समर्थ है।
वाचालियाँ चातुर्यता, प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है ॥३
वेद शास्त्र पुराण विद्या, पढ़ि चतुर्दश लीजिये।
वाक्य युद्ध में जीति सबहीं, भोग पशुवत कीजिये॥
ले स्वराज्य अजादियाँ, मन वेग वश भटकर्थ है।
क्षण भंग कुछ भी हाथ नहिं, प्रभु भक्ति बिन सब व्यर्थ है ॥४
नास्तिक कुतर्की जो अहैं, तेऊ जो सन्मुख आयँगे।
निर्मानता से प्रश्न करि, तेउ सत्य वस्तु स्व पायँगे॥
नित्य सत्य स्व लक्ष करि, संचित दवै जु अघर्थ है।
जग की कला कौशल सकल, सतसंग बिन सब व्यर्थ है ॥५
मन इन्द्रियों के हो वशी, नर एक एक सतावते।
हिंसा अनीति कठोरता, बहु भाँति पाप कमावते॥
हाकिम हुकुम बहु जोर जुल्मैं, राज काज मदर्थ है।
नर तन सफल कैसे भला, सतसंग बिन सब व्यर्थ है ॥६

काग श्वान बिडाल से, नर भोग हित व्याकुल पचे ।
प्रारब्ध के कुछ ज्ञान बिन, संतोष कैसे आ सके ॥
पुरुषार्थ धर्म विवेक भी, जाने नहीं तु अकर्थ है ।
स्वप्नवत बहु भोग सुख, सतसंग बिन सब व्यर्थ है ॥७
स्वार्थ पूरा हो गया तब, मित्र भी शत्रू बने ।
सुख चाहना के वो वशी, फिर कौन अपना है मने ॥
स्वार्थ अंत न हाथ कुछ, सब शोक मोह अनर्थ है ।
मद मस्तियां झड़ जायँगी, सत्संग बिन सब व्यर्थ है ॥८

छं०—सुने ज्ञान भक्ती दया तोर स्वामी ।
गहूँ एक चित से करूँ भक्ति स्वामी ॥
शिशू जानि अपना निबाहो हे स्वामी ।
गुरू साधु सदगुरु नमामी नमामी ॥

दो०—भक्ति ज्ञान कर भेद कहि, श्री गुरु शांत विशेष ।
कहन लगे विनयावली, श्रोता जन मुद भेष ॥

भक्ति निरूपण समाप्त

❀ विनयावली प्रारम्भ ❀

जस कुछ आयँ गुरू के धर्मा । तस प्रभु माहिं देखिये पर्मा ॥
रखि रखि मान प्रखावत जाला ।स्वार्थ रहित अस कोउ न दयाला॥
अधिक बेग मन वश लखि जीवन। क्षमा मौन गहि शांत करीवन ॥
सतपुरुषन की सुन्दर रीती । बैर त्यागि जल्दिहु नहिं प्रीती ॥
प्रीति होत देरी अति लागे । लगी प्रीति फिर टुटत न आगे॥

जेहि स्वभाव अतिशय है त्यागी। जेहि व्यवहार भार सम लागी॥
सो व्यवहार करत कछु काहे। अधिकारी प्रति दया निवाहे॥
माली तरु इव रक्ष हमेशा। प्रणत पाल को संतत पेशा॥
जेहि विधि भार न कोई पावै। वह स्वभाव साहेब बर्तावै॥

दो०–सनमुख प्राणी होत ही, संकोचत जिय माहिं।
दुख न होय केहु विधि इसे, अस बिचार प्रभु आहिं॥

बिन जाने प्रभु नरन स्वभावा। गहन बिपिन सम अति भय पावा॥
प्रविशत तेहि महँ सकल बिपत्ती। तेहि ते गहत निराश निवृत्ती॥
जो कोइ शरण सामुहे आये। रहित उपाधि जानि गुरु पाये॥
तो निःस्वार्थ प्रखावत जाला। सब अपराध बिसारि विशाला॥
बंधन मोक्ष बोध की रक्षा। करत सत्य चर्चा अति पक्षा॥
कुसँग त्याग पर जोर लगावत। साधन पथ अतिशयहिं दृढ़ावत॥
विषयासक्ति फिक्र जिमि छूटै। वह उपाय गुरु देत अटूटै॥
कामादिक मन सम्भव रोगा। संसृत चक्र मिटै सब शोगा॥
वह उपाय गुरु बेरहिं बेरा। गहत गहावत परख सबेरा॥

दो०–हितकर सरल उदार शुचि, क्षमा अचाह अभार।
धीर सकोची शांत चित, साधु नीति गहि सार॥

जासु स्वभाव अरिहुँ संतोषा। सो कि करत निज जन प्रति रोषा॥
तृण सम देह सुखहिं तजि दीन्हें। कौन हेतु जग से गुरु लीन्हें॥
बिना स्वार्थ असमंजस भारू। केहि विधि होय जीव निस्तारू॥
सहज स्वभाव दया में पागे। परखावत सब संधि अदागे॥
अस विचार निशि वासर धरहीं। मोहिं ते भार न कोई लहहीं॥

ऐसेहु प्रभु को तजत निदेशा। काहे न सहौं कलेश हमेशा ॥
हा! हा! मोहिं संताप बहूता। हितकर युक्ति छोड़ि कछु कूता ॥
यह सब दोष निशील निशंकी। करत निवेदन प्रभुहिं कलंकी ॥
दो०—बुद्धि तुला पर तौलहूँ। स्वामी गुण निज दोष।
तौ धीरज नहिं आवई। कहाँ कृपा कहँ रोष ॥
काह कहौं असमंजस जिय की। जानत हो प्रभु मोरे हिय की ॥
हम हठि करत सकल वहि करनी। जेहि ते अधिक बढ़त जिय जरनी ॥
जहँ सेवा तहँ करत महंती। जहँ विराग तहँ राग लहंती ॥
जहाँ विविध बिधि साधन चाही। तहँ इन्द्रिन के रस भरि लाही ॥
जहाँ नारि घट मोहक मूला। तहँ प्रमाद वशि संगत भूला ॥
जहाँ लोभ मद क्रोध को तजिये। गो मन जीति गुरू पद भजिये ॥
गुण बदले तहँ अवगुण लीन्हें। तेहि पर दोष प्रभुहिं हम दीन्हें ॥
संग बसी संतनहिं निहोरे। जो कुछ सुकृत शिला वटोरे ॥
सो अभिमान दम्भ हरि लीनी। हंस भेष रुचि काग मलीनी ॥
दो०—भेष रेख तब नाम लै, पूर करत मन माँग।
कपट चतुरता मान हित, भूलत तब पद राग ॥
दास कहावत तोर प्रभु, अहौं दास मन केर।
मनमाने नहिं पाव तो, रूठत लगत न देर ॥
चाकर बनि पुनि करत पटैती। अर्पण करि पुनि करत डकैती ॥
देव! देखु अज्ञान प्रकाशा। दास तोर मानौं उपहासा ॥
कहौं कहावौं आश्रित तोरे। नहिं कछु प्रेम न भय मन मोरे ॥
भूल दशा में भूले तोही। जानि बूझि करतब फिर वोही ॥

क्षण क्षण बदलत हम संसारी। काम रूप अहि मदन प्रचारी ॥
भूलत साहेब तुमको हमहीं। गुरु तो हित चाहत सब जनहीं ॥
संसृति सन्निपात मोहिं गाँसे। भूल जनित दुख सुख सत भासे ॥
कर्म बासना सबहीं करि धरि। कहँ न गयों जग योनि जनम मरि ॥
सकल दुःख भाजन भयो संतत। अपने भूल सह्यों दुख अब तक ॥
अमित मित्र प्रिय पितु अरु माता। कोउ न दीन्ह शिख तुम सम ताता॥
दाँव जीति सबदलि मलि देही। गुरु बिन कौन जु रक्षक येही ॥
अब तोहिं जान्यौं बन्दीछोरा। बंध नशन हित रूप है तोरा ॥
जानतहूँ अस स्वामि भुलाये। जो दुख हो सोइ थोर लखाये ॥

दो०—आज्ञा पालन कौन कहि, मन में देखत दोष।
निर्णय बच संतोष प्रद, सुनि सुनि जिय में रोष ॥
करत बराबर बतकही, प्रेम कछुक डर नाहिं।
छिन स्वामी छिन दास बनि, मान अधिकता चाहि ॥

अहो मूढ़ मम समको जग में। मगन रहौं मृग जल गो मग में ॥
भव तरनी करनी रहि पाछे। बर बर कहनि रहनि नहिं आछे ॥
शब्द रूप रस गंध स्पर्शा। करत यत्न भव लगि अति हर्षा ॥
बढ़े पदार्थ समाज रु त्रिया। पाय मदन मद प्रेरि अविद्या ॥
प्राप्त वस्तु छूटत यह नेमा। राग द्वेष तृष्णानल जेमा ॥
जरत बरत झुलसत जस पाँखी। अंधकूप गिरि अछतहुँ आँखी ॥
यह मम भूल अधिक है स्वामी। बलि पशु हौं तउ मद के धामी ॥
जौन बासना सनमुख आवत तौन समय तैसहिं करि भावत ॥
अस मन वशी रहौं सब काला। का करि सकत कहत मम जाला ॥

नहिं कुसंग से डरपत जीमा । तेहि ते दुख तम दोष असीमा ॥

दो०—आलस औ अभिमान वश, आसक्ती अज्ञान ।
जस कुछ भक्ती चाहिये, तस न कीन्ह मन आन ॥

जे संतत गुरु पद के नेही । ते भव भोग वमन तजि देही ॥
जे परमारथ पथ अनुरागे । देह सुखन तजि साधन रागे ॥
जे मुमुक्षु ते गुरु पद ऐना । सतसंगत में निशिदिन चैना ॥
जे जिव कारज में मन दीन्हे । जीत मान तजि शम दम लीन्हे ॥
ऐसे रहनि एक मोहिं नाहीं । तेहि पर कहत मोहिं सम काहीं ॥
अमित जन्म कृत दोष स्वभावा । सहज वृत्ति उतही को धावा ॥
जड़ाध्यास वश शुन्य विचारा । बहत रहत फुरना के धारा ॥
मन इन्द्री बस्तुन संयोगा । करत प्रलोभ वासना रोगा ॥

दो०—मान धाम धन भोग बहु, विद्यादिक मद पूर ।
फूलत पचत विजाति में, जो मोहिं बंधन कूर ॥
जस शिक्षा करि अन्य से, तस न गहौं मैं आप ।
चहौं मान नहिं देत किहु, हा ! हा ! मोहिं संताप ॥

जेहि ते स्वप्नेहुँ सुगति न पावत । सोइ स्वभाव मोरे मन भावत ।
नयन मलीन अशुचि लखि प्रमदा । सुने प्रपंच-श्रवण पर बिपदा ॥
बचन दोष पर कहत मलीना । रहत बासना मद उर लीना ॥
धन बल विद्या आगे आगे । देश समाज पदारथ पागे ॥
वपु मन इन्द्री सकल विजाती । तेहि तृष्णा में बहौं दिन राती ॥
झख मृग शलभ भवँर गज आदी । विषय हेतु निज प्राण गमादी ॥

दो०—अनजाने जिव पाँच जो, फँसे विषय में आय।
जानि बूझि फँसि जात हूँ, मो सम अधम न पाय॥
नित्य सत्य अपरोक्ष चिद, स्वयं प्रकाश निरधार।
ऐसो जो मम रूप है, तेहि न कियो निरुवार॥

मान जीत मन मानै जैसे। सुख विषयन के चाह धरै से॥
धन ऐश्वर्य चहौं जस स्वारथ। तस न लीन मति अति परमारथ॥
कोटि विघ्न सहि तजत न भोगा। तस गुरु पद के भयउँ न योगा॥
हानि लाभ जस देह के मानत। तस न कबहुँ परमारथ ठानत॥
करत प्रपंच न थाकत जैसे। श्वान समान घुमे जु अनैसे॥
तस साधन पारख प्रिय नाहीं। यक चित रहत न गुरु पद माहीं॥
शुभ साधन नहिं हंस दशा के। कबहुँ न भोग शोग मन थाके॥
लाभ कौन पंडित पद पाये। धृक पशु भोग शोग मन भाये॥
बर बर ज्ञान प्रमाद लिये का। जीत मान बहु पूज्य भए का॥
जो मन सम्भव मिट्यो न रोगा। खर इव विद्यादिक सब शोगा॥

दो०—मोह जनित करनी करहुँ, महिमा में अति फूल।
थिरता हित गुरुबैन सुनि, मान भंग लखि शूल॥

भव वारिधि कर सुन्दर नावा। विरति बोध गुरु भक्ति लखावा॥
सबल अमल गुरु साधु खेवैया। अधिकारी के पार करैया॥
सो सब मिल्यो सकल संयोगा। साधन धाम मोक्ष उद्योगा॥
ऐसेउ समय पाय नहिं सोचत। तजि अमृत मृग जल धृग रोचत॥
करि अन्हाय धूलहिं पुनि झोंकत। बाम प्रसव दुख पुनि अवलोकत॥
भोग हेतु स्वारथ जग साधत। दाँव जोति को किहिं अनुरागत॥

बलि पसु सम जग मारग भूला। विद्या बुधि मद में मति फूला॥
तथा स्वभाव पड़ेउ मम नीचा। दृश्य भास जड़ आशहिं खींचा॥

दो०—वचन भेष वैराग कर, अघ अवगुण में ठोस।
विष खेती अमृत चहत, निर्णय सुनि सुनि रोष॥

जब तक आप मिल्यो नहिं देवा। तबतक नहिं कछु जान्यों भेवा॥
मिले सकल जब जाल प्रखाये। हम दीनन को शरण लगाये॥
हंस दशा लहि जिव सुख पाये। वही दृष्टि अब चहत बचाये॥
पै डरपत मन सम्भव गति से। बहि न जाउँ कहुँ काल कुमति से॥
मन स्वभाव गो केहुँ दासी। बना चहौं प्रभु केर उपासी॥
सिंधु खार जल संग प्रभावा। अगिनि वायु सँग घन पद पावा॥
बरसत सोइ जल मधु हितकारी। संग प्रताप बिदित जग भारी॥
दृढ़ अवलम्बन यही है एका। प्रभु सँग लहब रहनि सुविवेका॥
समरथ साधु गुरु सँग बोधा। रक्षा युक्ति मिलत तहँ शोधा॥
जन दुर्गुण गुण साहेब केरो। नशै मोह तम संग उजेरो॥
यह विचार गहि साहस श्रद्धा। साहेब संतन शरण सबद्धा॥

दो०—निज दुर्गुण लखि नम्र जब, सब अभिमान बिलाय।
करै सुसँग जब रँग चढ़ै, प्रभु स्वभाव तब आय॥
प्रभु मनसा बिपरीत सब, खता किये हौं गाढ़।
जिमि तिमि निज अनुकूल करि, भव बारिधि से काढ़॥

सो०—विनय करौं गुरुदेव, सुनिये करुणा के भवन।
अपने पद में लेव, तव आश्रित यह दास है॥

सम कर बदर जोसंसृत मनमय। जीते हो गुरु तुम करुणालय॥

सुख सम्पति परिवार बड़ाई । देह गेह अरि मीत भलाई ॥
सब नश्वर सब भास विजाती । सबै भोग मेरे आराती ॥
सब परिहरि गुरु पद के माहीं । रहूँ ठहर कछु और न चाहीं ॥
गुरु पग पाँवरि पै बलि जाऊँ । हो रजाय सोई शिर लाऊँ ॥
मन बच कायक शरण तुम्हारे । रहिय मुझे अब सदा सम्हारे ॥
विरति विवेक भक्ति सब साधन । करिय पुष्ट लखि आरत दुख गन ॥
तव उपकार न भूलूँ कबहूँ । निकट दूरि बिछडूँ जब तबहूँ ॥
धीर बीर भव भीर नशावन । बसहु हंस गुरु मम उर पावन ॥
दो०—भव बुधि उलटी दहन करि , चरण शरण लै लेहु ।
हरन कुटिल मन गति शमन , तरण स्वतः पद देहु ॥

[मंगल]

भ्रम समाज मृग निकर दलन हित , हरि गुरु कथा सुहावन हो ।
परवश शोक मोह मन सम्भव , नाशक पावन पावन हो ॥
जो न कथा अस सुनि सुख पावै , मन वशि अज्ञ बिकावन हो ।
अन्य विषय रस सुनि सुनि जहँ तहँ , आतुर हीय दहावन हो ॥
जेहि से रोग बढ़त सोइ औषध , पट पशु कर्म भुलावन हो ।
सोई चरित अवतार किये सब , हिंसा मैथुन धावन हो ॥
गाय गाय सोई कहत तरब हम , लोह कि नाव भरावन हो ।
जगत से ब्रह्म ब्रह्म से जग हो , उलटि पलटि अरुझावन हो ॥
अखिल वेद वेदान्त एक कहि , बंध मोक्ष केहि चावन हो ।
सो सब भास अनुमान के लड्डू , सो गुरुदेव प्रखावन हो ॥
निज स्वरूप दरशाय सत्यपद , अकट अबाध्य रहावन हो ।

कहि न सकत गुरुकी इति महिमा , बन्दीछोर कहावन हो ॥

सो०—सब जिज्ञासु निहाल , बिनय गाय कर जोरि के ।
दीन जीव प्रतिपाल , कहहु कवन गुरु परख सम ॥
कथा भयो विश्राम , निज निज आश्रम सब गये ।
मनन कथा बपु काम , गउ बन गृह चित वत्स में ॥

सत्य ज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड का

प्रथम प्रकाश समाप्त

* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

❀ द्वितीय प्रकाश प्रारम्भ ❀

[गृहस्थाश्रम धर्म वर्णन]

* छन्द *

संशय नहीं जिसके हिये , नित ज्ञान ही से काम है ।
सन्तोष समता शांति दम , निर्द्वन्द अरु निष्काम है ॥
जग जाल सब परखा करै , निज रूप ही जिस धाम है ।
इमि सद्गुरो एकान्त में , साचेत करि आराम है ॥

दो०–दूजो दिन पुनि देह के , सबै यथोचित काम ।
विचार वेग से कर सही , बैठे गुरु ललाम ॥
योग्य समय पुनि आयऊ , सबै शिष्य समुदाय ।
कर जोरे स्तुति करत , फूल माल पहिनाय ॥

प्रार्थना-हम सब जनों की प्रार्थना , स्वीकार सद्गुरु कीजिये ।
अनाथ सब विधि जानि अपने, शरण में अब लीजिये ॥

खानी व बानी मोह मद, बन के कुठारम१ आप हो।
हे भक्तवत्सल२ दीनबन्धो, शक्ति दासन दीजिये॥
साधु जन बन पंकजों३ के, रवि उदय गुरुदेव हो।
करुणाअयन अवलोकि शोकित, पार शीघ्रहिं कीजिये॥
इन्द्रिय स्वभाव के धार में, हम सब बहे नित जा रहे।
त्रय ताप दावानल व्यथित हूँ, देखि कृपया रीझिये॥
धर्म व्रत पथ शील रत, दुर्वासना सब नाश कर।
शांति पद गामी बनैं नित, मोक्ष जीवन कीजिये॥
विगत माया द्वन्द से, स्वच्छन्द गुरु पारख प्रभो।
हे! धीर वीर कबीर गुरुवर, प्रेम बिघ्नहिं छीजिये॥

दो०—यहि विधि स्तुति करि सबै, बैठे पुलकित गात।
पुनः शिष्य कर जोरि यक, करत प्रश्न मन भात॥

शब्द—मुझे ज्ञान अपना जरा दीजियेगा,
मेरे पाप दिल से जरा छीजियेगा॥ टेक॥

भरी नींद सोता हूँ अज्ञान निशि में,
जरा ज्ञान शब्दों जगा दीजियेगा॥ १॥
नहीं भक्ति है ज्ञान दिल में जरा सा,
उसी बीज जड़ को जमा दीजियेगा॥ २॥
सुना सन्त होते हैं पतितों के पावन,
मुझे पातकी को सुखी कीजियेगा॥ ३॥

टि०—१-कुल्हाड़ो २-भक्तों के रक्षा करने वाले ३-कमल

बड़े भाग्य से मग में दर्शन हुए हैं,
समय अल्प है कछु सुझा दीजियेगा ॥ ४ ॥
है प्रेम दासानुदासों के किंकर,
शरण जानि के अब निभा लीजियेगा ॥ ६ ॥

दो०—हम गृहस्थ अज्ञान में, फिरत सदा बेहाल।
काम क्रोध लोभादि मद, छुटत नहीं तत्काल ॥
ताते जेहि विधि प्राप्त तव, गुरु पद भक्ति दयाल।
सोई उपाय बतलाइये, जासे हटे भ्रम काल ॥
दयानिधे समुझाव मोहिं, मानुष का जो कर्म।
हम गृही अज्ञानि को, कहिये गृहस्थ सुधर्म ॥
हम भिक्षुक तव द्वार पर, सब विधि से अल्पज्ञ।
निज पद भक्ती दीजिये, धर्म करो धर्मज्ञ ॥

* गुरु उत्तर *

दो०—सुनहु तात यह प्रश्न तव, उत्तम जानन योग।
ताहि जानि सब कर कुशल, सादर सुनहु सु लोग।
जिव माली उर क्षेत्र में, इच्छा वश जस बोय।
सुख दुख भोगत त्रिविधि तस, बिष अमृत फल दोय ॥

दो०—नित्य जीव यह पंथी के सम, इसका एक सबंध नहीं।
जैसा कर्म बीज तस पावै, दूसर कोई सहाय नहीं ॥
युवती प्रभुता और जवानी, ये सब जाते साथ नहीं।
जगत भोग तृष्णा उपजावैं, पल भर स्थिति चैन नहीं ॥
पशु खानिन में दुख छूटत हित, साधन और समान नहीं।

मनुज खानि ही अहै श्रेष्ठ पर , इसमें सदा मुकाम नहीं ।।
याहि ते करिये धर्म रु भक्ती ,भक्ति बिना कुछ ज्ञान नहीं ।
ज्ञान भक्ति तबतक नहिं मिलिहैं, जब तक हो सतसंग नहीं ।।
जब तकहो सतसंग न तबतक , जीव देह बिलगान नहीं ।
घरै सवाँरत दिन सब जावै , रहनहार कुछ लाभ नहीं ।।
मन रुज बाढ़यो व्याज बहूता, दण्ड से होय बचाव नहीं ।।
मनोवेग वश योनिन जावै , जहाँ तनिक विश्राम नहीं ।

दो०—देह निर्बाहिक काज करि, जो न करै जिव काज ।
तौ निर्बाह को फल कहा, श्रम लहि अंत अकाज ।।
जीव कुशल कहु कौन विधि, जिमि खेती हरवाह ।
खाय लियो सब नौकरन , किमि किसान निर्बाह ।।
इन्द्री मन मजदूर हैं, किसान जीव को जान ।
जो कुछ इन्द्रिन ने कियो , भोग्यो सबै निदान ।।
जो कुछ यासे धर्म हो , ज्ञान भक्ति वैराग ।
सो जीवन हित जानिये , तेहि नहिं कीन्ह अभाग ।।
तब तो मानुष धर्म नहिं, नहिं संतन में भाव ।
अशन भूमि ते हीन ह्वै , कूकुर ह्वै पछिताव ।।
मानुष तन बड़ भाग्य से, पाय सु दुर्लभ येह ।
बन्ध मोक्ष सुख दुःखप्रद, कर्म भूमिका गेह ।।
ज्ञानभक्ति अरु धर्म नहिं, जेहि मानुष के माहिं ।
सींग पूँछ बिन पशु सोई, पशु खानिन में जाहिं ।।
तात मात परिवार कोइ, देत सहाय न नेक ।

जो कुछ कर्माकर्म निज, भोगत वपु धरि टेक ॥
ताहि ते अबहीं चेतकर, क्या पीछे पछिताय।
नर देही यह छुटन हित, फाटक समता आय ॥

❀ आश्रम सुधार—सुशीला की कथा ❀

सो०—जिव कर्ता उर खेत, पाप पुण्य दुइ बीज हैं।
जस बोवै फल लेत, समय योग वर्षा लहै ॥
दो०—नारी सुत धन धाम सुख, चाहत सब अनुकूल।
विना सुकृत सोउ मिलत किमि, विन बोये फल फूल ॥
सुकृत कौन पुनि केहि विधि कीजे, सुनहु नारि नर जेहि दुख छीजे ॥
यामें इक दृष्टान्त अनूपा। आश्रम धर्म सरल सुख रूपा ॥
द्विज युगदत्त के युगल जु नारी। इक सुशील इक कर्कश प्यारी ॥
सहज सुशील सकल गुण धामिनि। एकै रुचि पति पद प्रिय गामिनि
सेवा शील शौच आचारा। सहज सरल समता प्रिय सारा ॥
दो०—ऐसो गुण शीला महैं, सब मानत तेहि श्रेष्ठ।
सोपि पूर्व निज कर्म वश, रोगिनि कुरुप दुखेष्ठ ॥
तेहि ते ताके पुरुष का, तासे रहत अभाव।
कर्कश सुन्दरि हेतु बलि, चलत ताहि के दाव ॥

* कर्कशा लक्षण *

यदपि कर्कशा दुर्गुण धामिनि। नित नव रोष कोष मद तामिनि ॥
अनुज तनुज पति नीच रु ओचू[१]। सन्मुख पड़त कहत कटु पोचू[२] ॥

ट०—१-ऊँचा-श्रेष्ठ। २-नीच खराब।

बिना हेतु नित लड़त प्रचारी । जड़ चेतन कहँ देवै गारी ॥
नित नव निरखत पुरुष सलोने । निधड़क अंग दिखावत सोने ॥
पटहु पात्र सब मलिन शरीरा । स्वाद पर्श वश रहीत अधोरा ॥
सज्जन बृन्द से बहुत लजावै । हित शिक्षा सुनि बहु गरियावै ॥
कलहि विरोधि ग्राम्य उत्पातिनि । दोषहिं चर्चत बहु घर घातिनि ॥
धाम काम तजि बारह बाटै[१] । लोभ मोह वश चोरिन चाटै[२] ॥
भूषण वस्त्र चहे नव पावै । तहूँ नित्य पति रक्त सुखावै ॥
देखै पँवरि अतिथि कोइ पहुना । दौरि द्वार बहु देत उरहना ॥
हौं निर्दोष अन्य सब दोषी । कहति काग बच अति जिय रोषी
समता तोष क्षमा नहिं लेशू । खाँव खाँव करि सहत कलेशू ॥
कहँ लगि कहौं दोष की राशी । पतिबंचक परधन अभिलाषी ॥
जो अघ भौन कुचालिनि कर्कश । चमक चाम की देखि पिया वश ॥
सुनहु मित्र कामी नर नारी । अंध होय नहिं धर्म सँभारी ॥
चरम कीट लोलुपता धारे । मर्कट श्वान सो नाचत प्यारे ॥

दो०—हिंसा रत मद मस्त पिया, छैल बैल से डोल ।
पूर्वज[३]धन जारनि[४] अरपि, भटकत खर इव कोल ॥
ऋजु[५]तप तोष दयादि गुण, शांति कांति तजि मान ।
बल धन ज्ञान विचार सब ; कामातुर के हान ॥

शीलहिं दुख देवैं मिलि दोऊ । सहत धर्म लखि शीला वोऊ ॥
देखु वत्स ! मन सुखवश जीवा । सकल एक से एक बँधीवा ॥

टि०— १-मिथ्या प्रपंच । २-लत । ३-बाप दादों का धन । ४-व्यभिचारणि । ५-शुद्ध पवित्र ।

जग में कोइ २ कर नहिं मेली । मन सुख हेतु प्रेम नतु ठेली ॥
पर जे नर जानत कुछ धर्मा । जीव कर्म फल निश्चय मर्मा ॥
तेइ जग में परमारथबादी । पर हित करन स्व हित समझादी॥
ते सब सुबुध अहेतुक धर्मा । पालत निज दर्जे कहँ कर्मा ॥
अपर जे स्वार्थ परायण प्रेमी । मित्र शत्रु सब लखहु अनेमी ॥
ज्ञान बोध फल यहै विशेषा । धर्म हेतु सहि कोटि कलेशा ॥
धाम काज सब शुद्धाचारा । सकल करत शीला सु विचारा ॥

दो०—सहत करत बहु दिन गयो, यक दिन कर्कश नारि ।
बिना हेतु बदि निकल तू, मारिसि बहुत प्रचारि ॥
सहन रहित दुख पाय के, अवला दुखमय देह ।
अहो शरण किसकी गहँ, कहँ दुख होवै छेह ॥

यहि चिन्तति चलि दुखी सुशीला, चलत २ इक कूप मिलीला ॥
आसपासतेहिसाफसोकीन्हिसि ,पुनिचलिदेखिसोलघुतरुसींचिसि ॥
घायल हरिण देखि पुनि आगे । दवा लगाय चली दुख पागे ॥
चलि आगे बनपुरवा माहीं । लखि बृद्धा माँ पूँछिसि ताहीं ॥
बृद्धा वहुत दिनन की भूँखि । रचि भोजन पालिसि तेहि सूखी ॥
करि प्रणाम चलि चिंतति पाछे । देखि सघन बन साधु सु आछे ॥
साधु दरश से पूरण कामा । निश्चय करि शीला अभिरामा ॥

दो०—सरल अकाम अमान शुचि, हितकर धीरज रूप ।
ऐसे सन्तन के दरश, नाशै दुख भव कूप ॥
ऐसहिं करत बिचार शुचि, खोलेउ नैन सुसाध ।
सादर शिर धरि नमत लखि, सनमुख देखि उपाध ॥

अरे कौन तू हेतु क्या ? आई निपट अकेलि ।
शिशुराजारुजि[१] दार[२] मदि[३], रक्षक बिन दुख झेलि ॥
अहो संत दुखिया हौं आरत । नहिं कहुँ त्राण[४] देखि दव जारत ॥
हिय विचारि दुख दलन समर्था । साधु वृन्द लखि बिनवत अर्था ॥
आदि अंत सुनि बचन सुयोगी । रुज हारक दै जड़ी बिशोगी ॥
मुख रखि डुबकी एक लगावै । तो तव व्याधि बिदा ह्वै जावै ॥
जड़ि लै मुख सर में इक बारा । डुबकी लै पुनि बपुहिं निहारा ॥
रोग रहित शशि बरण सुहावनि । सुभग शरीर लहत हर्षावनि ॥
आइ बहुरि स्तुति बहु कीन्हीं । का करतव्य कहहु मम चीन्हीं ॥
जाय रहहु हे दार स्व भौना । पालहु धर्म लहहु सुख जौना ॥
सत्संगति दुख हारक जग में । शम दम तोषदया गहि सुखमें ॥
शुभाचरण करि किमि दुख पावै । आम बोय कटु नीम न लावै ॥
सुजनन दुख सो पूरब खेती । देह वृक्ष दुख सुख फल देती ॥
जो कुछ शुभाचरण अब करई । काल पाय आगे सुख लहई ॥
रक्षै धरम-धर्म जन रक्षक । खेती गृहि गृहि खेती पक्षक ॥
धर्म अंग सुनि लीजै अबहीं । जाहि गहे सुख पावैं सबहीं ॥

* धर्म अंग *

दो०—लज्जा दयार उदार सत, शौच शील शुचि बानि ।
धीरज सेव सुसंग लहि, ऐन यतन गुण ठानि ॥

१—लज्जा लक्षण } गाली झगड़ा चपल अँग, बिन मर्याद कुदृष्टि ।
सो सब निन्दित कर्म तजि, सुलज श्रेष्ठ गुण सृष्टि ॥

टि०-१—रोगी । २—स्त्री । ३—मद्यपी । ४—रक्षक ।

२-दया ल० } मांस खाय नहिं जिव बधै, निज के सम पर पीर ।
मन बच रक्षै शक्ति भर, सो न सहै भव भीर ॥

३-उदार ल० } पालि आश्रयिन धर्म युत, चलत चलावत सार ।
भूखे दूखे रक्षियत, सेवत संत उदार ॥

४-सत्य ल० } छल बल कपट दुराव तजि, बदि यथार्थ सम तोष ।
सत्य जीव कृत भोग लखि, सत्याचरण अरोष ॥

५-शौचाचार ल० } पात्र देह पट धाम सब, शुद्ध रखै बहु भाँति ।
बाह्य शौच जल आदि से, अन्तर सुसँग सुशांति ॥

६-शील ल० } पंथी इव सम्बन्ध सब, स्वार्थ रहित पर हेत ।
दुखकर सकल कुचाल तजि, सरल शील सुख देत ॥

७-शुद्ध वचन ल० } अनुभव प्रिय रुचि समय लखि, मान राखि जो बोल ।
सबसुखकारक मंत्र प्रिय, कटु कुठार नहिं खोल ॥

८-धीरज ल० } दुख सुख हानि रु लाभ जो, प्रिय जन बिछुड़न धार ।
कर्म भोग ऋतु फल लखे, धीरज से सरि पार ॥

९-सेवा ल० } मात पिता पति भ्रात सग, साधु अतिथि जन कोय ।
खेत वृक्ष सम सेव गुण, तेहि फल मेवा होय ॥

१०सत्संग ल० } सुबुधि धर्म नय रीति, बिन सत्संग न कोउ लहै ॥
तेहि ते निश्छल प्रीति, सदा साधु पद कमल में ॥

११-ऐनी ल० } श्रेष्ठ जनों के ऐन वर, घर आश्रय शिशु रक्ष ।
ऐन छोड़ि युग भ्रष्ट सो, तेहि ते आश्रय पक्ष ॥

नारी जन के पतन को हेतू। आश्रम आश्रय तजि सो बहेतू ॥
नहिं परिणामि अरामि स्वभाऊ। बहु आश्रय करि बिगड़त चाऊ॥
दो०—तेहि ते आश्रम में रहै, शिशु अबोध लघु दास।
दारा नव जिज्ञासु हित, नत्र तरु बेढ़ा खास ॥
आश्रम में रहि धर्म प्रिय, करै भक्ति सत्संग।
शील सहित लहि बोध जिव, मिलै मोक्ष गुण अंग ॥
काम काज व्यवहार सब, रक्षा तन के हेत।
ताहि ध्येय पालन धरम, यथा भृत्य रखि लेत ॥
केहु आश्रम केहु घट महैं, केहुँ वर्ण हो तात।
धर्म नीति शुभ आचरण, बोध गहे कुशलात ॥
नहिं तो पशु सम कुटुम्ब सुख, खोवत करतल रत्न।
नेत्र अछत अँध कूप गिरि, जगतदास दुख यत्न ॥
ऐसे सुनि हित बचन सुशीला। नमति त्रिबार टेकि शिर ढीला॥
धन्य अहेतुक संत हितैषी। शरण बिना तब जीव दुखैसी ॥
बेर बेर कर जोरत बिनवत। रुखलखि चली धाम पुनि पहुँचत॥
सुख प्रसन्न आरोग्य सुशीला। घर में देखि सवति को हीला ॥
खाउँ खाउँ करि आगे दौड़ी। कठिन कर्कशा कह को लौंड़ी ॥
बोली मैं तो अहुँ सुशीला। आदि अंत कहि कथा कबीला ॥
तब तौ वह तृष्णातुर कर्कश। यहि ते अधिक तेज हौं मों वश॥
अस मन सोचि चली वह काली। अग्र कूप लखि लै शिल आली ॥
फोरि तोरि कछु सीढ़ी ताकी। नाक थूक सब पोति कुठाँ की॥
चलत अग्र नवतरुहिं उखारिसि। आगे हिरण दुखी तेहि मारिसि ॥

चलि आगे वृद्धा लखि हाँसिसि। तेहि ढकेलि ते वस्तुहि डाँसिसि ॥
चलत २ पुनि साधुहिं देखिसि। ध्यानावस्थ वकुलकहि लेखिसि ॥
नहिं प्रणाम नहिं रंचक प्रेमा। नेत्र खुलत लखि बकत अनेमा ॥
अहो साधु तुम सबति बढ़ाई। वहि ते श्रेष्ठ होन में आई ॥
संत सकुचि तब सोचन लागे। निवृत्तिवान कहँ प्रवृत्ति दुखागे ॥
नैन बैन सब चपल कटारि। जानि राक्षिसी सम मति धारी ॥
सो०—कुछ विचारि जड़ि सोय, संत दियो सब युक्ति कहि।
देर तलग पुनि वोय, लै बूटी मज्जति भई ॥
अतिव कांति के लालच माहीं। सर में परी जड़ी गुण जाहीं ॥
सर से निकरि निहारयो बदना। भइ कुरूप मानौं दव लगना ॥
दनदनाति आई वह डाकिनि। बरबरात कटु कहत कुभाखिनि ॥
संत जु कहेउ भयानक बानी। हटु तमचरि नहिं होइहि हानी ॥
भस्म होय नहिं तोर ठेकाना। प्रतिकूलावर्ती तोहि जाना ॥
भय वश अधीनचली निजगेहू। देखि सुशीला मिलत सनेहू ॥
अहोकाहतैंकिहेसिअभागिनि ? साधुकुटिलमोहिंकिहेसिकुभागिनि ॥
कहेउ सुशीला मन्दतु अजहूँ। सम्हरि विचारि न बोलति कबहूँ ॥
दो०—साधू जन मन शत्रु नहिं। केहु आसक्तिहु नाहिं।
जो जस देखै रविहिं शशि, सनमुख बिमुख लखाहिं ॥
निजकृतफल पाइसिअधिनि, डर मोहिं से मति मान।
तोहि सम नहिं मैं- तोहिं से, शील प्रेम सुख खान ॥
शीलै सुन्दर तेज है, शीलै से सब सुक्ख।
शीलै लहि नित सुखित हौं, शील तजे तोहिं दुक्ख।

तेहि ते हम तुम बहिन से, बतैं शील समेत ॥
एक व्रती सब सेव गुण, पावैं सुख हिय चेत ॥
दुख पाये कछु संग से, पल्टत कुबुधि स्वभाव।
संग सुशीला बैन सुनि, पति पतिनी शुचि भाव ॥
तजि कुसंग सत्संग रत, तजि अभक्ष लहि धर्म।
शीलवान संसर्ग से, क्रूरहु पलटे पर्म ॥
सादर प्रेम सुशील युत, निज निज श्रेणी धर्म।
गहि दम्पतिसब सुखित भे, यहि मानुष गुण कर्म ॥

कूप तरु मृग बुड्डी साथे। स्वार्थ रहित उपकारहि नाथे ॥
अदिन सवति के साथहुँ शीला। अस नर नारिन धर्म फबीला ॥
करि पुरुषारथ धन जो कमावै। कुटुम रक्षि धर्मार्थ लगावै ॥
धर्म सहित जो गृह को साधे। तेइ परमारथ योग्य अबाधे ॥
सकल धर्म कर फल सत्संगति। तीर्थ बर्त यहि कथा श्रवणरति॥
सो विशुद्ध गुरु पद तर तारन। शरन गहत पल माहिंउबारन॥
जो न गहै अस शरन अमानी। सो तृष्णा दव जलत अजानी ॥
दोष दरिद्र सकल अघ जावै। जो यह कथा माहिं लौ लावै ॥
तम सुत सुनि यह कथा अनूपा। धन्य धन्य गुरु बोध सरूपा ॥
रज तम सत्त्व अधिहुँ करि पावन। सुनि२ कथा विमल श्रमढावन॥
भ्रम हारक सब विघ्न निवारक। गुरु की कथा अपर विस्तारक॥

दो०—नर नारी लघु भूपहूँ, बरणहुँ विद्वन कोय।
बिन गुरुपद के शरण गये, कबहुँ कृतार्थ न होय ॥

* शब्द गजल *

कर ले संतों का सत्संग, ज्ञान मिलै तोहिं हाली हाली ।।टेक
देखि जवानी तन में फूले, धन जन मान बड़ाई झूले ।
भोग भोग बहु रोग में शूले, गर्व गुमान तबहिं सब भूले ।।
यह तो चारि दिनाकी चाँदनी, जाय रही है हाली हाली ।। १
नर तन भव निधि को यह नौका, सद्गुरु शरण पार हो मौका ।
दुर्गुण कुमति छोड़ सब भव का, शुद्ध सुमति ले तोषौ जिव का ।।
इकदम झगड़े से मुख मोड़, शांति मिलै तोहिं हाली हाली ।। २
सुख भोगों से कोइ न छकाई, आगे आगे दौड़ पड़ाई ।
इक सुख हेत सकल झगड़ाई, कपट कठोर कुटिल रगड़ाई ।।
अपने अपने भूल से दुखिया, भूल मिटा दे हाली हाली ।। ३
मन बच कर्म शील शुचि साँचा, करि सतसंग रंग भव बाँचा ।
मन की दौड़ छोड़ दे आँचा, व्यर्थ प्रेम क्यों भव में नाचा ।।
अपना काम बना ले भाई, आयू जाती हाली हाली ।। ४
भक्ति के साधन सुनि सब करहू, प्रथमैं सतसंगति मन धरहू ।।
महा मोह तम पुंज विनाशन । रवि कर निकर ज्ञान परकाशन।।
या सम तीरथ और न जानौ । शील तोष तेहिं तट दुइ मानौ ।।
ज्ञान विचार सत्य जल जामें । विरति विवेक धार रुचि तामें ।।
साधु पारखी सज्जन संगा । करि दृढ़ प्रेम घाट दुख भंगा ।।
शम दम नियम नीति जल जन्तू । कामादिक दुर्गुण भख मन्तू ।।
सद्निश्चय भक्ती लौ लीना । धीर गँभीर स्वच्छ जल पीना ।।
सत्य वही जाको नहिं नाशा । सो सद्चेतन रूप प्रकाशा ।।

मन रुज कलिमल सबहिं नशावै। जो सतसंगति तीर्थ नहावै ॥
इमि सतसंगति महिमा भारी। साधु संत सद्ग्रन्थ पुकारी ॥
सो०-शुद्ध बुद्धि शुभ चाल, सुयश सत्य हित साधनो।
धीरज तोष सँभाल, साधु संग सब सुखकरन ॥
दो०-इमि सतसंगति तीर्थ में, स्नान करै जो कोय।
त्रिविधि दोष दुख ध्वंस हो, करि देखौ किन लोय ॥
भक्ति माहिं बाधा करैं, देश ग्राम कुल लोग।
श्वान काग वत जानि तेहि, गज सम वर्तै योग ॥
पापिन भक्ति न भावई, सतसंगति नहिं भाय।
कोल सु चंदन परिहरै, जहाँ अशुचि तहँ जाय ॥
भक्ति पुरानी परि गई, फीका परगौ ज्ञान।
श्रद्धा रही सो घटि गई, तासे जिव हैरान ॥
भक्ति पुरानी ना परी, चोखो परिगौ ज्ञान।
श्रद्धा रही सो बढ़ि गई, तासे जिव सुख मान ॥
समुझि बूझि के पग धरो, नहीं किसी का साथ।
कपटी देश परार है, चूकत काटत माथ ॥
छं०-योग जप तप तीर्थ व्रत सतसंग सम कोई नहीं।
आंतरिक मल ज्ञान जल बिनु शुद्ध मन होई नहीं ॥
अस जानि संतन संग करि तजि दीजिये सब जालको।
सद्ज्ञान औ गुरु भक्ति लै त्यागो कुसंगति काल को ॥
मन बच कर्म संतन सेवकाई। जिव हिंसा सब देउ बहाई ॥
विषय भोग जेते जग केरे। जानि स्वप्न वत ताहि निबेरे ॥

निर्णय वचन वन्दना गुरु की। कथन करहु नाशै मल उर की॥
सबसज्जनजन हिलि मिलि रहहू। खल जन साथ भूलि नहिं गहहू॥
भूखे प्यासे पालन करहू। कटुक वचन नाहीं उच्चरहू॥
भूत प्रेत कल्पित अनुमाना। त्यागो भरम भास जो नाना॥
यहि विधि मानुष कर्म सुधारहु। जेहि ते मानुष जनमहिं पावहु॥
मोक्ष लाभ तोसे नहिं होवत। मानुष जमा मंद क्यों खोवत॥
जमा गमाय बहुत दुख पइहौ। खानिन में बहुतै पछितइहौ॥
तेहि ते त्याग पशू के करमा। करि सतसंग भक्ति सत धरमा॥

दो०—छाजन भोजन मैथुन, भय निद्रा अरु मोह।
ये सब खानिन के विषे, नर तन ज्ञान सु सोह॥
करि विवेक निःसार जो, षट कर्मन के माहिं।
तजे ताहि पालै परम, धर्म दयादिक ताहिं॥
छाजन कहिये वस्त्रको, सो समया अनुसार।
ग्रहण गुजारा मात्र ही, नहिं राखै शृंगार॥
भोजन करिये तृप्त हित, नहीं स्वाद आसक्ति।
शुभ कर्मन से प्राप्त करि, लहै ज्ञान औ भक्ति॥
विश्वासघात चोरी कपट, छल अनीति है जोय।
मद्य मांस को त्यागि के, न्याय धरम नर सोय॥
एक कहै गुरुदेव जू, अंकूर्य खानि में जीव।
बाढ़त हरा सु दीखता, हिंसा होय सदीव॥
कह गुरुदेव अंकूर्य में, जीव नहीं रे भाय।
इच्छा क्रिया न अवस्था, सुख दुःख नहिं दर्शाय॥

माटी पानी शक्ति से, बढ़त हरा दिन रैन ।
पाँच[१] तत्व तेहि माहिं है, ज्ञाता जीव न ऐन ॥
ज्ञाता जीव जहँ है सही, सुख दुख को तहँ ज्ञान ।
विवश वासना दीखता, दुक्ख न देवो जान ॥

श०—इच्छा द्वेष प्रयत्न औ दुख सुख, ज्ञान जहाँ पर होवत रे ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था, गो मन प्राण सँजोवत रे ॥
नर पशु अण्डज उष्मज खानी, चेतन बास लखोवत रे ।
बीज वृक्ष जड़ दीप प्रकाशे, घट बढ़ अणुन सो गोवत रे ॥
चींटी से हाथी तक लघु गुरु, दुख देवै दुख भोगत रे ।
है निर्वैर दुःख नहिं दीजै, जहँ तक शक्ति चलोवत रे ॥
यही दया के लक्षण कहिये, निज चलते नहिं कोपत रे ।
तीर्थ बर्त सब कर फल दाता, मूल धरम बुध पोषत रे ॥

ग०—जो कोइ रहम न लावै, रहिमान क्यों वो पावै ।
जो कोइ न रक्षै जीवन, रक्षक कहाँ से पावै ॥टेक॥
प्राणेन्द्रियों को धारे, दुख सुख सो जानै जीवा ।
तड़फाय ता पछारै, रंचक न दाया लावै ॥१॥
अतिशय कठोर उर हो, जो मांस खाय कोई ।
हिंसा बिना न मिलता, राक्षस करम ये भावै ॥२॥

टि०–१-वास्तवक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु से चार तत्वस्थूल सूक्ष्म होने से इन्हीं से कार्य पदार्थ बनते बिगड़ते हैं आकाश शून्य से कुछ नहीं बनता, वायु तत्व में सामान्य विशेष दो कला होने से पांच गणना में कहे जाते हैं ।

मुझको न कोई दुख दे, यह भाव दिल में सबके।
पर और को सतावै, फिर वो उलट दुखावै॥ ३

नित इन्द्रियों के लोलुप, अपने ही मोह वश हो।
तामस प्रधान नाना, करते कुकर्म धावै॥ ४

नाना कुकर्म कर के, स्वारथ क सुख भि नाशे।
छल दम्भ लोभ तृष्णा, कटि पिटि बँधे बँधावै॥ ५

सूक्षम जो इन्द्रियाँ बिन, कुछ भी न कर वो सकते।
भूतादि प्रेत मिथ्या, बिरथा तु क्यों भयावै॥ ६

सब के जो मात पित हैं, कहुँ देवि देव हिंसक ?
निज निज मनों से कल्पे, करि घात आपि खावै॥ ७

फिर तो वही तमो वश, कीटादि सर्प योनी।
नाना कलेश देखो, जो रोय ना सिरावै॥ ८

सुख के चहैया प्रानी, तू चेत आज अब भी।
माँसादि हिंसा तजि के, किहुँ भूल ना सतावै॥ ९

सब से ये श्रेष्ठ विद्या, जप तप व ज्ञान सब कुछ।
हरदम अहिंसा पालै, तब प्रेम सुख समावै॥१०

खाय अंकुरज मानुष जानौ। खाय मास तेहि श्वान पिछानौ॥
जीव बधै वहि कालहिं समझो। महा पाप नहिं तामें अरुझो॥
गाँजा भाँग नशा हैं जेते। चरस तमाखू दुख को देते॥
इन से बढ़ै कुसंगति जानौ। रोग विविधि खर्चा पहिचानो॥
इनको त्यागि धर्म गहु भाई। रण्डी भडुवा नाहिं नचाई॥

* कवित्त *

शुभ काज को छोड़ि कुकाज करैं, मन जात है व्यर्थ सदा तिनको ॥
वह रंडी बुलाय नचावत हैं, नहिं आवत लाज जरा तिनको ॥
मृदंग कहै धृक है धृक है, सुरताल कहै किनको किनको ॥
तब उत्तर रंडी बतावत है, धृक है धृक है इनको इनको ॥

* शब्द गजल *

नशा को त्याग प्यारे, नशा नशाने वाली।
गुरु भक्ति धर्म सेती, मुखड़ा छिपाने वाली। टेक॥
है दाम काम हानी, जो की कुसंग खानी।
समया अमुल्य जानी, तिसको गमाने वाली ॥१॥
हिंसा अनेक जासें, मल मुत्र मेल तासें।
बहु रोग दोष वामें, भीखै मँगाने वाली ॥२॥
गाँजा चरस तमाखू, चण्डू अफीम ताड़ी।
मदिरा नशादि आदत, सबहीं जलाने वाली ॥३॥
मद के नशा में सटपट, फक फाँ करै वो गटपट।
वेश्या नशा ये अटपट, नीचे गिराने वाली ॥४॥
थोड़ी ये बात सुनि के, दिल में तु खूब गुनि के।
मन की गुलामि तजि के, सबही नशा दे टाली ॥५॥
खर मार दो घड़ी है, बुध सैन लघु बड़ी है।
कह प्रेम मन चढ़ी है, गुरु पद में आवो हाली ॥६॥

तीसर मैथुन कर्म बिचारे। नर तन पाय हितू कर प्यारे ॥
विषय भोग संसारहि माहीं। भोगत भोगत आयु सिराहीं ॥

पावत तबहु न क्षण इक चैना । घृत अग्नी महँ डारि बुझैना ॥
दो०–गज पतंग मृग झख भँवर, इक इक विषयन माहिं ।
छोड़ि देत निज देह को, पावत कष्ट सदाहिं ॥
नर अकेल पाँचों विषय, फँसा रहत दिन रैन ।
केहि विधि याको सुक्ख हो, काम क्रोध के ऐन ॥
यद्यपि विष सम पाँचहूँ, पर यह काम विशेष ।
बुद्धि धीर यश वीर्य हरि, छल बल यम के देश ॥
तेहि ते न्याय सहित हे नर तू । दुराचार से रोकहु मन तू ॥
पर नारी को यहि विधि देखै । बहिन मात कन्या सम लेखै ॥
ऐसेहि नारी जन पर पुरुषै । पिता पुत्र सम भाई देखै ॥
बड़ेहि पिता लघुसुत सम भाई । नारि पुरुष यहि विधि बरताई ॥
शुद्ध भाव वहि गहि नर नारी । जेहि ते वृत्ति न हो व्यभिचारी ॥
नारि पुरुष जो पर में अरुझे । चिन्ता शोक अथाह न सुरझे ॥
चोरी हिंसा बैर बढ़ावै । फाँसी जेल कि नौबति आवै ॥
ताही ते पर नारी त्यागो । करि सत्संग स्वपद में पागो ॥
निज नारी को सुन रे भाई । धरम गृहस्थ कि रीति बताई ॥
सो०–लोक रीति जस धर्म, जौन विवाहित जाहि सन ।
एकव्रती नर कर्म, एकै मा संतुष्ट रहि ॥
ज्यों ज्यों भोग बढ़ाय, त्यों त्यों दुख की वृद्धि है ।
देह निर्बल होइ जाय, शोक बढ़ै संतति निर्बल ॥
योग्य समय सहवास, संतति हित-नहिं सुक्खहित ।
सुख से तृप्ति न खास, लेत दुख देखि सुधीर रहि ॥

यदि संतति नहिं होय, अथवा नारि वियोग ह्वै ।
बहुतन के नहिं कोय, तौ विवेक करि देखिये ॥
देखै हृदय सम्हारि, सुख अनित्य क्षण भंग भ्रम ।
स्वप्न कुटुम्ब हँकारि, अंत भोग निज निज करम ॥
मिलै न जो यहु भोग, तौ जानै यह भाग्य मम ।
बिन औषध गयो रोग, यहि ते सुख का और है ?
अथवा पूरब कर्म, तेहि फल जानि सुतोष गहि ।
करै सकल शुभ कर्म, जो आगे सब सुख चहै ॥
गर्भवती जब नारि, या बिकार युत माह में ।
भोग ते पापी भारि, प्रतिदिन भोगैं ते अबुध ॥
बरष बरष पशु तोष, नित भोगैं पशु से लटे ।
साधन मुक्ति को कोष, सो तनु भ्रम सुख में क्षयो ॥

बड़े भाग्य यह नर तन माणिक । भक्ति ज्ञान प्रद ताप विनाशिक ॥
सो मृग जल मैथुन में खोयो । अमृत छोड़ि विषय विष बोयो ॥
अति उत्तम ते नर औ नारी । काम जीति नित धर्म सँभारी ॥
इक दुइ संतति ह्वै तब त्यागै । मैथुन माहिं नहीं अनुरागै ॥
काम जीति रहि गृह के माहीं । संत कमल पद सेवत जाहीं ॥
मध्यम पक्ष सो मानुष धर्मा । करि सत्संग सु जानै मर्मा ॥
पक्ष कनिष्ठ जे मृग जल स्वादू । लेत रहत बहु दिन अहलादू ॥
अधम ते अधम पक्ष दुखदाई । नीति धरम तजि परमें जाई ॥
धन बल रूप मंद करि स्वाहा । बेश्या अग्नि प्रचण्डित दाहा ॥
सो सब मंद पक्ष को तजि कै । सुबुध गहहिं उत्तम पथ भँजिकै ॥

दया धरम की रीति सम्हारैं । मन की चाल विकारी टारैं ॥
चौथे भय में जौन असारा । सो सब छोड़ि स्व कर्म सुधारा ॥
जन्म मरण सब दुख सुख भोगा । कर्माधीन भोग संयोगा ॥

❀ गृह धर्म सुधार-पद ❀

दया धरम की चाल, गृहस्थी में सबको चलना चहिये ।
गुरु पारख सत्संग समर में, सनमुख ही रहना चहिये ॥टेक॥
स्त्री भी हो सुशील सेवा में, निशिदिन हाजिर रहै ।
साफ सफैयत रखै अन्न की, परसादी जब बना करै ॥१
चक्की भी हो साफ मगर, पानी पीवै छना हुआ ।
झाड़ झूड़ के लकड़ी जलावै, चूल्हे ऊपर तना हुआ ॥२
जुवें जो पड़ते हैं बदन में, मत मारो फेको बचा बचा के ।
बरसाती जीवों को बचाओ, घरों को लीपो हटा हटाके ॥३
पाक साफ से रहो हमेशा, मैले भेष कोई ना रहना ।
बैर भाव कोई ना करना, दया जीव पर सब गहना ॥४
कपड़े भी हों गुजारा लायक, तेरा रोजगार मर्जी माफिक ।
एक दो संतान होने पर, स्त्री विषय हटाना चहिये ॥५
जितना हो धन पास तुम्हारे, उतनाही कार बनाना चहिये ।
शिष्य भाव से रहो हमेशा, गुरु को शुक्र मनाना चहिये ॥६
दुष्ट कर्म सब त्यागि कुसंगत, सत्संगत मन लाना चहिये ।
संतों के विवेक विचार का, कुछ परन बनाना चहिये ॥७
दया गरीबी रहै हमेशा, दयाहि दिल में बनी रहै ।
कहैं पारखी सुनो हो भक्तो, परख अनी पर तनी रहै ॥८

देवी देव भूत औ प्रेता । इनका डर नहि मानु सचेता ॥
ठूँठ चोर रजु उरग समाना । मिथ्या भर्म जीव अरुझाना ॥

* भजन *

यह जग भूलि गयो है भाई , बिन सत्संगति जानि न जाई ।टे०
भूत प्रेत औ देवी देवता , नट नरसिंह मनाई ॥
मरी मसान औ शुइंहर काली , करिहैं मोर सहाई ॥ १ ॥
जौने बानी सुनै अज्ञानी , पूजत चित अतिलाई ।
पूजत पूजत जन्म सिरानो , कर्म भोगछूटै नहि राई ॥ २ ॥
दुख को भोग खर्च है जबहीं , सुख आगे दरशाई ।
तब अज्ञानी मन पतियानी , भो अब देव सहाई ॥ ३ ॥
जो तव देव में बड़ी शक्ति कोइ , खण्डन क्यों करि पाई ।
कौन रूप है ? कहाँ वसत है ? प्रगटहोयकाहेभय खाई ॥ ४ ॥
जो वह देवता तो पर आवत , लेत त्रिशूल छेदाई ।
हिन्दू तुरुक पर कौन भूत है , लेते शीश कटाई ॥ ५ ॥
जाके घर के प्रेत भयो मर , सो सब शक्ती पाई ।
ताके घर के दुख में रोवैं , काहे न करत सहाई ॥ ६ ॥
वायू रूप वह देवी देवता , बड़ी शक्ति है गाई ।
ऐसा देवता नाउत कवजे , सो क्यों दुखी दिखाई ॥ ७ ॥
इन्द्री बिन कुछ शक्ती नाहीं , सो तौ विदित रहाई ।
देह छोड़ि के देहहिं धरिया , भूत योनि कहँ पाई ॥ ८ ॥
धीरज धरि के हृदय बिचारो, सब भय देव भगाई ।
हानि लाभ औ दुखसुखबीतत, पूर्व कर्म फल पाई ॥ ९ ॥

करन योग्य सो करते नाहीं, भरम में किमि कुशलाई ।
हर्ष सहित गुरु पारखि संगति, प्रेम अभय पद पाई ॥१०॥

[शब्द]

जेहि भक्ती से सब सुख होवत, ताहि कहै नहिं छाजत रे ।
यह विपरीत समझ दुख कारण, करि अधर्म नहिं लाजत रे ॥टेक
आँखि मूँदि खन्दक परि छाजत, देखि के चलत्र अछाजत रे ।
करतै खाति मरति हैं सब जन, सो कबहूँ न हटावत रे ॥१
सो बिचारि तैं देखु सयाने, छाजब जाहि बतावत रे ।
सोऊ करत रुज पीड़ा दुश्मन, वृद्ध मरन ह्वै जावत रे ॥२
जीव बद्ध करि कुटिल कुमारग, भूले पाप कमावत रे ।
सोइ परिणाम होत दुख बहुविधि, तब नहिं कोई बटावत रे ॥३
हानि भला शुभ कर्म से कैसे, पूरब खेति लुनावत रे ।
सो न विवेक हिये महँ धरिके, भय वशि वृथा डेरावत रे ॥४
आकर्षक भ्रम हेतु कुसंगा । योषित बंचक भव भय रंगा ॥
जानि बासना वशि अपने कूँ । भूलि न कबहु कुसंग ठने कूँ ॥
बुरे कर्म सबहीं भय दायक । मन बच कर्मसे त्यागहिं लायक ॥
पर नारी हिंसा औ चोरी । काया का भय त्रिविधि कहोरी ॥
निन्दा मिथ्या कटु जो गाली । बचन केर भय सुनिये टाली ॥
क्रोध ईर्षा छल अभिमाना । मन का भय यह सुनौ सुजाना ॥

❀ तन मन बच सुधार-पदावली ❀

जो गुरु की कृपादृष्टि पाये हुये हैं,
वो निज काज अपना बनाये हुये हैं ॥टेक॥

वो स्वारथ व परमार्थ का ज्ञान कर के,
उचित कार्य कर अघ हटाये हुये हैं ॥ १ ॥
वो स्नान औ दान शुभ कर्म जीवन,
वो सत्प्रिय सरल वाक्य गाये हुये हैं ॥ २ ॥
सदा मन में श्रद्धा व साहस व शौरज,
वे तन मन वचन शुचि कराये हुये हैं ॥ ३ ॥
वे भय रूप भोगादि की आश तजि के,
निराशा अभय पद को पाये हुये हैं ॥ ४ ॥
वो सब को परख के परख में रहे हैं,
सजगता से जीवन विताये हुये हैं ॥ ५ ॥
यथारथ सदा साधु में प्रेम कर के,
कुसंगति सदा वे बराये हुये हैं ॥ ६ ॥

दो०—पँचये निद्रा गाफिली, मोह निशा सब सोय।
ज्ञान रूप जागृत बिना, जीव विकल रहे रोय ॥

जिव है अजर अमर अविनाशी। सृष्टि मनोमय स्वप्न दुखासी ॥
भूल से करम करम से देही। उभय सबंध अनादि से एही ॥
अण्डज पिण्डज उष्मज खानी। भ्रमि पुनि संचित नर महँ आनी
कर्म योग वश रति के साथे। वपु तजि जीव गर्भ महँ नाथे ॥
कर्म त्रिविधि संचित आगामी। प्रारब्धी त्रय कह बुध धामी ॥
जैसा करम जीव तस भोगै। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से योगै ॥
नारी पुरुष नपुंसक देही। जैसो करम देह तिमि लेही ॥
बीज वृक्ष वत तहँ तनु बनई। झिल्ली बिच गर्भागिन तपई ॥

झूला झूलत शिर भर उलटे । सहत दुसह दुख भूलसे लटके ॥
पूरित गर्भ पके फल जैसे । नवये मास प्रगट तन तैसे ॥
क्षण मुर्छित पुनि रोवत दुख में । सुत पैदा सुनि सब ही सुख में ॥
गीत सुमंगल नेगी नाचा । करत बहुत विधि उत्सव राचा ॥
शिशुपन में बहु व्याधि सतावै । दुखित देखि पितु मातहुँ धावै ॥
गे नाउत ढिग शै बतलायो । ग्रह अरिष्ट पण्डित समुझायो ॥
भेद अदृष्ट१ जान कोउ कैसे । वृथा२ पचत जहँ तहँ सो अनैसे॥
यहि विधि मन कल्पित उपयोगै । जेहि ते बाल अधिक दुख भोगै॥
पालि पोषि बहु भाँति सयाना । जननी जनक अधिक सुख माना॥

दो०—खेल कूद बहु भाँति करि, गयो बाल पन बीत ।
पढ़ि सुनि गुनि बहु मोद पुनि, युवा बेग ऐ मीत ॥
शिश्नोदर लंपट नित, सोवत आहि अचेत ।
मैं हूँ कौन ? सु कौन जग ? भोंदू हिय नहिं चेत ॥

प्रौढ़ भये मनमथ पुनि जागा । नारिन महँ निज सुख लखि पागा।
सूख हाँड़ जिमि चावत श्वाना । निज रद३ रक्त चाटि सुख माना॥
तैसे निशिदिन प्रमदा माहीं । मद बद४ चलै लखत परछाहीं ॥
धन सुत हित बहु भाँति उपाई । करन लग्यो बहु छल चतुराई ॥
कर्म विवश धन आदि जो पायो । तृष्णा तरुण होय दुख दायो ॥
येते महँ वृद्धापन आवै । अमित भाँति के रोग सतावै ॥

टि०—१-प्रारब्ध । २-झूठी तृष्णा—टकाधर्मस्टकाकर्मस्टका हि परमं पदम् । यस्य गृहे टकानास्ति हा टका टकटकायते ॥ १ ॥
टि०—३-दांत । ४-मद भरे बचन बोलत ।

लखि असाध्य द्वारे पर डारी । खाँसी मल लखि दुरत जो प्यारी ॥
निर्बल तन आशा बढ़ि जावै । क्षण २ भूखप्यास लगि आवै ॥
धैर्य रहित जब माँगत पानी । कोउ न सुनत सब कहैं मनमानी ॥
जाके हित परमार्थ न कीन्ह्यो । धर्म कर्म भक्ती नहिं चीन्ह्यो ॥
कह्यो कि भक्ति न छाजत मोरे । जा हित बलि दै पाप बटोरे ॥
सोइ प्रिय बालक नारी जेते । खान पान समया नहिं देते ॥
प्रिय सुत बन्धू कुल औ नाती । मरन मनावैं दिन औ राती ॥
यहि विधि भोग भयो प्रारब्धी । छूट्यो देह ताहि करि दग्धी ॥
तन मन धाम बाम कुल त्यागी । चले अकेल करम वश लागी ॥
शूकर श्वान अश्व पशु माहीं । जाय कष्ट बहु सहत सदाहीं ॥
बपु मन कृत जे ताप अनन्ता । भोग स्वतः जो करि धरि हंता ॥
दो०—तन धन गज कुल राज सब , योग्य सुखहिं जेहि प्राप्त ।
तजे तजहिं सब स्वप्न वत , भोगत दुखहिं कलाप्त ॥
सो०—यहि विधि सोवत जीव , सहित त्रिविध दुख भूल वश ।
गोहरावै कोउ पीव , बिन गुरु परख न जागि सक ॥

* जागृत पदावली-गजल *

मानुष क तन ये पाके , गफलत में काहे सोवो ।
सद्‌गुरु शरण में आके , कुछ भक्ति बीज बोवो ॥टेक॥
सुख भोग जग के जेते , स्वप्ना समान तेते ।
नहिं साथ कोइ देते , कुल मोह दिल से खोवो ॥१॥
अपने को आप जानो , निज रूप सत्य मानो ।
सब कल्पना पिछानो , मन मैल नित्य धोवो ॥२॥

दुष्कर्म त्याग प्यारे , शुभ कर्म सब तु धारे ।
गुरु पद में चित लगा रे , भव में न तब तु रोवो ॥३॥
जप तप पषाण पूजा , करतार कोइ दूजा ।
निज कल्पना न सूझा , मत चित्त तामें पोवो ॥४॥
चाहो जो मोक्ष पाना , सत्र को परख सयाना ।
जड़ध्यास प्रेम नाना , त्यागो तो शांत होवो ॥५॥

* गजल कर्तव्य ग्रहण *

तुम्हें कर्म भोगों को भुगना पड़ेगा,
उठो जल्द जागो न रोना पड़ेगा ॥ टेक ॥
यही माल मिलकत सबी तजि के प्यारे,
बिपुल देह धर के पछताना पड़ेगा ॥ १ ॥
किये हुश्न इश्के रहे जिग्र दागे,
वही दाग वश में नचाना पड़ेगा ॥ २ ॥
सदा एक ना एक झंझट है सन्मुख,
तो परमार्थ इसी में बनाना पड़ेगा ॥ ३ ॥
पड़ी तेरी नैय्या विषय धार माहीं,
गुरु शरण जा के खेवाना पड़ेगा ॥ ४ ॥
सदा अग्नि तृष्णा लगी दिल के अन्दर,
उसे तो सजल से बुझाना पड़ेगा ॥ ५ ॥
करो ज्ञान भक्ती हो मुक्ती जगत से,
यही प्रेम सुख हित चलाना पड़ेगा ॥ ६ ॥

* चौपाई *

मोह सुधार करहु हे ताता। जेहि ते अंत न होवै घाता ॥
जेहि होते सब सुख की सिद्धी। स्वयं सिद्ध जो जीव प्रसिद्धी ॥
नाद बिन्द मन गति कहि पीवा। थापक सकल श्रेष्ठ पद जीवा ॥
सो जीवन हित नेक न करतब। शील क्षमा सत्संग न बरतब ॥
ह्वै कृतघ्न दुख भोगत वैसहिं। नद प्रवाह महँ मद्यपि जैसहिं ॥
दीप पतंग भोग सुख लीन्हें। मोह विवश कछु धर्म न चीन्हें ॥
सकल जीव इन्द्रिय सुख धारा। डुबत डुबावत लखत न सारा ॥
पूत वधू जननी सग सबहीं। स्वारथ प्रिय कछु और न जनहीं ॥
मन सुख पाय नहीं जेहि छिन में। कोटि शत्रु ह्वै ठेलत दिन में ॥
एक जीव दस[१] पाँच[२] लुटेरे। मोह विवश दुख सहज अनेरे ॥

दो०-तन सुत स्त्री धाम धन, जहँ लग जग की वस्त।
सोई मोह बखानिये, इनमें जो आसक्त ॥
इनमें जो आसक्त ह्वै, निज कारज नहिं कीन।
भक्ति ज्ञान जेहि धर्म नहिं, सो पशु वत दुख लीन ॥

बीचहिं मिले बीच रहि जाते। निज कृत कर्म अकेल भुगाते ॥
तेहि ते इनका मोहै तजहू। दया क्षमा सत धीरज धरहू ॥
शक्ति शील श्रेणी लखि कीजै। स्वारथ साथ प्रमारथ लीजै ॥
मिलै हर्ष नहिं नाशै शोका। दुखसुख समकरि मन को रोका ॥
बरतहु जिमि निर्मोही राजा। ताहि हाल कहुँ सुनहु समाजा ॥

टि०-१-दस इंद्रिया २-पांच विषय या काम क्रोध लोभ मोह मद।

* राजा निर्मोही का दृष्टांत वर्णन *

छं०-सुनु इतिहासा ! कहहुँ खुलासा ,
सुनु गुनि जोई, लहि सुख सोई ॥१॥

दो०-इक निर्मोही भूप था , ताका राजकुमार ।
शैर हेत बन को गया , घोड़े पै असवार ॥

प्यास लगी कुमार को बन में , इधर उधर तब देखै है ॥
आगे देखि कुटी ऋषि की इक , जाय तहाँ पर हर्षै है ॥
उतरि अश्व से प्रणाम किया जल, पी फिर ऋषि ने बैन कहा ॥
किसका बालक किस हेतू से , बन में आया मेरे यहाँ ॥

* उत्तर-दोहा *

निर्मोही भूप निर्मोह ही , है गुण ज्ञान प्रवीन ।
सन्त सेव सतसंग में , रहै सदा तल्लीन ॥
वही निर्मोह का बाल मैं , आया था बन शैर ।
प्यास लगी पुनि मोहिं को , तब आया तव पैर ॥

कहन लगे ऋषि उससे पुनि , राजा होकर निर्मोही कैसे ?
लघु सुत धन का मोह न छूटै , वह महान नृपति निर्मोही कैसे ?
राजकुमार कह सुनो सन्त यदि , आप को हो इतबार नहीं ॥
तो आप जाकर परीक्षा लाओ , हम बैठैं तव तलक यहीं ॥

दो०-परिक्षा हेत ऋषिजी चले , चलि आये जब ग्राम ।
भूप द्वार पर चेरि लखि , बोले ऋषि अभिराम ॥

प्रश्न संत } तू सुन चेरी श्याम की , बात सुनावों तोहिं ।
कुँवर बिनाश्यो सिंघ ने , आसन परियो मोहिं ॥

उत्तर चेरी — ना मैं चेरी श्याम की, ना कोइ मेरो श्याम ।
प्रारब्ध वश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥

प्रश्न संत — तू सुन सुन्दर चातुरी, अबला योवन वान ।
वन राजा हरि दलिमल्यो, तुम्हरो श्री भगवान ॥

उत्तर लड़के की स्त्री — तपिया पूरव जन्म की, क्या जानत हैं लोग ।
मिले करम वश आय हम, अब तो हुआ वियोग ॥

प्रश्न संत — रानी तुमको बिपति पड़ी, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना किया, तासु मृतक के काज ॥

उत्तर लड़के की माता — एक बृक्ष डालैं घनी, पक्षी बैठैं आय ।
निशि वीते परकाश भौ, चहुँ दिशि उड़ि २ जाय ॥

प्रश्न संत — राजा मुख से गुरु कहो, पल पल जात घड़ी ।
सुत खायो मृगराज ने, मेरे पास खड़ी ॥

उत्तर राजा — तपिया तप क्यों छाँड़ियो, यहाँ पलक नहिं शोग ।
बासा जगत सरायँ का, सबी मुसाफिर लोग ॥

इमि सब के बैन सुने ऋषि जी, चक्रित बड़े प्रसन्न हुये ।
धन्य धन्य कहि धन्य धन्य कहि, जा कुमार लौटाय दिये ॥
सुनो सज्जनों इसी भाँति सब, बर्ता करिये संसारी में ।
हानि लाभ में सम चित रख, नित रहिये गुरु पद यारी में ॥
दो०—अज्ञान समान न रिपु कहीं, क्रोध समान न आग ।
तृष्णा सम कोइ व्याधि नहीं, तेहि ते इनसे भाग ॥
सदा एक रस जो अविकारा । पंच विषय के पार रहारा ॥

सत्य स्वयं सब निश्चय कर्ता। प्रोक्ष प्रत्यक्ष जानियत भर्ता॥
त्यागत गहत सबल मानन्दी। सकल परीक्षक स्वः अनन्दी॥
सूक्ष्म स्थूल मृतक को प्रेरक। स्वतः प्रकाश तुम नित हेरक॥
जेहि के रहत सकल है नाता। सो पद अभय तहाँ कुशलाता॥
सो गुरु पारख बिन नहिं जानै। अछत स्वतः पर हाथ बिकानै॥

दो०-गुरु पारख सत्संग इक, जीवन लाभ सुजान।
पालब देह तो सुफल है, न तौ बादि भै हान॥
मारवाड़ के कूप सम, सुख आशा करि भोग।
निजस्वरूपथितिछोड़ि के, पंच स्वाद के रोग॥
तेहि ते मोह निवारिये, जो विजाति प्रतिकूल।
शील प्रेम सुविचार गहि, श्री गुरु हों अनुकूल॥

सो०-श्री गुरु जब अनुकूल, त्रिविध शूल छिन में छुटै।
मोह जनित तम भूल, भागै परख प्रकाश से॥
अमद सरल शुचि सेव, प्रभु प्रिय निर्छल अपछ जन।
कुटिल द्रोह जड़ छेव, भक्ति तोष गहु हंस गति॥
देखि संत अस नेह, मानहु रंक परी निधि।
सुफल भयो मम गेह, जो पुरुषोत्तम पग धरे॥

❀ कवित्त ❀

संतगुरु देखि उठि तुरत हर्षाय करि,
शीश धरि तीनि बार बंदगी सु कीजिये।
आसन बिछाय बर बैठाय ताहि पर,
थाली में पखारि पद चरणोदक पीजिये॥

लोक लाज मान टारि तन मन धन वारि,
नाना भाँति सेवा करि मोद मन लीजिये।
सत्यज्ञान देयँ जौन दृढ़ हिये धारि तौन,
संतन की कृपा इमि भव दुख छीजिये॥

❀ भक्ति उत्कंठा-दर्शन—गजल ❀

आये हैं संत प्यारे, घर में अहो हमारे।
पूरब के भाग जागे, दर्शन हुए सकारे॥टेक॥
हैं संत निर्विकारी, अज्ञान मोह हारी।
लै थार पग पखारी, करि पान शिर चढ़ा रे॥१॥
धनि धनि है भाग्य मेरी, मुझको खुशी घनेरी।
त्रय बंदगी है तेरी, त्रय ताप की नशा रे॥२॥
माता पिता वो भ्राता, राजा प्रजा जे नाता।
संतों के सम सु दाता, नजरों में नाहिं मेरे॥३॥
दुनियाँ सबी है अंधी, पूजे वो देव चण्डी।
फोड़ूं भरम कि हंडी, ज्ञानी हमें मिला रे॥४॥
तन मन व धन से सेवा, करि के वो पाउँ मेवा।
छल छिद्र छोड़ि देवा, भक्ती में मन डटा रे॥५॥
लहि सत्य ज्ञान भारी, आसक्ति मन को मारी।
आवागमन निवारी, यह प्रेम पद लहा रे॥६॥
दो०—यहि विधि निश्चय करि चलै, पूरब कहे प्रमान।
हर्ष सहित सदगुरु शरण, होय सकल दुख हान॥

* जीवनलाभ कवित्त *

धन धाम काम व्यवहार निरबाह हेतु,
निरबाह फल जीव काज को सम्हारनो ।
जीव काज बोध भक्ति कीजिये विवेक जौन,
याहि बिन देह पालि व्याज को बढ़ावनो ॥
बूढ़े बड़े जननी जनक पुज्य भले सब,
विघ्न करैं भक्ति में तो बोझ सो हटावनो ।
साधक प्रमारथ में तेई पुज्य गुरु सम,
आश्रम को धर्म शील सेव को बढ़ावनो ॥१॥
साधु सत्संग करि जगत से घूमे मन,
तऊ शीघ्र सहसा न घर बार छोड़िये ।
सरल सनेह नव नित गुरु साधु संग,
लगन में मगन हो मन सुख तोड़िये ॥
बोध भक्ति शुभगुण पंथ को समान बाँधि,
सब साज शक्ति देखि विरति में जोड़िये ।
शोक सिन्धु तरन को गुरु पद यान चढ़ि,
निज रूप देश माहिं सावधान पौढ़िये ॥२॥
दो०—यहि प्रकार गुरुशरण ह्वै, त्यागै पशु वत कर्म ।
ज्ञान भक्ति सत धीर गहि, सोई मानुष धर्म ॥
सो०—मन जग संगति दोष, दलन हेतु सामर्थ लखि ।
साधु भेष निर्दोष, तब लेवै सु विवेक से ॥
दो०—नरदेही को पाय के, करिये काज अदाग ।
गेही करै तो भक्ति करु, ना तो करु वैराग ॥

यह सतगुरु उपदेश को, जो नहिं गहत विचार।
चौरासी योनिन विषे, भोगत दुःख अपार॥

❀ कथा-श्रवण पुनीत फल ❀

छं०—जो यह कथा पढ़ि गाय सुनि गुनि धारिहैं जिय में भले।
योग जप तप ध्यान बिन ते ताप त्रय में नहिं जले॥
दारुण अविद्या पंच विषयाध्यास सब नशि जाइहैं।
पारखि गुरु से परखि सत भव दुःख सब बिसराइहैं॥

दो०—मानुष के गुण धर्म सब, कहा सबै समुझाय।
निज २ गृह को सब चलो, देर हुई अब भाय॥

सो०—ऐसे सुनि गुरु बैन, क्षुधित अशन लहि मोद में।
करि प्रणाम अति चैन, गुण गावत सब घर गये॥

वैद्य भूप जननी जनक, सकल सहायक होत।
तदपि मित्र सब स्वारथ वश, शत्रु मित्र के सोत॥
कहहु कौन गुरुदेव सम, हितकारी जग मायँ।
नित्य अचल अविनाशी धन, है उदार दरशायँ॥

* महान सौभाग्य साहस वर्णन *

गुरु सम धन्य कौन उपकारी। डूबत लखि पल माहिं उबारी॥
सुकृत मूर्ति जे गुरु पद ध्यावैं। निश्चय हंस अमर पद पावैं॥
गुरु पद ऐन छोड़ि गिरि जावै। परम प्रबीन होय किन भावै॥
गुरु की दया गुरू पद पावै। गुरू रूप निज रूपहिं लावै॥
जेहि दृष्टी गुरु परखत जाला। सोइ दृष्टी लहि दास निहाला॥
सोइ दृष्टी बिन जीव अभागे। धन्य तेई जो पाय सुभागे॥
जानि परीश्रम गुरु पद माहीं। तजै तो क्या जग में श्रम नाहीं॥

सुनहु मित्र यद्यपि सुख सबहीं। लहि गुरु मार्ग माहिं जिव अबहीं॥
शम दम तोष न्याय सुविचारी। विरति विवेक देत सुख सारी॥
तदपि अनादि भूल मन धारा। संगति पड़त रहत जग सारा॥
ताते जिव ठहरै नहिं पावै। धारा अगम अथाह बहावै॥
सो गुरु परख युक्ति बिन नाना। कबि कोबिद दुइ धार बहाना॥
जानि बोध गुरु भक्ति न छूटै। तो सहजै सब विघ्नहुँ टूटै॥
करत प्रयत्न नहीं अकुलावै। जानि जीव जय क्यों घबरावै॥
मन स्वभाव आसक्ति सकल भ्रम। तेहि ते क्यों हारत है रज तम॥
केहु आश्रम केहु घट के माहीं। संतत सजग सुपथ हित ताहीं॥
करत प्रयत्न समूल हनै सुख। तो लहि मोक्ष न पाइय भव दुख॥
जो कछु कसर रहे तउ आगे। शुद्ध स्वभाव पुनः तेहि जागे॥
यहि विधि करत प्रयत्न न हारे। तो निश्चय भव दुक्ख संहारे॥
उभय हाथ लखि मोदक सागर। गहिय सत्य पथ बनिय न कादर॥
गुरु की कथा सजीवन बूटी। बल पावै जो लेवै घूँटी॥
जेहि सुख हेतु जीव यह भूले। सो सुख से कछु तृप्ति न शूले॥
सुख आशा जीवन भरमावै। ताहि तजे गुरु पारख पावै॥

सो०—प्रगट करत गुरु भाव, प्रेम नेम सुविचार जू।
सुनि सुनि के सुख पाव, रज तम सततनु चैन में॥

दो०—सत्य ज्ञान प्रकाश को, पूरण द्वितीय प्रकाश।
मानुष के गुण धर्म सब, कहा याहि में खाश॥

सत्य ज्ञान प्रकाश व ज्ञानमार्तण्ड का
द्वितीय प्रकाश गृहस्थाश्रम धर्म
समाप्त

* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

❋ तृतीय प्रकाश प्रारम्भ ❋

[गुरु गुरुवा प्रसंग]

सो०—हंस दशा बतलाय, दियो भेद गृह धर्म को।
ताते तव शरणाय, करौ दया जेहि तम नशै ॥

* सद्गुरु के वर्तमान, जीवन्मुक्त लक्षण—चौपाई *

सहज विरागवान के गुण गण[१]। कहत सुनत भ्रमनाशतक्षण क्षण॥
सो विराग मूरति गुरु साधू। जिनकी रहनि हरण भव व्याधू॥
सततनु गुरु की रहनि सुनाऊँ। नित्य अचल पद में ठहराऊँ॥
निर्णै[२] पठन[३] निवृत्ति[४] त्रिधामा। यक चित ह्वै गुरु कर यह कामा॥
गो मन प्रकृति स्वभाव के पारा। सदा एक रस प्रभु अविकारा॥
मन द्रष्टा कर दृढ़ अभ्यासा। स्ववश नितांत बिना दुख भासा॥
कठिन दुःख इक्षा लखि सनमुख। जीवन धन निर्चाह लहत सुख॥
सो नैराश्य तख्त आसीना। होत न कबहुँ विषय वश दीना॥

टि०— १-समूह। २-शंका - समाधान। ३-सद्ग्रंथ पढ़ना।
४-मनोद्रष्टा स्थिति।

जग के सुख सब परवश रूपा। चाह किये तेहि बंधन कूपा॥
जगत जीव कोइ स्ववश न अपने। निज २ मनोमयी सब सपने॥
कहुँ मित्र कहुँ अरि ह्वै जावैं। यहि ते साधु न आश लगावैं॥
भोग वस्तु सम्पत्ति बड़ाई। विघ्न रूप आशा दुखदाई॥
वेश्या के सम सुख दरशावैं। छिन २ सनमुख बिमुख दुखावैं॥
परम विरागवान यहि कारण। दुरत रहत जग सुख से तारण॥
द्रष्टा स्वतः स्वरूप में लीना। सुख भ्रम नाशि उदासि प्रवीना॥
मोहक बाधक वस्तु कुसंगा। तजि सब रहत एकांत प्रसंगा॥
जिनके संग बोध गुण आवै। सो रबि शरण कि कबहुँ तमावै॥

दो०—निराश निवृत्ती भवन में, शान्ति सेज पर थीर।
पारख रूप गुरु भूप हैं, हरैं हमारी पीर॥
ज्ञान खड्ग ले चित्त में, मन इन्द्री अरि जीत।
जग से सोवत शान्त ह्वै, प्रभु एकांत अभीत॥
भोर भयो उठि बैठ कर, मनोवृत्ति को देख।
देंह सबन्धित कार्य कर, यहु बेगार उर लेख॥

छं०—पांचो विषय विष जानकर, जो दूर ही से त्यागिया।
खानीवोवानीजाल मेंनहिं, भूल कर अनुरागिया॥
निज रूप में रह थीर नित, स्थिति गुणो सम्पन्न हैं।
इमि सद्गुरो पद्मासनै से, थीर चित्त प्रसन्न हैं॥

* सम्बाद वर्णन *

दो०—इतने महँ जिज्ञासु सब, आये सदगुरु पास।
कर जोरे स्तुति करत, सहित प्रेम हुल्लास॥

❁ प्रार्थना ❁

हम दीन दुखी नित टेरि रहे, गुरुदेव नमो गुरुदेव नमों ॥
गुरु तव पद में शिर धारि रहे, गुरुदेव नमों गुरुदेव नमों॥ टे०॥
प्रभु जीवन के हितकारी हो, मद मान अबोध प्रहारी हो।
बस दया दृष्टि हम चाह रहे, गुरुदेव नमों गुरुदेव नमों ॥१॥
गुरुवों के जाल अखा दो मुझे, सब खानिन गाँस छुड़ा दो मुझे।
बस तुमहीं एक सुमीत रहे, गुरुदेव नमो गुरुदेव नमों ॥२॥
हूँ कामी क्रोधी क्रूर सदा, भव भारों से मैं खूब लदा।
बस स्वारथ के सब मीत रहे, गुरुदेव नमों गुरुदेव नमों ॥३॥
त्रयताप हमारे मिटा दीजै, सद्ज्ञान व धर्म सिखा दीजै।
बस मों मन भक्ति डटीहि रहे, गुरुदेव नमों गुरुदेव नमों ॥४॥
शिशु सेवक प्रेम है दास तेरा, हे कबीर गुरू दुखनाशो मेरा।
बस गुरु बिशाल पद पाय रहे, गुरुदेव नमों गुरुदेव नमों ॥४॥

दो०—इमि स्तुति करि सब जने, सनमुख बैठे आय।
बहुत प्रजा के बीच जिमि, मानो भूप सुहाय॥

परम कृपालु न द्रोह को लेशा। सहनशीलता धीर विशेषा॥
शम दम मृदुल सर्व उपकारी। सत्य ज्ञान परकाश तमारी॥
मुख देखत पातक नशि जावै। बचन सुनत मद मोह नशावै॥
परशत जाको कर्म बिलाहीं। बड़े भाग्य इमि संत मिलाहीं॥
पारख प्रभु आरत हितकारी। हित शिक्षक विरुदावलि[१] भारी॥
सब जन शांत रहे कुछ देरी। गुरु रुख देखि शिष्य हिय हेरी॥

टि०—१-भेष रक्षक।

साँसति१ हरण गुरू पग ध्याऊँ। निज उर शंका प्रगट जनाऊँ ॥
गुरु-गुरुवा किमि रक्षक भक्षक। नहिं जानत सो कहिय परीक्षक॥
कौन गुरू है गुरुवा कौना। कहहु दयानिधि लक्षण जौना ॥
है निर्पक्ष सुनब हम नीके। तव बच सत्य सुधा सम जी के॥

* गुरु उत्तर *

शिष्य बचन सुनि गुरुवर बोले। सतगुरु सत्य बचन प्रिय खोले॥
सुनहु सबन मिलि गुरुवा लक्षण। जे करते नित जीवन भक्षण॥
सुनि कोपित नहिं होवहु कोई। मानहु सत्य न्याय जो होई॥
शत्रु मित्र पर आपन कोऊ। सुनि हित बात गहत बुध ओऊ॥
दो०—काम क्रोध मद लोभ रत, विषय प्रपंच दृढ़ बंध।
नशा ढोंग पाखण्ड बहु, भोगेच्छा वश अंध॥
भूत भवानी ग्रह तुम्हें, शनि अथवा शै२ लाग।
बहु अनुमान दृढ़ावहीं, सो भर्मिक सँग त्याग॥
फूँक झार बहु लोभ दै, अनुगौ३ करि श्रम देय।
बाचारम्भ कुतर्क बलि, हिंसा नाहिं तजेय॥
जौने माया जाल में, फँसे गृहस्थी लोग।
ताही में गुरुवौ फँसे, कैसे करहिं निशोग॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य पुनि, पारख युत सुनि बात।
जरत रहत कटु बात कहि, निर्णय नाहिं हितात॥
भास अध्यास अनुमान औ, विविधि कल्पना लादि।
आपु बहे मन धार में, साथिउ कीन्हे बादि॥

टि०— १–दुख। २–भूत। ३–चेला।

मल धोये मल जात नहिं, वारि मथे नहिं घीव।
तैसे अर्मिक गुरुन संग, शान्ति न पावै जीव॥
ताते ऐसी हानि प्रद, संगति त्यागहु जान।
निजल कूप को त्यागि जिमि, सजल कूप पिय छान॥
गू तम में भोगत विषय, रू स्वरूप नहिं जान।
धन हित बाँधिन सुपथ दे, भक्षक लक्षण मान॥

* शब्द *

सतगुरु बैदा को न जाने जग रोगिया भयो॥ टेक॥
जन्म मरण दोउ रोग बढ्यो हैं, तृष्णा वादी खाँसी।
आवागमन की डोरी लागी, परखो काल की फाँसी॥१॥
देखादेखी गुरुमुख ह्वै गे, कीन्ह्यो न तत्त्व बिचारा।
गुरु चेला के शिर के ऊपर, मारैंगे यम जाला॥२॥
साँचे गुरु को कोइ कोइ मानै, झूँठे को जग ध्यावै।
अन्धा बाँह गहे अन्धे की, मारग कौन बतावै॥३॥
पारख दृष्टि दया जब गुरु की, सब अज्ञान नशावै।
कहैं कबीर जाल सब परखे, बहुरि न भवजल आवै॥४॥
छं०—बोधदायक साधुगुरु तजि और कहँ भटकाइये।
पतितपावन हैं वही आधार ले सुख पाइये॥
चारि धाम व तीर्थ अरसठ जाय मंदिर ध्याइये।
निज मनः कल्पित जु मोदक छोड़ि क्या कुछ लाइये॥
हाथ माला लेय कर के एक एक घुमाइये।
चितवृत्ति की जड़ मूल अबुधी बोध बिन किमि ढाइये॥

चैतन्य सेव्य के भाव बिन सब बाल खेल भुलाइये ।
गुरु बोध बिन अंधार सपना आइये पुनि जाइये ॥
जड़ ग्रन्थि दलने के लिये चैतन्यदेव लखाइये ।
सादर विवेकी संत में नव नेह प्रेम बढ़ाइये ॥

दो०—अनुमानपुच्छकोपकड़ करि, जीवहिं चैन न होय ।
जिमि अति श्रम पानी मथे, घिव नहिं निकरै सोय ॥
प्रेरक मोक्ष औ देवता, भूत प्रेत अनुमान ।
स्वर्गादिक को मान कर, जन्म मरण दुख थान ॥
आँखिन पट्टी बाँधि भ्रम, मन वशि इक इक काल ।
है यामें दृष्टांत इक, सुनहु ध्यान दै हाल ॥

* दृष्टान्त *

दो०—तन धन हय गज धाम युत, सब सुख से भरपूर ।
भूपति एक महान था, चहुँ दिशि यश मशहूर ॥

छं०—इमि सो भूप महान था पै इश्क उसको एक थी ।
नाटक तमाशे खेल उसको देखने की टेक थी ॥
इक मित्र मानूँ भाँड़ तिसका विविधि खेल दिखावता ।
भूपति के चंचल चित्त को बहु भाँति से वो रिझावता ॥
भूपति मानूँ भाँड़ से यक दिन कहा यों टेरि के ।
जो ना हुआ ना होय होवै करहु खेल सो हेरि के ॥
सुनि बात मानूँ भाँड़ ने षट मास की मुहलत लिया ।
पुनि जाय निज घर छिप रहा परदेश गो कहवा दिया ॥

कुछ दिनों में निज मरण की कर दिया परचार वो ।
मानूँ मरण सुनि भूप करि हिय चित चित अपार वो ॥
पाकर समय निशि माहिं मानूँ धरि चतुर्भुज रूप को ॥
खिड़की कि राह से जाय करि सन्मुख खड़ा वो भूप के ॥
देखि अद्भुत रूप तुरतहिं जोरि कर पग नृप परा ।
हो कौन ? मानूँ विष्णु मैं तू स्वर्ग चल सुख से भरा ॥
हे भूप तव सु अनन्य भक्ती देखि मैं रीझा सही ।
वैकुण्ठ को कुल सह चलो जहवाँ सु दुख रंचक नहीं ॥
अनेक चुपड़ी बात सुनि इमि भूप मानूँ भाँड़ से ।
चलने को स्वर्ग तयार भो मयनारि सुत बधु चार से ॥
पुनि भाँड़ मानूँ यो कहा वैकुण्ठ की अटपट गली ।
नीच ऊँचे काँट बहु बन देखि के नहिं मन चली ॥
इस हेत आँखें बाँध पट्टी वस्त्र सब जन छोड़ कर ।
मानूँ के साथ सो हो लिये इक एक की कटि को पकरि ॥

सो०—साथ लिये जन चार, अर्ध रात्रि के समय में ।
ग्राम के चहुँ किनार, लगा घुमावन भाँड़ वह ॥

दो०—गिरे पड़े देही छिले, काँट गड़े समुदाय ।
नग्न आँख पट्टी बँधे, चारों करते हाय ॥
ढीले काँट में भूप पग, पड़े तो करता हाय ।
पुनि मानूँ कह चुप रहो, गयो स्वर्ग निकटाय ॥
चारों ओर घुमाय करि, पुनि खिड़की की राह ।
फाटक अन्दर खड़ा करि, स्वर्ग द्वार कह याह ॥

पुनि मानूँ कह देख लूँ, स्वर्ग अन्दर में जाय।
चारों को पुनि ले चलूँ, खड़े रहो तब ताय॥
अस कहि मानूँ निज घरे, गयो इधर भो भोर।
नौकर चाकर भूप के, करन लगे सब शोर॥
शोर सुनी गुनि भूप ने, जान्यो यह मम गेह।
क्या हम सब सपना लखैं, बड़ा अचम्भा येह॥
पुनि पट्टी सब खोल करि, देखि नग्न सब कोय।
आपस में शर्माय करि, वस्त्र पहिन सब लोय॥
फाटक खोलि सु भूप तब, करी कचहरी आय।
इतने महँ मानूँ अयो, जै जै कार मनाय॥
जै जै कार मनाय कह, राजन! देउ इनाम।
जो न हुआ ना होयगो, खेल कियो सु तमाम॥
राजा कह तू मर गया, कैसे पुनि तू खेल।
मानूँ कह तव खेल हित, किया ढोंग सब झेल॥
सुनि गुनि चक्रित भूप भौ, मानूँ सब निशि खेल।
दै इनाम तेहि बिदा करि, दृष्टांत पूर्ण अब भेल॥

भूपति : चेतनजीवहिं कहिये। पंच विषय सुख चाहत रहिये॥
मानूँ भाँड़ सु मन मानन्दी। प्रमदा गुरुवा ब्रह्मानन्दी॥
जो कोइ जीवन कहँ भरमावै। सोई मानूँ भाँड़ कहावै॥
विषयादिक बहुलोक कि आशा। यंत्र मंत्र बहु कर्म बिलासा॥

दो०—पंच विषय सुख भोग हित, किये जीव बहु कर्म।
जन्मृति जब नहिं छूटिया, गुरुवन से पुछ मर्म॥

जन्मृति जेहि विधि हो नहीं, सोइ उपाय कह देव ।
बैकुण्ठ ब्रह्म बतलाइया , सुख समुद्र सोइ लेव ॥
षट साधन सम्पत्ति करि , कर्म उपासन योग ।
ज्ञानादिक मारग कठिन , चलि सुख ब्रह्महिं भोग ॥
ब्रह्मज्ञान सुख रूप सुनि, साधन चतुर विवेक ।
पढ़ि सुनि गुनि चलि कष्ट करि, ब्रह्म बन्यो पुनि एक ॥
ब्रह्म जगत पुनि ब्रह्म जग, अस्ति भाति प्रिय रूप ।
आँखिन पट्टी बाँधि इमि, फाटक गर्भ सरूप ॥
गगनोपम बिन रूप कहि, गोमन बिन जग हेत ।
वेद वाक्य कहि ताहि से, सृष्टि बढ़ाय अचेत ॥

जगत रूप बनि गर्भहिं आवा । पुनि इमि गुरुवा जिव भरमावा ॥
इमि सो देखु परखि हे भ्राता । ब्रह्मज्ञान जग संसृत नाता ॥
खानि रूप जो प्रमदा आही । भग सोइ स्वर्ग जनाय अमाही ॥
नर तन महँ परमारथ बनई । बाँधि सु पट्टी अंधे जरई ॥
भोग विवश ह्वै दोउ दुख* पावैं । पुनि २ गर्भ बास को आवैं ॥
नट समान बहु धरि धरि रूपा । योनिन नाचत दुख में भूपा ॥

दो०—यथा शुद्र कोइ कोल को, मारत सुज्जन कोंच ।
बारम्बार सो मारहीं, जब लग प्राण न मोच ॥

टि०- *हरै शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नरक में परई ॥
गुरु शिष्य अंध बधिर कर लेखा । एक न सुनै एक नहिं देखा ॥
यह रामायण की चौपाई । सत्य बात सुनि २ जरि जाई ॥

तैसे जीवन मूल वश, बानी विविधि प्रकार।
बारम्बार सो मारहीं, जीवन कष्ट अपार॥
यथा हरिण कोइ लाँगड़ी, व्याध जाल में फाँस।
तैसे भर्मिक जानहू, मार्‌यो जीवन गाँस॥

शुभ पुरुषार्थ छोड़ि के भाई। केवल कंचन लोभ बढ़ाई॥
धनौ कमाय साधु नहिं सेवैं। नहिं सत्संगति में मन देवैं॥
गृही कुटुम्ब नशा में भाई। कोइ तो रण्डी देत नचाई॥
गुरु को पशु वत कर्म न छूटा। चेला को कया देयँ अगूँठा॥
महिमा वाक्य जीव भरमाई। वेद कुराँ इंजील सुनाई॥
वेद शास्त्र की उत्तम रीती। ताहि न धारत हृदय सप्रीती॥
धर्म शास्त्र बद दैवी सम्पति। सोउ धारै तो उत्तम ह्वै गति॥
सो रहस्य तजि वृथा विवादू। केवल वर्णाश्रम मद लादू॥
जो शिष सत्संगति में बैठैं। देखि देखि गुरुवा सब ऐंठैं॥
काया बीर कबीर सु चेतन। श्रेष्ठ शुद्ध गुरु पद तजि केतन॥
कहैं कि दानव निन्दक आहीं। सब को यह भरमावन चाहीं॥
नीच अपर कहि निज नहिं देखत। व्यास वशिष्ठ मतंग विशेखत॥
मूल राम सिय अग जग रूपा। कहहु भिन्न का भयउ सरूपा॥
दानव के लक्षण हिंसादिक। सो न जानि के बकत प्रमादिक॥
जो न जाहि गुण जानत निन्दत। श्वान यती भूँकत बुध बन्दत॥
अहो शोक गुरुवन मति कैसी। जीवन बाँधि वृथा दुखदैसी॥
जो निरपक्ष स्व हित को चाहैं। दीन दयाल शरण सो गाहैं॥
जौन जीव की दीन दयाला। परखायो भक्षक के जाला॥

ते नहिं फँसते यम की फाँसी। यद्यपि मारत पुनि २ गाँसी ॥
जौन जीव पहिले फँसि गयऊ। परख दृष्टि पीछे जेहि भयऊ ॥
ते भक्षक संग छोड़त प्रीती। ठग को हाल समझ तब जीती ॥

* एक जिज्ञासु और चार गुरुवों का सम्वाद प्रारम्भ *

दो०—बोध भरन सम्बाद यह, सुनहु सबन चित लाय।
ह्वै निर्पक्ष जे सुनहिंगे, तिनको काल न खाय ॥
गुरुवा चार सु आयऊ, इक जिज्ञासु के गेह।
और गाँव के सब जुटे, सुनो बात भइ येह ॥

गुरुवा कह नास्तिक ह्वै गयऊ। शिष्यकहै किमिनास्तिक भयऊ॥
गुरुवा कह निजमत नहिं मानत। शिष्यकहै हम क्यों नहिं मानत ॥
गुरुवा कह तुम ज्ञानै कथहू। नास्ति निन्दकी फन्दे परहू
शिष्य कहै सुनिये महराजा। ज्ञान बिना पशुवत है साजा ॥
हम अज्ञानी को ज्ञानै चहिये। रोग होय तेहि औषध लहिये॥
नर तन पाय भक्ति नहिं ज्ञाना। सो नर अधम शृगाल समाना ॥
संतन भक्ती औ सेवकाई। करि सत्संग स्वपद को पाई ॥
निन्दक ताको कहिये भाई। होय और कछु देय बनाई ॥
पाथर को पाथर कह ठीका। पाथर देव रूप नहिं नीका ॥
अँधरा को दिटियारै कहई। उलटा कहै सो निंदक अहई ॥
दूसर गुरुवा कहै रे बच्चा। भाव बिना सबहीं है कच्चा ॥
जल थल पाथर में नहिं ईशा। भावै प्रेम सो कहैं मुनीशा ॥
पाथर को देवता करि मानहु। तो वा कहँ वाही फल जानहु॥
तीरथ वर्त नाम रट लावो। तबहीं मुक्ति पदारथ पावो ॥

शिष्य कहै सुनिये गुरुराई । यह उपदेश न मोहिं सुहाई ॥
यद्यपि कनिष्ठ बर्ग को वोई । भय औ रोचक सुनि हितहोई ॥
तदपि मिले उपजाऊ खेती । तेहि तजि ऊसर कोपुनिलेती ॥
जो तुम भावै साँची मानहु । तो धूली को मैदा जानहु ॥
बबुरहिं को चन्दन करि मानो । सुगंध पाव तो भावै टानो ॥
अंधा नेत्र भावना करई । काहे न वाको देख सु परई ॥
तुम्हरी झूँठ भावना सबहीं । नाम रटे से मुक्ति न कबहीं ॥
जल जल कहे प्यास नहिं जावै । नाम रटे से मुक्ति न पावै ॥
नामी को चीन्हे नहिं भाई । नाम रटे से क्या फल पाई ॥
कछु देर वृत्ती थिति जो पै । मूल सहित मन ध्वंस न तो पै ॥

दो०—षट रस व्यंजन को यथा, नाम रटे मन लाय ।
तो क्या भूँख नशावई, बिन खाये रे भाय ॥
यथा गेह के मध्य में, रह विशेष तम छाय ।
काटै मारै युक्ति बहु, विन प्रकाश नहिं जाय ॥
तैसे वपु के मध्य में, हृदय अज्ञ तम छाय ।
बिना ज्ञान नहिं नाशहीं, कोटिन करो उपाय ॥
बाह्याचार जु तीर्थ करि, मूर्ति पूजि बहु काम ।
यदपि कछुक जन पाप से, रुकत मानि सुख धाम ॥
तदपि सो उत्तम जन कहैं, स्वप्न पुरी क्षण भंग ।
जागि काज नित करत सद, चेतनदेव के रंग ॥
तीरथ व्रत औ जाप जो, पूजा करिये जौन ।
पारखि संत बतायऊ, मैं कहिहौं अब तौन ॥

* सवैया *

तीर्थ वही जो कि पाप से तारत , पाप वही मन मध्य विकारा ॥
सो सत्संगति तीरथ सत्य है , दुरगुण नाशत लागै न बारा ॥
व्रत वही जो बुरे कर्म त्यागहु , और जो व्रत सो झूँठ पसारा ॥
पूजा वही जो कि चेतन पूजत , जाप वही गुरु प्रेम न टारा॥१॥

* चौपाई *

तीसर गुरुवा बोला बच्चा । कहत ज्ञान मारग तू सच्चा ॥
पै सीढ़ी क्रम क्रम तुम चलहू । केवल ज्ञान मार्ग नहिं बहहू ॥
यथा अटारी पर है जाना । सीढ़ी सीढ़ी चढ़ि तब पाना ॥
दो०—तैसे सीढ़ी चारि हैं , कहता वेद बखान ।
कर्म उपासना योग है , चौथा मारग ज्ञान ॥
तीर्थ व्रत औ श्राद्ध बहु , मूरति पूजा जान ।
पहिली श्रेणी कर्म यह , बहु विधि है परमान ॥
स्वर्गादिक को मान कर , जप तपादि जो कर्म ।
जंतर मंतर जाप बहु , नवधा भक्ति सुधर्म ॥
योगश्चित्त निरोध करि , ईश्वर व्यापक मान ।
श्वाँस चढ़ाय ता मिलि रहो , नाना भाँति बखान ॥
चौथा मारग ज्ञान है , सब से परे अभंग ।
व्यापक ईश्वर एक मैं , अद्वै अमल असंग ॥
चारों सीढ़ी मानि के , निन्द न कीजे काहि ।
जस जस ऊपर चालहू , नीचे छुटता जाहि ॥
सर्वाधार जो ईश है , व्यापक अमल असंग ।

ताहि अनन्तो नाम हैं, महिमा अमित तरङ्ग ॥
ताते ईश्वर मानि कर, कर्म उपासन योग ।
वेद मार्ग से ज्ञान लहि, मिटि सम्भव सब शोग ॥

* जिज्ञासु वचन *

दो०—इमि गुरुत्रों के वचन सुनि, बोल्यो शिष्य सुजान ।
जो कुछ कह्यो सो मैं लख्यों, बात न मोहि सुहान ॥

सो०—यद्यपि वैदिक रीति, करै सुकृत कछु सुख लहै ।
तदपि न होय अभीति, बिन गुरु पारख ज्ञानके ॥
जहवाँ रूख न कोय, तहाँ रेंड़ ही रूख भल ।
जहाँ धाम तरु होय, पाय तजै को मूढ़ अस ?

जैसे वृक्ष होय नहिं जहवाँ । क्या फल मिलै जाय के तहवाँ ॥
तैसे मुख्य ईश जेहि कहहू । कहाँ रहे ताहि केहि विधि लहहू ॥
ईश ब्रह्म औ देव भवानी । द्रष्टा-दृश्य छोड़ि कहँ मानी ॥
व्यापक ईश्वर भेद बतावै । निराकार निर्गुण समझावै ॥
अकल अनाम अनीह अरूपा । बन्ध्यासुत कैसे हो भूपा ॥
गो गोचर मन परे बताई । केहि विधि ताको पइहौ भाई ॥
निराकार का मूरत ध्याना । स्वर्ग माहिं रह कैसे जाना ॥
नेति नेति कहि वेदै हारा । तब तुम कैसे करहु विचारा ॥
जासे सब की उत्पति मानो । कैसे शुद्ध ताहि पहिचानो ॥
अगम अपार अथाह औगाहा । रस्ता चलि कर क्या फल लाहा ॥

दो०—ताते सीढ़ी यह नहीं, यह तो खन्दक आहि ।
वेद कुराँ सब कल्पित, मारग उलटा जाहि ॥

ज्यों कोइ पूरब जात भो, चकी बुद्धि पुनि ताहि।
पुनि पश्चिम को चलिदियो, अधिक दुरातै जाहि॥
त्यों कल्पत जिव सुक्ख हित, मारग चार सु वेद।
उल्टा बन्धन बढ़त गौ, चलि चलि पावै खेद॥
फूँक झार को ना करो, कटुक बात को त्याग।
कबर मूर्ति जड़ ना पुजो, साधु सेव अनुराग॥
संतन से सत्संग करि, निज स्वरूप को जान।
दया क्षमादी भक्ति लहि, करै सबै भ्रम हान॥
देव अचेत जड़ मूर्ति हैं, साधू चेतन रूप।
तिनकी सेवा करत हम, नाशत सब भ्रम कूप॥
सत्य ज्ञान मय शिष्य के, सुनत बोल त्रय चुप्प।
चौथा गुरुआ क्रुद्ध मति, बोल्यो बच अंध कुप्प॥

अतिहिं क्रोधकरि बचन निकाला। गाँजा चरस लाव रे बाला॥
दोय वर्ष का पूजा बाकी। जल्द लाव नहिं जाउब फाँकी॥
गुरू हमार चला है बनने। ज्ञान ध्यान सब देखा हमने॥
अपना पुरुष छोड़ि पर पुरषा। बंचक नारि समान तु मुरखा॥
जौन सनातन से है रीति। मानहु नहिं तो नरक परीती॥
ज्ञानिउ धन की करैं कमाई। सब चेलन को दियो भरमाई॥

* जिज्ञासु बचन *

शिष्य कहै सुनिये गुरुदेवा। संत गुरू तव करिहौं सेवा॥
पर सतगुरु के यह नहिं लच्छन। ज्ञानहि सुनि के क्रोध ततच्छन॥
गुरू होय गुरुपद नहिं जानै। गुरु रहस्य धारै नहिं मानै॥

तेहि सतगुरु हम केहि विधि मानैं । तन मन धन अर्पण केहि ठानैं ॥
केहि विधि हो उनसे कल्याना । जो गुरुदेवै होय अयाना ॥
सुखाध्यास वश हम सब भूले । वैसे गुरु तो का फल मूले ॥
कोउ पुरिखन में अँधरा होवै । तो का आपन आँखिहु खोवै ॥
पूजा क्या है पोत तुम्हारा । भेड़ियाधसन सनातन सारा ॥
चेला नारी गुरुओ नारी । नारि नारि से काज न सारी ॥
खशम एक कर्त्ता अनुमाना । गुरू शिष्य दोउ सवति भुलाना ॥

दो०—दुइ नारी इक रूप जिमि, यक करि नरहिं सरूप ।
नारि पुरुष दोउ मानि दृढ़, तो का सुत फल लूप ॥
पीतर लोह पर सोन जल, यथा चढ़ाय ठग लोग ।
कीमत लेते सोन की, तिमि तुम गुरुवा लोग ॥
खरा सोन परखाय दै, यथा साहु लै दाम ।
साहू साहेब गुरु सोई, देत सत्य को दान ॥
जिमि चारा को देय करि, खग मृग बधिक सु फाँस ।
तो क्या रक्षा हेत तिहिं, तिमि गुरुवों की गाँस ॥
अन्न वस्त्र प्रारब्धि में, विचरत संत सयान ।
सोवत जीव जगावते, नहीं बटोरत दाम ॥
सह संतोष विचार युत, लेत कबहुँ जो दाम ।
तुरतहिं ताहि लगावते, सत शुभ कोई काम ॥
लिये कुवैद कि औषधी, बाढ़ै दूना रोग ।
तैसे अज्ञानी गुरू, नहिं पूजन के योग ॥

साँचे श्राप न लागै, साँचे काल न खाय।
साँचहिं साँचा जो चले, ताको काह नशाय॥ बी०
इमि चेला के बैन सुनि, हारि गये गुरु लोग।
निज निज गृह को सब गये, हर्ष बहुत बहु शोग॥
कुल गूढ़ा कुछ सहजै भाई। गुरु गूढ़ा छूटब कठिनाई॥
दाल गली नहिं तब गुरुवों की। पार दृष्टि प्रबल जेहि बाँकी॥
और सबै गुरुवों के फन्दे। अरुझि अरुझि मरते हैं गन्दे॥

(एक जिज्ञासु औ चार गुरुवों का सम्वाद समाप्त)

* गुरु के लक्षण—सवैया *

गुरुदेव वही जो कि भर्म छुड़ावत, सत्य दृढ़ाय सुमार्ग बतावै॥
प्रकाश वही जो कि नाश करै अंध, अंधहि साथ को राह बतावै॥
शिष्य वही गुरु निर्णय जानत, निर्णय बिना निगुरा कहलावै॥
मंत्र वही गुरु निर्णय मानहु, अज्ञ महा विष प्रेम नशावै॥

दो०—जनक जननि नामौकरण, विद्या दान दे मन्त्र।
ब्रह्म बोध दै बीज भव, ये सब गुरु जन तन्त्र॥
सर्ब कार्य के गुरु बहुत, इक इक के शिरताज।
खानि बानि परखावहीं, बिरले गरिबनिवाज॥
विषय फन्द से रहित जो, भर्म नहीं है कोय।
निज स्वरूप में थीर जो, सतगुरु कहिये सोय॥

* भजन *

ऐसे गुरुदेव सकल भ्रम हारी॥ टेक॥
जड़ चेतन की निर्णय करि कै, परमारथ पद सारी।

प्रोक्ष प्रत्यक्ष अनुमान कल्पना, सब संशय तृण जारी ॥ १ ॥
धर्माधर्म मनुष पशु लच्छन, योग्य अयोग्य बिचारी।
मानुष धर्म दयादिक समता, गहत गहावत भारी ॥ २ ॥
खानि देह सो पंच विषय मद, वानि प्रोक्ष दुखदारी।
दोउ जालन को काटि परख बल, आप स्वतः निरधारी ॥ ३ ॥
सब सिद्धांत प्रखाय भली विधि, ज्ञान विज्ञान जहाँरी।
जगत ब्रह्म सो भव भय तजि के, शिक्षत लखि अधिकारी ॥ ४ ॥
सन्मुख निश्छल देखि दे अमृत, नित्य अचल अधिकारी।
सो लहि जीवन जन्म सुफल भौ, प्रेम सहित बलिहारी ॥ ५ ॥

दो०-इमि रहस्य युत साधु जे, तिनहूँ पद में प्रीति।
सेवै जो गुरु साधु को, लेवै यम को जीति ॥
तन मन सिन्धु प्रवाह बड़, विवश जीव बहि बेग।
तहँ गुरु भक्ति जहाज है, गहै तरै सो तेग ॥

गुरु पारख जे सेवैं प्रानी। धन्य लाभ लहि तजि सब हानी ॥
रजतनु तमतनु सहज निहाला। सुनुहु शरणविधि गुरु मग चाला ॥
योगी यती तपी सन्यासी। कबि कोविद जे भद्र उदासी ॥
शोधक यंत्र विज्ञ जे बादी। खानि बानि वश सकल विषादी ॥
सो गुरु परख बिना सब सोये। भूरि भाग्य जो दर्शन होये ॥
तन अर्पण सेवा बिस्तारे। मन अर्पण मद अष्ट सु टारे ॥
है निष्कपट निरन्तर मन से। यथा योग्य सेवा करु धन से ॥
आरति पूजा विरह अटूटा। गुरु पद रति इमि धन्य सो जूटा ॥
जिनकी कृपा सकल भ्रम भागे। औगुण त्यागि सुमति में पागे ॥

नित्यअखण्ड अचल अविनाशी । मिले एकरस स्वतः प्रकाशी ॥
सो गुरु कृत्य चुकाव कि होवै । निज हित हेतु दास पद जोवै ॥
तनमनप्रियसुखसकलनिछावरि। आप दास ह्वै आज्ञा शिर धरि ॥
भेष चिन्ह ले आज्ञा माँगै । जीवन जन्म सुफल पद पागै ॥
लगन मगन उत्साह विशेषी । पुण्य पुंज पायउँ सो अलेखी ॥
कपट चतुरता सकुच नशाई । कर गुरु भक्ति जु चाह भलाई ॥

दो०—बिन मर्यादा भक्ति नहिं, भक्ति बिना नहिं ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहि शांति पद, शांति बिना दुख थान ॥
गृहि विरक्त नर नारिकोउ, बाल प्रौढ़ या वृद्ध ।
दया चिन्ह ले कण्ठमणि, गुरू ऐन ते सिद्ध ॥
बुरे कर्म से भागि के, गुरुपद में अनुराग ।
निज स्वरूप में जागई, वहै भक्त बड़ भाग ॥

❀ हृदय उत्कंठा भजन ❀

सखि ! संत पधारे उर आनन्द भयोरी ।
मंगल करण हरण दुख दारुण, भाग्य से दर्श दियो री ॥टेक॥
ज्ञान नयन बिनअंधदुखित रह्यों, बोध को नैन खुलोरी ।
कौहट हानि लाभ जग सपना ,सोगुरुदेव जगाय दियोरी ॥
शील क्षमा गहि नीति धरम से, देह निर्बाह कह्योरी ।
जग प्रपंच से सुरति हटी मम, विमल विवेक लियोरी ॥
भाव भक्तिनित सींचिअमरफल, सहजै थीर जियोरी ।
सादर धोय चरण जल सुख धरि, कोटिन तीर्थ कियोरी ॥

मन सम्भव दारुण दुख बीते , आठो याम जुड़ाय रह्योरी ।
प्रेमदास गुरु परख नेह नव , नर तन सुफल कियोरी ॥

* सेवाधर्म गजल *

जो गुरु प्रेम को नित निभाते रहैंगे ,
वो भवसिंधु से पार पाते रहैंगे ॥टेक०॥
यथा सूम धन धेनु सुत में लगन हो ,
तथा ही जो परमार्थ ध्याते रहैंगे ॥ १ ॥
हो सेवक सदा सेवकाई किये ते ,
जो पालन करै भाव भाते रहैंगे ॥ १ ॥
सुधामृत कथा सुनि के गुनि के बिचारै ,
वो कोटिन बिघनको हटाते रहैंगे ॥ ३ ॥
गुरु की कृपा से अजर औ अमर पद ,
लहै प्रेम सो पर्ख पाते रहैंगे ॥ ४ ॥

दो०–यहि विधि गुरु के शरण ह्वै , तन मन धन करि अर्प्प ।
निज कल्याण सो करहु जिव , गुरुवा जाल कु हर्प्प ॥
एक प्रेम कामी करै , एक प्रेम करै मोष ।
प्रेम उभय विधि जानिये , जग गुरु बन्ध रु मोष ॥

सो०–सो मैं कह्यों बखानि , गुरु गुरुवा का हाल सब ।
सो तू निश्चय आनि , और भर्म हो पूछहु ॥

दो०–इमि गुरु गुरुवा भेद सुनि , हर्षित सब जिज्ञास ।
भानु उदय जिमि कमल बन , बिकसे पाय प्रकाश ॥

सोइ स्वारथ शुचि मार्ग भल, सोइ परमारथ श्रेष्ठ।
संग क्रिया विद्यादि सोई, मिले गुरु परख बरेष्ठ॥
गुरु पारख स्थिति बिना, ब्रह्म बने चहे शीव।
इत उत कन्दुक रहट इव, संसृत बीज सदीव॥

दो०—सृजति विधी पालत हरी, नाशत हर त्रय गुन्य।
ब्रह्म मूल प्रेरक अखिल, सो विराट मय धुन्य॥

ओत प्रोत सब अग जग रूपा। जगत ब्रह्म सम्भव भव कूपा॥
यद्यपि कृष्णादिक औतारा। किये चरित गावत संसारा॥
विषयासक्ति कामना रोगू। सोइ २ गाय ध्याय नित शोगू॥
सो सब प्राकृत चरित जु गाये। औषध सोइ जो रोग बढ़ाये॥
सो पारखि गुरु पारख दीन्हें। सकल परीक्षक पद निज चीन्हें॥
पारखि इष्ट छोड़ि को धावै? अमृत तजि विष को गटकावै॥
सुनहु मित्र जेहि मिलै न पानी। मृग जल लखि भरमत सो प्रानी॥
सुधा सिन्धु लहि ठौर परख गुरु। हम तुम उर सो इष्ट भावफुर॥
धर्म नीति बिन राज्य न चलई। बिन विवेक कोउ सुख नहिं लहई॥
बिन सन्मार्ग अभय पद नाहीं। बिन परमारथ दुःख न जाहीं॥
तिमि कुरु परख बिना आधारा। कबहुँ न हो भ्रमसिंधु किनारा॥
पुनः शिष्य बोला कर जोरे। प्रेम पगे बड़ विनय निहोरे॥
शोक शमन हे सदगुरु प्यारे। साधु नीति सब शुभ गुण धारे॥
हम जीवन कहँ देखि बेहाला। परखाये गुरुवन के जाला॥
जो प्रभु पारखि हमें न मिलते। तो हम भटकि २ दव जलते॥
बड़ भागी जो मिलि गयो स्वामी। शरण शरण गुरुदेव नमामी॥

[अथ निर्णय पूर्वक गुरु महिमा प्रारम्भ]

* भुजंगी छंद *

अहैं यान भवनिधि के गुरुदेव प्यारे,
तिन्हीं के चरण रज शिरों में हमारे।
दया बल गुरू के नशैं विघ्न सारे,
धरूँ ध्यान मंगलमई के सदारे ॥ १ ॥
गुरुदेव के नाम से पुज्य सारे,
गुरुदेव वोही जो अज्ञान टारे।
है परकाश वोही जो तम को निवारे,
विना बोध रहनी के गुरुपद कहाँरे ॥ २ ॥
गुणौं धर्म-रक्षक न भक्षक के न्यारे,
तासे प्रथम ही परीक्षा को लारे।
भले शिष्य पीछे से हो मंत्र धारे,
बिना बूझ गुरु के किये भूल हारे ॥ ३ ॥
विशद भेष रचि के दुराचार नाना -
हो धर्मध्वजी दम्भ विद्याभिमाना।
कुतर्की विवादी विषादी विराना,
मनोभास जड़ लक्ष में ही बिलाना ॥ ४ ॥
निजै स्वार्थ में मस्त विषयों को गटकै,
जो ललना में लम्पट अधिक द्वेष धधकै।
बिना ज्ञान निज रूप के नित्य भटकै,
कुटिल घात हिंसा जु कौड़ी में बँध कै ॥ ५ ॥

जिसे बोध चर्चा सुने क्रोध आवै,
उसे धर्म औ भक्ति कैसेक भावै।
नहीं लक्ष सत्संग में रंच जावै,
जो पाखण्ड कर कर अमल भोग लावै॥ ६॥

बने विज्ञ जो अज्ञ से काम ठानी,
चहै भोग पूरण ये पुरुषार्थ मानी।
दिनों रात तृष्णा में पचते नदानी,
क्षणिक देह के भास ही साँच ठानी॥ ७॥

जो कामी व क्रोधी व लोभी व मोही,
जो अज्ञान के वश पशू भोग जोही।
करैं पाप बन के असंगी बटोही,
लिये भेष विद्या के खरभार वोही॥ ८॥

ऐसे गुरूजन से न्यारे हो रहिये,
न तो लाभ बदले में हानी हि लहिये।
बिना ही विचारे नहीं कुछ भि गहिये,
अगुण औ गुणौं भिन्न करना हि चहिये॥ ९॥

हो परमार्थ वादी विवेकी जो ज्ञानी,
जो संतुष्ट हों पुष्ट अनुभव अमानी।
जो निजरूप थिरता के पुरुषार्थ टानी,
रुची जाहि वैराग्य ही में हो सानी॥१०॥

जो शुभ कर्म को नित्य ही राखते हैं,
रहैं शांत निशि दिन व हित भाखते हैं।

कभी साधु नीती को ना नाखते हैं,
जो धीरज सहित बोध गति लाखते हैं ॥११॥
उन्हीं के जो सन्मुख में सिद्धांत आते,
कसर खोट पारख गुरू वो बताते।
सबों के परीक्षक व न्यायक स्वभाते,
रहैं थीर पद में जो साधन दशा ते ॥१२॥
जो चैतन्य जड़ को बिलग करि दिखाते,
कृपा कर जो अधिकारियों को लखाते।
जो समता सजग औ अमद हो रहाते,
दया शील संतोष शम दम सुहाते ॥१३॥
जो निःस्वार्थ जन के सदा हैं हितैषी,
नहीं भार देते न लेते न द्वेषी।
करैं मन स्वभावों को काबू विशेषी,
जो मुक्ती दशा बाद गहते न लेसी ॥१४॥
जो धरमा धरम कृत अकृत को बतावैं,
जो आवागवन कर्म फल को सुभावैं।
नशैं रोग संसृत वो युक्ती लखावैं,
विविधि भाँति साधन से मुक्ती डटावैं ॥१५॥
तजे कामना जग से अतिशय विरागी,
तजे राग औ द्वेष निर्मल अदागी।
जो मुक्ती दशा हंस रहनी में जागी,
निजै ध्येय में लक्ष दृढ़ता से पागी ॥१६॥

विविधि युक्ति निर्णय से निश्चय कराई,
चैतन्य के बाद जड़ भास ताई।
सदैं जीव रक्षा के साधन दृढ़ाई,
कुमारग छुड़ा के सुमारग बताई ॥१७॥

ऐसे गुरू के शरण में जो आवै,
सकल शोक औ मोह सोई भगावै।
अखिल दुःख हेतू जो अज्ञान ढावै,
जगे भाग्य पूरन जो गुरु पर्ख पावै ॥१८॥

लहे मोक्ष इछुक गुरू के शरण में,
तन मन व धन सर्व अर्पे चरण में।
छलौ भेद पर्दा न किंचित भि मन में,
सकल भाँति संतुष्ट गुरु के लगन में ॥१९॥

जो अपना व अपने सकल आश्रई को,
सर्बस्व भेंटें दया के मई को।
निछावर गुरू पद में हंता गई जो,
कर जोरि के शिर झुका रज लई जो ॥२०॥

भरे पूर्ण श्रद्धा से ये वच उचारे,
त्रिविधि भाँति बंदा शरण में तुम्हारे।
प्रभू की जो आज्ञा वही दास धारे,
भिक्षुक को पालो शरण हूँ अधारे ॥२१॥

दया कर के युक्ती जो गुरुजी बखाने,
वही मंत्र रक्षक भले ध्यान आने।

सकल ही सुकृत फल उदय आज माने,
शिर टेकि पद में भरे भक्ति साने ॥२२॥
जो भवधार डूबे को गुरु जी बचाये,
इस दास की आस सकलो पुराये।
मुक्ती के सद्‌पंथ में अब लगाये,
सौभाग्य मेरे जो गुरुदेव पाये ॥२३॥
त्रिविधि भाँति सेवा करै मोद मन से,
जिस विधि से संतुष्ट गुरु साधु जन से।
बनाये रहे शुद्ध बुद्धी लगन से,
करोड़ों विघन पै हटै ना पगन से ॥२४॥
सदा काल या विधि जो आदेश पालै,
गहै भक्ति पूरण निरंतर सँभालै।
सकल त्यागि झंझट जगत के बवालै,
यही मुक्ति समुझै गुरू पंथ चालै ॥२५॥
गुरू से कहो कौन है श्रेष्ठ देवा,
बंधन छुड़ावै बतावै को भेवा ?
मनोवेग के पार सामर्थ केवा,
गुरुदेव सरकार सामर्थ लेवा ॥२६॥
साधू गुरू बिन भला कौन रक्षक,
माता पिता बन्धु दारा जो लक्षक।
सकल मन के धारा में स्वारथ के पक्षक,
सकल भूल वश आप अपनाहि भक्षक ॥२७॥

गुरू के बिना बोध होता नहीं है,
गुरू के बिना भूला खोता कहीं है।
गुरू के बिना जीव रोता सही है,
गुरू के बिना योनि शूलौ लही है ॥२८॥

जड़ और चैतन्य के भेद न्यारे,
गुरू के बिना ज्ञान कैसेक धारे।
गुण धर्म हंसा औ कागा के सारे,
बिना गुरु के अभिमान विष को निवारे ॥२९॥

गुरु के बिना ज्ञान रक्षा हो कैसे,
वहै चाहना वश अनाथों के जैसे।
आदत स्वभावों के मनवेग दव से,
रहै नित्य जलता छुड़ावै को भव से ॥३०॥

इसी से गुरूदेव ही के शरण में,
होवै बचावा जो तारण तरण में।
सदा सत्य संतोष शुभ गुण भरण में,
लहो शीघ्र सद्‌गुरु के पदरज चरण में ॥३१॥

सब के शिरे गुरु परख जो प्रखावै,
गुरू साधु गति मति जु एकी लखावै।
गुरू के शरण भाग्यहत नाहिं आवै,
भला कौन उसको दुख से छुड़ावै ॥३२॥

गुरुदेव सन्मुख में निज भूल कीजै,
कभी भूल अभिमान चंचल न लीजै।
सदा नम्रता युक्ति शिक्षा को पीजै,
जनम लाभ जीवन को पावो तभी जै ॥३३॥

गुरुदेव महिमा को उर बीच धारे,
सबेरे सुबह शाम जबहीं उचारे।
सकल विघ्न बाधा दुखी द्वन्द्व टारे,
सदा क्षेम हो "प्रेम" कल्याण मा रे ॥३४॥

गुरुदेव भक्ती मुझे दीजियेगा,
हमें जानि आश्रित चरण लीजियेगा।
कुसंगति व मन दोष सब छीजियेगा,
भलीभांति रक्षा हमें कीजियेगा ॥३५॥

सो०—क्षमो ढिठाई मोर, अज्ञ अंध बालक समुझि।
हम सब शरणैं तोर, जाल सभी परखाइया ॥
सुनि सुनि जिय हर्षाय, कथा सलोनी सत भरी।
सुनि गुनि संशय जाय, पारखि गुरु के बचन रवि ॥
करि प्रणाम सब कोय, निज २ गृहको सब गये।
चरचा चरचत सोय, खुशी बहुत सब के हिये ॥
सत्य ज्ञान परकाश, तृतिय प्रकाश अब पूर्ण भो।
यम का दारुण त्रास, मिटि जइहै जे उर धरैं ॥

जे मानुष सज्ञान, तिन को कथा सोहाय यह ।
जे हैं निपट अयान, सुनि सुनि ते अनखाइहैं ॥
जेहिगुरु पारखि नहिं मिलै, तिनको उचित है येह ।
दैवी सम्पति संत जे, तिनके शरण सनेह ॥
हिंसा विषयासक्ति तजि, मन को थीर करेय ।
दुक्ख बोझ निज हलुक करि, पुनि सुपास कछु लेय ॥

सत्य ज्ञान प्रकाश व मार्तण्ड का

तृतीय प्रकाश-गुरू गुरुवा प्रसंग समाप्त

* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश
व
ज्ञान मार्तण्ड

❋ चौथा प्रकाश प्रारम्भ ❋

[कर्त्ता विषय निर्णय]

छं०— भवसिन्धु यान जु गुरु कथा, हे मित्र तुम बहु विधि कहे ।
शोक मोह दरिद्र तृष्णा , नाश करि सुख को लहे ॥
यहि माहिं मग्न हो चित लगे, सब मोह भय चिंता ढहे ।
हे मित्र ! पारखदेव की , औरौ कथा सुननौं चहे ॥१॥

दो०— जाहि पाय फिर पतित नहिं, सुनौ कथा सु बहोरि ।
खोई मणि जनु अहि मिले , छोड़ि सकत न कबोरि ॥
काम क्रोध मद लोभ के , विषया रस अवतार ।
ताहि गाय किमि पार हो , डूबि मरे मँझधार ।
शील सत्य समता सहित , शुद्ध भेष शुभसार ।
साधु गुरु के रहनि शुचि , शीघ्र करे भवपार ॥
यदपि प्रगट सिद्धान्त वर , चेतन स्वयं प्रकाश ।
सो तथापि जड़ देह वश , भूलत भटकत भास ॥

सो सब भास छोड़ाय के, देत स्वतः पद थीर।
काल कर्म गुण विषय के, द्रष्टा गुरु गम्भीर॥
सो०—कोउ कोउ जानै याहि, बीजक वित्त लखाय जेहि।
पारख प्रिय भौ ताहि, जीवन लाभ सो पायऊ॥
स्वयं सिद्ध गुरुदेव, मन गति जीवन की लखैं।
तेहि प्रसिद्ध किमि केव, रविहिं प्रकाश कि दीप लै॥
सो तथापि निज स्वार्थ, परम काज जो जीव कर।
बनि जइहैं परमार्थ, गुरुगुण कहि सुनि गुनि गहै॥
पुरुषोत्तम निःशोग, थीर स्वरूप विचार में।
आगे भाविक लोग, भाव पूर्ण स्तुति करत॥

* प्रार्थना *

श्री सद्गुरू के ज्ञान बल से, होय बेड़ा पार है।
कहँ तक कहूँ महिमा गुरू की, जो किये उपकार है॥ टेक॥
जो हम भटकते थे जगत के, मोह माया जाल में।
निज रूप का शुचि बोध दे, गुरु कर दिये दुख क्षार है॥ १॥
हेतु बिन करुणामयी, यहि देखि के भवधार में।
परखाय कर सब जाल को, अस कौन करुणाकार है॥ २॥
सुख चाहता जो आप को तजि, अज्ञ सो अति मन्द है।
सब के परीक्षक को भला तजि, हो कहीं निस्तार है॥ ३॥
नेत्र श्रुति मुख इन्द्रियों के, चाल को उलटाय कर।
प्रभु प्रेम में लवलीन होऊँ, येहि मारग सार है॥ ४॥

दो०—यहि विधि विनय विधान से, विनय किये गुरु पास।
सादर नौमि त्रिबार जन, बैठे ज्ञान कि आश॥
अधिकारी निज देखि के, बोले सन्त प्रबीन।
जो जाके शंका कहो, कर देऊँ मैं क्षीन॥

सुनि के बानी दोउ कर जोरी। बोला एक मुमुक्षु बहोरी॥
हे गुरुदेव! मनसि भव सेतू। कह्यो वचन तव नाहिन हेतू॥
हे गुरु! नाना मत की बानी। सुनि सुनि मेरी बुद्धि भुलानी॥
हिन्दू मुसलमान ईसाई। निज निज सत्य कहैं गोहराई॥
वेद कुरान बाइबल ग्रन्था। ईश्वर कृत कहते निज पन्था॥
निज निज ओरहिं खैंचत सबहीं। आर्य सनातन जैनी अबहीं॥
कोइ ईश्वर कोइ ब्रह्महिं एका। कोइ को भूत प्रेत की टेका॥
मत पंथन की ऐंचातानी। जानि न जाय सत्य सहिदानी॥
नाना पंथ अमित हैं बानी। सत्य कौन कछु जाय न जानी॥

दो०—गुरू बहुत जिज्ञासु इक, केहि की मानूँ बात।
बहुत ग्रन्थ बहु पंथ हैं, सुनि सुनि जिय अकुलात॥
साँच झूँठ निर्णय करो, हे कृपाल! गुरुदेव!
सत्य ज्ञान प्रकाश करि, संशय तम सब छेव॥

गुरु बोले शिष की सुनि बानी। निर्णय सहित गिरा सुखदानी॥
सुनो शिष्य समझन के पहिले। यह निर्णय तू दिल में गहिले॥
मत पंथन को खाईं मानहु। खाईं ओट न वस्तु पिछानहु॥
नर पक्षी मत पिंजरा माहीं। परि के ज्ञान पंख जकड़ाहीं॥
सो तरु सुसँग पाय नहिं जबलों। सत्य ज्ञान नहिं होवत तबलों॥

धन विद्या कुल रूप प्रमादा[१] । त्यागि सुसंग करो अहलादा[२] ॥
सबै योनि मत पंथन माहीं । भ्रमत अमर जिव पक्ष न चाहीं ॥
ताते मत पथ पक्षहि त्यागो । निर्णय सहित झूँठ से भागो ॥
दो०—आगे पीछे सत्य के, दोऊ कल्पना आहि ।
दो-दो आठ या एक कहि, झूँठि दोऊ लखि ताहि ॥
दो-दो चार जो बाल कह, तो साँची कर जान ।
दो-दो आठ जो वृद्ध कह, तो मत मान प्रमान ॥
अपने पर का पक्षै छोड़ो । देखा देखी आँखि न फोड़ो ॥
पैसे की हंडी जब लेवो । ठोंकि बजाय दाम तब देवो ॥
बहुत दाम का हीरा भाई । क्यों न परीक्षा कर के लाई ॥
घन प्रहार करि साँचे हीरा । फूटि जाय तौ काँचे खीरा ॥
तैसे जो काटे कटि जावै । सो सिद्धांत ठीक नहिं भावै ॥
जिसके आगे सब कटि जावै । काटि छाँटि के आपु रहावै ॥
सो सिद्धांत ठीक है भाई । जासे सब की पारख पाई ॥
वेद शास्त्र पौराण कुराना । पक्ष त्यागि निर्णय तब जाना ॥
ताते बन्धु ! मोह तुम त्यागो । निर्णय सहित झूँठ से भागो ॥

❋ शिष्य की प्रसन्नता रूप स्तुति ❋

सो०—हे गुरु दीनदयाल, पक्ष रहित तव बचन सुनि ।
कटै सकल भ्रम जाल, यह निश्चय मो उर भयो ॥
अब सब का सिद्धांत, कर के दया प्रखानहु ।
जासे छूटै भ्रांत, पक्ष त्यागि अब मैं सुनूँ ॥

टि०—१-हंकार । २-प्रसन्नता पूर्वक ।

* गुरु उत्तर—छन्द *

गुरु बचन बोल, अति रसाल खोल।
जन मनै लीन्ह, कह निर्णय सुचीन्ह ॥

* चौपाई *

यदपि पंथ अनमिल बहु भाँती। तदपि त्रिविधितेहि मूल सो जाती
ईश ब्रह्म अरु जड़ तम बादी। तीनि मूल सब शास्त्र लखादी ॥
जड़ सन्मुख में पड़त सदा ही। सुख मानै जड़ बादी ताही ॥
मोम प्रमाद करत बहु पापा। यहि ते ताहि कनिष्ठ सो थापा ॥
देह भोग सच मानि अनेरे। भोगत दुसह दुःख जब घेरे ॥
तब कर्त्ता कोउ ले अवलम्बा। खोजत रहत विपुल जन अम्बा ॥
कार्य वस्तु की उत्पति देखै। तेहि ते कर्त्ता रचत विशेखै ॥
तेहि भय से शुभ कर्म ठने का। तेहि ते उत्तम पक्ष गने का ॥
ईश्वर हूँ जब बाह्य न मिलई। तब अंतर में ढूँढ़न परई ॥
ढूँढ़त ढूँढ़त आतम ज्ञाना। सोहँ ब्रह्म वेद विधि जाना ॥
जल तरंग कंचन आभूषण। कारण ब्रह्म कार्य जग दूषण ॥
दो०—तत् वह ईश्वर शक्ति इक, त्वं तू जीव जो भूल।
असि है आतम एक सो, तत्त्वमसी विधि रूल ॥
तमो रूप जड़वाद है, रज सत ईश्वर ब्रह्म।
तामस पद को छोड़ि कै, चहै गहै जो धर्म ॥
यदपि रहट माला इव, घूमत तीनों चक्र।
तदपि मनोमय जगत में, श्रेष्ठ ईश पद शक्र ॥

* शिष्य प्रश्न *

दो०—जड़ सबंध दुख रूप है, चंचल सदा देखात।
विषयासक्ति अनर्थ पद, तजे ताहि कुशलात॥
सो०—तदपि एक मोहिं शूल, ईश ब्रह्म तम पार है।
सो कत रहट सो भूल, प्रभु कि मोहिं भटकावहू॥
दो०—गो मन पार सु प्रेरक, सकल सृष्टि आधार।
श्री मुख उत्तम पद कह्यो, कैसे करिय विचार॥

* गुरु उत्तर *

हे सात्त्विक उर माहिं विचारो। जग प्रपंच को कवन अधारो॥
दुक्ख मूल जग केहि ते होवै। पुनि पुनि केहि में जात समोवै॥
बेर बेर अवतार को लेवै। जगत भार को शिर पर सेवै॥
ईश ब्रह्म सो भव भौ मूला। कहत सकल जन श्रुति अनुकूला॥
वपु विहीन सोइ इच्छा करई। लिप्त अलिप्त दोऊ विधि रहई॥
एकोऽहं बहुस्यामि को होवै। सूर्यबर्ण सो तम किमि वोवै॥
जगत ब्रह्म ईश्वर त्रय धारा। संसृत चक्र सो देखु विचारा॥
दो०—गो मन पार सु प्रेरक, सो तो जीवै आप।
आपै ईश्वर मानिये, तो परोक्ष भ्रम थाप॥
जीव पृथक निर्जीव है, गो गोचर दर्शात।
द्रष्टा दृश्य से भिन्न पद, तीसर का भौ वात॥
प्रत्यक्ष देह जड़ भोग तम, द्वै असूक्ष उन्माद।
बनि अलिप्त विज्ञानिहूँ, पूरण भरे विषाद॥

कोइ कर्त्ता को मानि के, करत रहत शुभ कर्म।
तेहि ते उत्तम कछु कह्यों, जग जीवन हित मर्म ॥
मोक्षार्थी जे धार्मिक, समय परे तेहि बोध।
प्रकृति पार कुछ जानि के, उत्तम करहिं ते शोध ॥
सो०—जाकी इच्छा होय, सो ईश्वर पद मानि के।
त्रिविधि सुकृत करि सोय, जग सुख लेवै विविधि विधि ॥

* शिष्य प्रश्न *

दो०—क्षणिक जगत सुख स्वप्नवत, शोक व्यथा को मूल।
तेहि ते रहित सो थीर पद, कहहु हरण त्रय शूल ॥

* गुरु उत्तर *

सो०—बिन परखे रूब जाल, कबहुँ न मिलिहै थीर पद।
भूलि स्वतः पद शाल, भूल मिटै खुद थीर हो ॥
दो०—अयन देह बस[1] रामहरि, षड* ऐश्वर्य जु देख।
सो सब जीवन में घटित, सोइ पद आहि विशेख ॥
सो विशेष पद बोध बिन, भई दशा मृग केरि।
बिन गुरु पारख के मिले, भटकत तपत अहेरि[2] ॥
कह्यो बशिष्ठादिक मुनी, स्वसंवेद्य[3] जो आत्म।
ताहि परे दैवादि भ्रम, भासत सकल अनात्म ॥
सो तथापि पुनि सर्वमय, अग जग सहज सरूप।
बनि अलिप्त भोगत विषय, घूमि परे तम कूप ॥
अष्टावक्र रु देवदत्त, व्यासादिक के बोध।

टि०-१-देहरूप घर में रह कर के। २-अनायास (व्यर्थ)। ३-स्वयं जानने वाला। *श्री, बिराग, यश, ज्ञान, बल, प्रभुता।

ब्रह्म होत कइ बार बपु, स्वर्ग से च्युत[१] कइ रोधर[२] ॥

साखी—कृष्ण समीपी पाण्डवा, गले हिवारे जाय।
लोहा को पारस मिले, तो काहे को काई खाय ॥बी०
यहि विधि देखहु शोधिके, उलटि पलटि वहि चक्र।
ईश ब्रह्म जड़ सृष्टि महँ, आवत जात ज्यों मक्र॥

छं०—हे शिष्य अब निर्णय सुनो, मिटि जाय ऐंचातान हो।
सब जने मिलि एक कर्त्ता, थापिया भगवान हो॥
वेदों कुराँ इंजील को, ईश्वर कि बाणी मानते।
इस धोख को परखावहँ, निर्पक्ष सुन ले ज्ञान ते॥

ईश्वर एक महा बलवाना। दयावान औ बुद्धि निधाना॥
धर्मवान औ न्याई सुनिये। व्यापक सर्व जीव में गुनिये॥
उत्पति पाल सँघारहिं करई। मोक्ष हेतु वेदादिक रचई॥
ऐसा ईश्वर प्रति सब कहई। पै शंका यामें बहु अहई॥
व्यापक सब घट ईश खुदा है। वेद कुराँ क्यों कहै जुदा है॥
सूरज जब घर ही के अन्दर। दीप दिखावे सो मतिमंदर॥
रवि रूपी ईश्वर जब घट में। तब क्यों वेद बनावत जगमें॥
ईश खुदा की जो हैं अडरें। मानुष क्यों मेटत हैं निडरें॥

दो०—चोरी हिंसा छल कपट, बहु अनीति जग होय।
घट घट में ईश्वर अहै, क्यों नहिं रोकत सोय॥

करत कर्म जिव अपने मन का। सर्वशक्ति ईश्वर केहि दिनका॥
ईश ब्रह्म औ जग का कर्त्ता। देखा कौन कहाँ को भर्त्ता॥

टि०—१-पतित। २-रुकना।

निज निज शक्ति दिखै है सबकी । जड़ चेतन राजा परजन की ॥
सब के ऊपर है बलान्ता । क्यों नहिं प्रगट होतभगवन्ता॥
राजा को परजा नहिं माने । निज निज मनके सबहीं ठाने॥
कैसे राजा कहिये ताको । जोर जुल्म जबकछु नहिजाको॥
ऐन बनावत जो वह राजा । रक्षा करत न कहवाँ भाजा ॥
जगत पंथ मत न्याय चुकावे । सर्बशक्ति ईश्वर दर्शावे ॥
मुक्ति हेतु जो ग्रन्थ बनाई । तहँ भर्म नहिं ईश मिटाई ॥
वेदहु की टीका बहु भाँती । करत रहत बहु मानव जाती ॥
बाल गेंद वत निज निज ओरा । खैंचत जहाँ तहाँ बरजोरा ॥
षट नौ चौदह चारि अठारा । खैंचा खैंची वार न पारा ॥

दो०—चार वेद षट शास्त्र के, भिन्न भिन्न सिद्धांत ।
त्रिविधि खैंच में जिव परे, कैसे छूटे भ्रांत ॥

तत्त्वमसि[१] कह साम सु वेदा । ऋगु प्रज्ञानं[२] ब्रह्म अछेदा ॥
यजुर्वेद ब्रह्मास्मि[३] सु कहता । अथर्वण अयं आत्मा[४] लहता ॥

दो०—ऋग यजु साम अथर्व की, भिन्न भिन्न[५] महा भाष्य ।
निज २ मति अनुकूल करि, नर कलपत हैं खास्य ॥

व्यासदेव वेदांत शास्त्र रच कर, तिसमें अद्वै ब्रह्म कहा ।
कपिल सांख्य शास्त्र रच कर, प्रकृति पुरुष दो बस्तु लहा ॥

टि०—१-वह ब्रह्म तू ही है। २-जीव परमात्मा से जुदा नहीं। ३-मैं ब्रह्म हूं। ४-यह जीव आत्मा ही ब्रह्म है। ५-रावण असुर, महीधर, आत्माराम जैन, शंकराचार्य, दयानन्द आदि भिन्न भिन्न वेदों का सटीक भाष्य कर कर के एक एक को झूठा ठहराये हैं।

गौतम न्याय शास्त्र रच कर, नौद्रव्य[१] ईश्वर सही किया।
पातंजलि योग शास्त्र रच कर, अष्ट[२] योग में काट लिया॥
कणाद ने वैशेषिक रच कर, कालसमय सत सिद्ध किया।
जैमिनि ऋषि मिमांसा रच कर, षट द्रव्य कर्म को सही किया॥
वेद शास्त्र बहु सिद्धांतों में, जीव कुशल कहो किमि पाये।
प्रेमदास सद्गुरु शरणागत, जाल परखि निज पद पाये॥
दो०—जिते ग्रन्थ मत पंथ हैं, मानुष कृत सो जान।
ईश ब्रह्म परमात्मा, जीवै कल्पत मान॥

* सवैया *

ईश्वर में अतिशक्ति रही तब, काहे छिप्यो पुनि क्यों भय मानी।
अपने अपने मन कर्म करैं सब, कैसे रही उसकी शक्तिमानी॥
है मत पंथ विरोध ठनै बहु, कौन है लाभ नहीं जो मिटानी।
देखो विचारि के काहे कहोपुनि, ठूँठ में चोर जो भूलि के ठानी॥
मोहूँ में ईश है तोहूँ में ईश है, ईशहिं ईश करे क्यों विवादा।
चोरों में ईश है साहों में ईश है, सब घट ईश तो पापी है ज्यादा॥
कसाय में ईश है गायमें ईश है, ईशहिं ईश निकारत लादा।
ईश भरा तब जीव कहाँ रहे, एक में जीव करे क्यों प्रमासा॥
दो०—भ्रू विलास उत्पति प्रलय, करि न सकत निजन्याय।
सर्वसक्ति रहते हुये, मनुज वकील कराय॥
ताते कल्पित कर्त्ता मानो। क्यों झूठे हित बादे टानो।

टि०—१-पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन ये नौद्रव्य हैं। २-लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लंबिका, राजयोग, हठयोग, कुण्डलीयोग ये अष्ट योग हैं।

सब का जाननहार सु अपना । नहिं मानो तुम दूसर सपना ॥

दो०-ईश ब्रह्म औ देवता , सबै कहत सुख भौन ।
उलटि न देखत शिष्य हो , कहनहार है कौन ॥

सो०-कहनहार है जीव , जीव परे कोइ पीव नहिं ।
निज कल्पित है शीव , निर्जिव से नहिं कल्पना ॥

छं०-जिसका उठा है द्वन्द चहुँदिशि , सो तो बंध्या पूत है ।
जिसका कहीं परत्यक्ष नहिं , तो क्या कहो साबूत है ॥
हिन्दू मुसलमाँ पंथ ये सब , जीव से मजबूत है ।
हे शिष्य भ्रम फन्दा परख , तब सर्व का तू भूप है ॥

* शिष्य प्रश्न—छन्द *

आप का उपदेश समझ्यों , हे गुरो भल भाँति से ।
शक्ति ईश्वर की नहीं , दिखती कहीं इस न्याय से ॥
पै हमें शंका बड़ी , कहता सही कर जोरि के ।
कर के कृपा समुझाइये , शरणों में लेव बहोरि के ॥

जो यह जग का कर्ता नाहीं । तो पुनि जग को कौन रचाहीं ॥
बिन कुम्हार पृथ्वी घट नाहीं । तैसे कर्ता प्रकृति जनाहीं ॥
लघु वस्तुन की उत्पति देखौं । ताते कर्त्ता जग का लेखौं ॥
याते जग का कर्त्ता कोई । कहो कृपा करि गुरुवर सोई ॥

* गुरु उत्तर *

दो०-मोह त्यागि निर्णय करो , सुनो शिष्य मतिमान ।
बहु बानी तोहि शूल सम , निर्णय बिना सुजान ॥

जिस में से बस्तू बनै, कारण कहते ताहि।
रचनहार कर्त्ता अहै, बनै सो कारज आहि॥
कारण पृथ्वी बड़ी दिखाई। कारज से कारण बड़ भाई।
देह सहित कर्त्ता कुम्भारहुँ। चाक दण्ड दिखता औजारहुँ॥
कर्त्ता कारण पहिले झाना। तब कारज का प्रगट बखाना।
तैसे यह जग कारज भाई। याका कारण कहाँ दिखाई॥
कारण बड़ा सो कहवाँ छिपिया। कर्त्ता ईश्वर भी नहिं दिखिया॥

* सवैया *

ईश्वर ने जब सृष्टी रची तब, कौन कहाँ केहि ठौर से देखा।
देखे बिना अब कौन प्रमाण है, बाँझ क पूत सुना नहि पेखा॥
ये जग कारज देखि परै तब, कारण मालिक क्यों न परेखा।
कारण मालिक दीखत है नहिं, कौन विधी जग उत्पति लेखा॥
ताते जग की उत्पति नाहीं। देखु बिचार सुहृद मन माँहीं॥
जो यह जग पहिले नहिं होता। तो पुनि कौन कहाँ से आता॥
तत्त्व समूह को कारण जानो। कर्त्ता सोई जीव पिछानो॥
कारण तत्त्व कर्त्ता है जीवा। घट पट कार्य अनेक बनीवा॥
कर्त्ता कारण स्वतः अनादी। कारज द्विविधि प्रवाह सुसादी॥
कर्त्ता कारण कार्यहिं देखो। और न ईश्वर अनुमति पेखो॥
दो०—बिन प्रत्यक्ष अनुमान नहिं, यथा कुम्हार घट देख।
तो अकेल घट देख कर, कुम्भकार मन लेख॥
जग रचते ईश्वर किन देखा। बिन देखे सो केहि विधि लेखा॥
ताते जग कर्त्ता अनुमाना। रज्जु सर्प वत मिथ्या जाना॥

जो हठ कर के कर्त्ता मानो । बिना बनाये कछु नहिं जानो ॥
तो कर्त्ता का कर्त्ता कहिये । पुनि कारण का कारण चहिये ॥
कारण का कारण कर्त्ता कर्त्ता । उभय प्रकार कहो केहि भर्ता ॥
जो रुब जग को कारज मानो । तो दृष्टान्त कहाँ से आनो ॥
बिन दृष्टांत अनुमान न वृद्धी । ईश्वर की किमि होवै सिद्धी ॥
हरि१ उपमेय उपमा मंजारी२ । दोनो प्रथम प्रत्यक्षहिं धारी ॥
तैसे उपमा पोल है भाई । कहाँ ईश उपमेय दिखाई ॥
उपमा उपमेय एक में भाई । कौन कहाँ केहि विधि बतलाई ॥

दो०—उपमा उपमेय प्रत्यक्ष जग, तेहि तजि बंध्या पूत ।
पोल माँहि अबपोल किमि, बंध्यासुत में सूत ॥
जगत मूल प्रकृति कहै, प्रकृति त्रिगुण को रूप ।
गुण से गुणी न होवई, रूप से अग्नि न भूप ॥

गुण ते द्रव्य कहत अज्ञानी । त्रिगुण गुणौं कृत गुणी बखानी ॥
ईश्वर सर्ब जगे रे भाई । तो पुनि जग केहि ठौर रचाई ॥
ईश्वर व्यापक है सब ठाहीं । मुर्दा सड़ि के क्यो गंधाहीं ॥
जो कहु जीव निकर गौ भाई । तो व्यापक ईश्वर न रहाई ॥
ईश्वर के जब रूप न रेखा । बंध्या सुवन भयो तब लेखा ॥
ईश्वर के जब इन्द्री नाहीं । इन्द्री बिन किमि जगत रचाहीं ॥
जो बिन इन्द्री कामहिं करता । तो पुनि बोलत क्या वो डरता ॥

दो०—पग बिन चल सुन कान बिन, बिन मुँह बोलत बाय ।
लुकलुकवा शिशु सम छिपा, बोलि देत क्यों नाय ॥

टि—१-सिंह । २-बिलारि ।

इन्द्री बिन बिषयों का ज्ञाना। क्या प्रमाण है कहहु सुजाना॥
ईश्वर न्याई घट में बैठा। बड़ा अचम्भा जिव क्यों ऐंठा॥
ईश्वर शक्तिमान जब भाई। क्यों नहिं अपना अदलदिखाई॥
दो०—एक अदल कानून जो, चला न सकता ईश।
तो कैसे जग रचि सकै, करहु बिचार मुनीश॥
छं०—शक्तिमान व्यापक अरूप, सिद्ध होवै न ईश भूप।
अब सकार ईश का हवाल, निर्पक्ष हो सुनि लेतु बाल॥
ईश्वर के जब रूप है रेखा। तो पुनि कौन कहाँ पर देखा॥
आसमान पर ईश्वर भाई। ध्रुव प्रहलाद मिला है गाई॥
गणिका अजामील गजराजा। तारि दिया ईश्वर महराजा॥
औरहु भक्त अनेकन तारा। जग में ले ले करि अवतारा॥
व्यापक बिश्व रूप जो माना। क्यों औतारै कीन्ह बखाना॥
पोल समेटि मूठि के माहीं। केहिविधिलायसकतकोइताहीं॥
दो०—व्यापक का औतार नहिं, अवतार जु व्यापक नाहिं।
निज कंधे चढ़ि नाच किमि, बड़ा अचम्भा आहिं॥
तो पुनि व्यापक ईश्वर खण्डन। यकदेशी ईश्वर है मण्डन॥
यकदेशी ईश्वर कहँ बैठा। काँट बोय क्यों दुख में पैठा॥
यामें ईश्वर का क्या हेतू। जो नहिं दुष्ट बनाव सचेतू॥
प्रेरत दुष्ट कर्म नहिं भाई। प्रेरक* ईश्वर शास्त्र बताई॥
रावणादि को पाप न प्रेरत। तो महि दुखितन कबहुँ टेरत॥
तो औतार न लेने पड़ता। जन्ममरणदुखसुखनहिंसहता॥

टि०—*नट मर्कट इव सबहिं नचावत। राम खगेश वेद अस गावत॥

पहिले काँटा बोय गड़ावे। पुनः निकालन को वह धावे ॥
यह तो बालक लीला भाई। खेल बनाय बिगाड़त जाई ॥
नहिं रचिवर्ण ईश कर कामा। ईश अनीह१तोकेहिविधितामा॥
माया नटी को क्यों वह पालै। जो जीवन को करत बेहालै ॥

दो०—प्रथमै बन्धन जगत रचि, मुक्ति हेत फिर वेद।
रोग बनाय औषध करै, सुनि सुनि आवै खेद२ ॥
दस औतार जगत विच, केहि विधि जगत रचाय।
पुत्र पिता नहिं होय जिमि, कहत न लाज समाय ॥

जो जग रचि पीछे औतारा। तो यामें क्या हेतु बिचारा ॥
जो कहु लीला करत गोसाईं। तो क्या ईश है नटकी नाईं ॥
ईश अनीह सच्चिदानन्दा। तो काहे रचता यह फन्दा ॥
पहिले ईश्वर दर्शन देता। दीन जीव को तारन हेता ॥
तो ईश्वर अब कहवाँ गयऊ। टेरत३ जीव कृपा नहिं कयऊ ॥
वह गोपाल कहाँ पर सोता। देखत नहिं गोवध जो होता ॥
अनमिल पन्थ विविधि अनरीती। भ्रू बिलास करिक्यों नहटीती ॥
दीनबंधु बहिरा ह्वै गयऊ। दीन हीन टेरत नहिं अयऊ ॥
आपन बालक जो अघकर्मी। तो कहँ पिता छिपत नहिंमर्मी ॥
शुन्य माहिं यक वृक्षा लागा। बंध्या सुत सेवत अनुरागा ॥
मृगजल से सींचन तेहि लागा। लाग्यो फल खायो अनुरागा ॥
जैसे यह सब बातैं झूठी। तैसे ईश्वर ब्रह्म कलूटी४ ॥
विविध कल्पना मानुष करता। जाके मन में जैसा परता ॥

टि०—१—इच्छा रहित। २—चिंता। ३—पुकार करते। ४—कल्पना।

दो०—भू अग्नी जल बायु है, औ अकाश[१] इज पाँच।
　　छट्ठा चेतन जीव है, अनादि काल से साँच॥
　　पाँच तत्त्व अरु जीव का, कोइ नहिं सिरजनहार।
　　यह तो सदा अनादि से, दिल में करहु बिचार॥
सो०—हे शिष्य देखु बिचार, जग की उत्पति नाश नहिं।
　　जड़ चेतन है सार, सो तो प्रत्यक्ष अनादि हैं॥

* सवैया *

ईश है ब्रह्म है देव है भूत है, औरहुँ एक अनेक कहैं सब।
कोइ कि शक्ति दिखै नहिं रंचक, राग रु द्वेष विवाद ठनै जब॥
एकहि राज में नाना जु कानून, क्यों फिर जीव पै ईश कहै तब।
याहि ते जानि परै सब कल्पित, जीवै सत्य सो प्रेम कहै अब॥ १॥
अज्ञान निशा महँ सोय रहे जिव, ताहि में देखत हैं भर्म सापन।
ईश है ब्रह्म है देव है भूत है, औरहु एक अनेक को थापन॥
ज्यों रजु साँप रु ठूँट में चोर है, त्यों भ्रमि मालिक थापत आपन।
पूरब सुकृत भाग्य उदै जब, पारखि संग अज्ञान को नाशन॥ २॥
छं०—ईश ब्रह्म, सर्व भर्म। मान मीत, मोह जीत॥
　　जग अनादि, कार्य बाद। सत्य देख, रूप पेख॥

* शिष्य प्रश्न-गीतक छन्द *

हे कृपालो तव कृपा से पाइया यह थाह हो।
ये जग स्वतः अनादि है उत्पन्न कर्त्ता नाहिं हो॥

टि०-१-आकाश व शुन्य अवस्तु की जगह पर सामान्य बायु जानना चाहिये।

पै और शंका है हमें कहत दोऊ कर जोरि हो।
हम बाल के औगुण क्षमो समुझाय देव बहोरि हो॥
पृथ्वी चन्द्र सूर्य किन धारे। कैसे रुके रहैं सब तारे॥
पृथ्वी डोलै पानी बर्षै। बिजुली चमकै घन उत्कर्षै॥
चन्द्र ग्रहण औ सूरज ग्रहणूँ। रात दिवस त्रय कालहि वरणूँ॥
और अनेक अचम्भा देखूँ। ताते कर्त्ता जिय में लेखूँ॥
दो०—भ्रम सागर में डूबते, पार लगावो मोहिं।
तुम सम और न दूसरो, शीश झुकावों तोहिं॥

❋ गुरु उत्तर ❋

सुनहु शिष्य अब ध्यान लगा के। वानी का सब मोह हटा के॥
ह्वै निर्पक्ष परखहु सब बाता। तबहीं होय जीव कुशलाता॥
जहँ लग वस्तु जगत में भाई। धर्म शक्ति गुण रूप रहाई॥
मीठा में मीठा गुण देखो। नमक माहिं न चीनहिं पेखो॥
जो ईश्वर गुण मीठा मानो। नमक माहि ईश्वर गुण भानो॥
तो पुनि मीठा नमक न कहिये। ईश्वर नाम सर्व को चहिये॥
शक्ति ईश्वरी वस्तुन माहीं। वस्तु नहीं गुनिये मन ताहीं॥
तब ईश्वर है किसका कर्त्ता। आपन शक्ति आप में भर्त्ता॥
दो०—जड़ चेतन में शक्ति नहिं, यह कर्त्ता की होय।
जड़ चेतन तब वस्तु नहिं, कर्त्ता काको जोय॥
याते परखि देखु रे भाई। स्वयं शक्ति वस्तुन में पाई॥
जड़ चेतन जब वस्तुहिं देखो। तेहि महँ शक्ति धर्म गुण लेखो॥
भू अग्नी जल वायु गुनी है। प्रबल शक्ति तिन माहि सुनी है॥

भू जल को स्थूल अकारा। वायु अग्नि सुक्षम साकारा॥
दो०—भू अग्नी जल बायु में, गुरुत्वाकर्षण[१] शक्ति।
निज निज शक्ती से रुके, बिचार देखु यह जग्त॥
शेषनाग जो रोका कहिये। तो वाको कोउ रोका चहिये॥
औरहुँ गज बराह कोउ बैला। ये सब अबुधन के हैं गैला॥
ईश्वर के जब रूप न रेखा। तो केहि विधि वह रोकत पेखा॥
थून्हीं को जिमि रूप न होवै। केहि विधि छप्पर रोक सकोवै॥
सूक्षम बायू सम नहिं व्यापक। व्यापक पूर्ण गगन से थापक॥
बन्ध्यासुत केहि रोकि सकाई। करि विचार देखहु मन भाई॥
याही ते कारण निरधारा। कारज है कारण आधारा॥
शक्तिधारणा पृथ्वी माहीं। धँसै न देत ठहर ठहराहीं॥
शक्ति रसायन दूजी कहिये। सो विशेषता जल की लहिये॥
बेली पेड़ तृणादि पसारा। औरौ वस्तु अनेक प्रकारा॥
जहँ लग वस्तु जगत के माहीं। रसाय शक्ति से बँधी दिखाहीं॥
स्नेहाकर्षण शक्ती देखो। तत्वन परमाणुन में पेखो॥
स्नेह बिना परमाणू न्यारे। विविधि वस्तु बनती नहिं प्यारे॥
दो० चार शक्ति ये तत्व में, विविधि वस्तु बनि जायँ।
बिन परखे संशय रहै, परखे संशय नायँ॥
अग्नि वायु की शक्ती द्वारे। ऊपर को जल चढ़ता प्यारे॥
सूर्य चन्द्र बायू आकर्षण। ऊपर बादल बनता पुनि क्षण॥

टि०—१-अपनी अपनी शक्ति से एक दूसरे की खैंच, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्यादि गुरुत्वाकर्षण से ठहरे हैं।

कठिन रूप में धक्का खाये। घर्षण ह्वै बिजुली चमकाये ॥
ईश्वर घट भरि छोड़त नाहीं। जड़ भी हुकुम बजावत नाहीं ॥
परमाणुन घट बढ़ से भाई। वस्तु बनै अरु बिगड़त जाई ॥
स्वतः क्रिया से ह्वै संयोगा। कोइ बलवान तो होय वियोगा ॥

दो०—क्षिति क्रिया खड़े चाकवत, अधो क्रिया जल जान।
उर्ध गमन अग्नी क्रिया, तिरछी वायु पिछान ॥

कबहुँक गरमी अधिकै होवै। कबहुँक सरदी अधिक संजोवै ॥
कबहुँक वायु प्रबल ह्वै जाई। कबहुँक मन्द मन्द गति भाई ॥
कबहुँ भुकम्पहिं वायू द्वारे। कबहुँक जल विशेषता प्यारे ॥
जहँ लग कार्य जगत में देखो। सो सब तत्त्वन शक्तिहिं पेखो ॥
सब में नेम अनेम न कोई। परमाणुन घट बढ़ से होई ॥
चन्द्र ग्रहण औ सूरज ग्रहणू। ये भी तत्त्वन का आवरणू ॥
पृथ्वी माहिं क्रिया रे भाई। जेहि ते रात दिवस ह्वै जाई ॥
चन्दा माहिं क्रिया दिखलाहीं। सूर्यहु भ्रमत रहत इक ठाहीं ॥
नियमित प्रकृति क्रिया आवरणू। इक इक ढाँकि ओट सोइ ग्रहणू ॥
यथा कइव गुब्बार उड़ावै। इक इक ओट एक ह्वै जावै ॥
नहिं कहुँ राहु नहीं कहुँ केतू। ये तो गुरुवों का भ्रम सेतू ॥
पुनि भुगोल के ग्रन्थन माहीं। ग्रहण भेद विस्तारित आहीं ॥
जो इच्छा तो देखहु भाई। नहीं ईश कुछ कर्त्ता आई ॥
जेते काम विराट में होवैं। भूतन क्रिया शक्ति से जोवैं ॥
तत्त्वन शक्ति सबै कछु भाई। ज्ञान नहीं ताते जड़ताई ॥
कारण शक्ति अनादी देखो। कारज शक्ति आदि है पेखो ॥

दो०—द्वै प्रकार की सृष्टि है, सुनुहु शिष्य मतिमान।
तत्त्व शक्ति है तत्त्व की, दूजो जीव पिछान॥
कार्य जिते जिव के आधीना। ताका कर्त्ता जीव प्रवीना॥
देह गेह दुख सुख घट आदी। तिसका कर्त्ता जीव दिखादी॥
ज्ञान सबन्धित कारज जितने। जीव शक्ति से जानहु तितने॥
नहिं कोइ कर्त्ता दूसर प्यारे। करि विचार देखहु मन मारे॥
दो०—शक्ति विना नहिं वस्तु कछु, शक्ती हीन अवस्तु।
जड़ चेतन गुण धर्म युत, कर्त्ता शक्तिन अस्तु॥

छं०-दृष्टांत सुन, मन माहिं गुन।
नहिं भूल तुम, सच मान तुम॥

* चौपाई *

अपने हिय में जो नहिं आवै। ताको अबुध खुदाई गावै॥
गुरुवन ने जो मालिक थापा। लाल बुझक्कर सम है आपा॥
भोंदू गाँव बुझक्कर ज्ञानी। तिनकी ऐसी है सहिदानी॥
गाँव निकट कोल्हू बहि आवा। अबुधन मनतेहिसमझ न पावा॥
तिनमें लाल बुझक्कर राजा। बात बनावन में शिरताजा॥
कोल्हू देखि के सुरमादानी। अहै खोदाई हमहीं जानी॥
दो०—लाल बुझक्कर बूझि गये, और न बूझे कोय।
सुरमादानि खोदाय की, आसमान से जोय॥
हाथी यक रस्ते से गयऊ। ता पग चिन्ह बना तहँ रहेऊ॥
अबुधन ने समझयो नहिं हाला। ह्वै चक्रित पूछेउ तत्काला॥
अबुधन के गुरु लालबुझक्कर। सुनगुनि बोल्यो जान जनक्कर॥

दो०-लाल बुझक्कर बूझि गये, और न बूझे कोय ।
पावन चक्की बाँधि के, खरगोश न कूदा होय ॥
सुनि कोल्हू को सुरमादानी । बिन विचार मान्यो अज्ञानी ॥
हाथी पग को चक्की जान्यो । भोंदू गुरु शिष सबै अयान्यो ॥
और दृष्टांत अनेक प्रकारा । लालबुझक्कर की संसारा ॥
लालबुझक्कर भरमिक जानो । जगत देखि कर्त्ता अनुमानो ॥
अबुध जीव बहु बानि प्रमादी । जानि न पायो जगत अनादी ॥
दो०-मैं हूँ कौन सु कौन विधि, दुख सुख देता कोय ।
यह बिराट को किन रचा, बहु संशय जिव होय ॥
गुरुवन से तब पूछत भयऊ । बहु अनुमान बतावत गयऊ ॥
भोंदू गाँव न्याय सच जानी । जो कुछ कह्यो सोई सच मानी ॥
कहुँ विकल्प वैकुण्ठ बतावा । शैव कहँ कैलास दृढ़ावा ॥
अरु गोसाइं गोलोक लखाते । श्रीपुर आदि अनेक भ्रमाते ॥
भाँति भाँति पौराणिक कहिया । सुनि बानी अज्ञानी बहिया ॥
शिव शक्ती रवि विष्णु गणेशा । करि करि कल्पित देव थपेशा ॥
सत्यलोक सत्संगति त्यागी । अमित लोक कल्पत भ्रमपागी ॥
अन्त नाहिं तहँ कैसे जावै । कछु विचार दिल नाहिंटिकावै ॥
मुसलमान सप्तम असमाना । मानत खुदा रहत धरि बाना ॥
ईसाई चौथा असमाना । विविधि कल्पना करि२ ठाना ॥
चौदह लोक के ऊपर जैनी । मानत चन्द्रशिला सुखदैनी ॥
दो०-व्यापक ईश्वर आर्य कह, दया न्याइ बलवान ।
साक्षी टुक टुक देखता, जीव सबै हैरान ॥

वेदान्ती यक ब्रह्म अनुमाना । जड़ चेतन एकहिं में साना ॥
इक व्यापक निर्लेपहिं चेतन । दे उपदेश भला केहि हेतन ॥
बिना द्वैत स्वप्ना भ्रम कैसे । यहौ विचार न कर भ्रमि ऐसे ॥
नास्तिक यक तत्त्वहिं सत मानै । द्रष्टा चेतन ताहि न जानै ॥
नेचर गैस प्रकृति जड़ शक्ती । मूल विकाश सृष्टि तहँ जग्ती ॥
रवि से भू बन्दर के मानुष । करि अनुमान भ्रमतजड़ जानुष ॥
जो अब नहिं सोतबकिमिभयऊ । शशाश्रृङ्ग त्रय काल न लयऊ ॥
योग वियोग एक में कैसे । त्रिविधि विरोधी कार्य रहैसे ॥
मदपी के घर मदपी आये । विविधि खेल सब बाल मचाये ॥
पर की भूल दिखावत सबहीं । निजकी भूल परखिनहिंसकहीं ॥
वेद शास्त्र पौराण कुराना । गीता बहु उपनिषद बखाना ॥
औरहुँ अनमिल बहु मतवादी । विविधि भाँतिके ग्रन्थबनादी ॥
जाके जो कुछ मन में आया । सोइ अनुमित करि बोधबताया ॥
कोइ तो रूप रहित है कहते । बन्ध्या सुत से सब कुछ गहते ॥
गगन समान शून्य जो आहीं । क्या वस्तू सोचहु दिल माहीं ॥
कोइ तो रूप सहित साकारा । आसमान पर ईश्वर प्यारा ॥
यकदेशी किमि सृष्टि बनाई । नहीं विचारत कहाँ रहाई ॥

दो०—सब देशी इक देशिया, रूप अरूप विचार ।
इनका ज्ञाता को अहै, ताहि नहीं निरुवार ॥
गुरुवन की पंचाइत में, जीभ लपालप होय ।
बातन के पकवान से, तृप्त भया नहिं कोय ॥

नककट्टा के पंथ जिमि, भ्रमत रहत संसार ।
देखा देखी कूदहीं, हाथ लहै नहिं सार ॥
शिष्य कहै गुरुदेव कृपाला । नककट्टा नहिं जानूँ हाला ॥
हे दयाल समझावो स्वामी । पुनि २ करूँ प्रणाम नमामी ॥
शिष्य वचन सुनि बोलन लागे । दयानिधान दया में पागे ॥

॥ चौकड़ी ॥

नककट्टा को सुनहु हवाल । सुनत नाश सकलो भ्रम जाल ॥
चोर मूसि धन लाया था । भूपति पकरि मँगाया था ॥
नाक काटि के दीन्हों दण्ड । छोड़ि दिया दे दण्ड प्रचण्ड ॥
तब तो छोड़ि गया वह वह देश । दिल में किया बड़ा अन्देश ॥
कहन लाग अब कौन उपाय । केहि विधि भोग करूँ हर्षाय ॥
सोचि लिया यक युक्ति महान । सो तुम से अब करौं बखान ॥
नाचन गावन कूदन लाग । कहन लाग बड़ मेरो भाग ॥
सुनि के लोग तहाँ पर जाय । पूछत काहे तुम हर्षाय ॥
कहन लागि वहि राधेश्याम । ऊपर दीखत मोहिं ललाम ॥
एक कहै हमको नहिं देख । कहता नाक आड़ है लेख ॥
सुनि के नाक कटाया एक । मन्तर दीन्हा फिर वह टेक ॥
जो तुम असिले होहु दिखाय । दोगल को नहिं ईश लखाय ॥

दो०—तुमहूँ कह दो दीखता, नहिं तो हँसिहैं लोग ।
आखिर नाक न आवहीं, कहहु तो बाढ़े शोग ॥

* चौकड़ी *

कहहू नाचन गावन लाग । कहन लाग बड़ मेरो भाग ॥

सुनि के लोग बहुत कटवाय। भेड़िया धासन धँसत जाय॥
कोउ न विचार कीन मन माय। नाक आड़ कहु कैसे भाय॥
शनै शनै नककट्टा पंथ। बाढ़ि गयो अब सुनो वृतंत॥
यक राजा यह सुनो हवाल। ईश दरश को वह बेहाल॥
नककट्टों को वह बोलाय। नाक कटावन जी ललचाय॥
निज मंत्री से कह्यो हवाल। सुबुधि मंत्रिकह परखो हाल॥
परखे बिना सांच अरु झूँठ। केहि विधि से हो मालूम भूप॥
राजा कहैं सबहिं क्या झूँठ। बहुत जने हैं बात अनूठ॥
मंत्री कहै सुनो हो भूप। सब को कहते हम नहिं झूँठ॥
पै विचारि के करिये काम। बिन विचार पाछे दुख धाम॥
समझ बूझ के करै जो काज। ताका कबहुँ न होय अकाज॥
दो०—राजा कह परखूँ किमि, मंत्री कह सुनु भूप।
प्रत्यक्ष प्रमाण सुसङ्ग से, परखहु बात अनूप॥

❋ चौकड़ी ❋

राजौ के मन आई बात। बिन विचार नहिं काम ठिकात॥
तातै राजा कीन उपाय। इक नौकर का नककटवाय॥
सच सच पूछा तासे हाल। कहि दीन्हा नौकर सब जाल॥
दुखित होय कह ईश न दीख। तब तो राजा पायो सीख॥
बहुतों को दुख दीना यह। छल प्रपंच बहु कीन्हा यह॥
अस विचार कीन्हो मन माय। नककट्टन को लीन्ह घेराय॥
यथायोग्य तेहि दण्डै दीन्ह। तब से पंथ भयो वह क्षीन॥
ऐसे मतवादिन का हाल। ईश ब्रह्म सब भर्म बवाल॥

बुधि बानी गो परे बताय । तजि अपरोक्ष कहाँ पर भाय ॥
परे आप सो परे बताय । मानि भास निज को अरुझाय ॥
तर्पण तीरथ जप तप योग । बिन परखे सब भरमत लोग ॥
कोइ कह हमको ईश्वर दीख । कोइ कह हमको ब्रह्महि पीख ॥
ऐसा कहि कहि लीन्ह बकाय । जग जीवन को रखे भुलाय ॥
वेद पुराण कुरान बनाय । अमिक अमावत सब को बाय ॥
मन कृत खेल निजी अभ्यास । भासत सपना दूसर आश ॥

* भजन *

परख बिना सब भटक रहे हैं ॥ टेक ॥

शैव शाक्त गणपति के भक्ता, प्रतिमा सूर उपासक जक्ता ।
स्वर्ग भोग को चटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥१
काली भूत भवानी भैरव, हिंसादिक में उन्मत यवनव ।
वंचक भूल में पटक रहे हैं, परख बिना सब भटक रहे हैं ॥२
चारवाक देहादि जड़ों महँ, नैयायिक वेदांति बड़ो तहँ ।
ब्रह्म भास जग लटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥३
कर्म अकर्म विकर्म मिमांसक, पुरुष प्रकृति के नेही सांख्यक ।
काल वैशेषिक सटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥४
द्वैत अद्वैत विशिष्ट जु मत हैं, परख बिना सब भास असत हैं ।
भास आश में तटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥५
षट दरशन या अन्य कहाते, शक्तिमान कर्त्ता कोइ गाते ।
नेति नेति कहि अटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥६
चित्र विचित्र भेष बहु धारी, बाद विबाद पक्ष गहि सारी ।
ज्ञान बिना सब फटक रहे हैं । परख बिना सब भटक रहे हैं ॥७

द्रष्टा दृश्य न निर्णय करते, इन्द्रिन के मारग में बहते।
बोध बिना सब भटक रहे हैं। परख बिना सब भटक रहे हैं ॥ ८ ॥
काम क्रोध मद दुर्गुण जेते, आशा तृष्णा दुख ही देते।
बिन बिचार सब गटक रहे हैं। परख बिना सब भटक रहे हैं ॥ ९ ॥
शीघ्र शांति को पाना जब है, भासिक भास पृथक कर तब है।
बिन पारख सब नटक रहे हैं। परख बिना सब भटक रहे हैं ॥१०॥
सकल युक्ति तू "प्रेम" तजन कर, केवल पारखि शरण गहे वर।
भटका से गुरु हटक रहे हैं। परख बिना सब भटक रहे हैं ॥११॥

* गीतक छन्द *

बिन बिचार के संसार यह, धोखे के धारा बह गये।
भेड़ियाधसानहुँ न्याय से, यक एक पीछे सब गये ॥
अथाह अगम अपार कह कह, हाथ मलते रह गये।
करि कल्पना बंधन लये, वेदो कुरानों गढ़ गये ॥

दो०—बे नामून कुरान कह, रूप रेख बिन वेद।
शुन्य हेत दोउ लड़ि मरे, नहिं पाया तिन भेद ॥
मत के कङ्गले लड़त सब, आपस में बहु भांति।
सत्य स्वरूप के ज्ञान बिन, कैसे छुटे अशांति ॥
बंध्या सुत ईश्वर अहै, नहीं रूप गुण धर्म।
औरो शंका शिष्य जो, पूछ बताऊँ मर्म ॥
इमि गुरुवर के बचन सुनि, हर्षित भये जिज्ञास।
जे समझे ते अति खुशी, तृषित मिटी जनु प्यास ॥

औरो जन जे बैठे पासा। सुनि गुरु वच अति प्रेम हुलासा॥
शुचि सुशील सुमती निष्कामा। सोई सुजन सब के प्रिय धामा॥
प्रियभाषी शीतल उर जाको। निःछल सद चाहत जन ताको॥
मधुर बचन गुरु दीनदयाला। परखावत गुरुवन के जाला॥
पुनः शिष्य बोल्यो कर जोरे। दीनबन्धु शरणागत तोरे॥
धन्य धन्य तुम सद्गुरु प्यारे। संशय मोह मिटावन वारे॥
बड़े भाग्य तव दर्शन पायों। परश्न करि के भर्म नशायों॥
कार्य जिते ब्रह्माण्डै माहीं। सो सब तत्त्वन शक्ति लखाहीं॥
यह तौ बोध भयो उर माहीं। ऋतु समया सब स्वतः सदाहीं॥
पुनि शंका औरो जिय आवै। जाते कर्त्ता भ्रम नहिं जावै॥
तव कृपया सब संशय नाशै। यह मम उर दृढ़ निश्चय भासै॥
पै अब देर भई यहि बेरा। हमहूँ सब जाउब गृह घेरा॥
दीनबन्धु आपौ विश्रामा। करहु दयानिधि शांति सुधामा॥
अस कहि वंदन सब जन कीन्हा। निज निज गृह को राहै लीन्हा॥
गुरु को बहुत सराहत सबहीं। ऐसे संत न देखा कबहीं॥
राजा बहु पै न्याई कोई। धनी बहुत कोइ धर्मी होई॥
पंथ बहुत पै कोइ सत पंथा। ग्रन्थ बहुत बिरले सद्ग्रन्था॥
मनुज बहुत पै मानुष धर्मा। कोइ बिरले धारै सत कर्मा॥
तिम साधू बहु जग के माहीं। सत्यन्याय युत बिरले आहीं॥
इमिहिं सराहत पुलकित गाता। चलत पंथ सब पुनि बतलाता॥
निर्जल थल एकांत है तहवाँ। सदगुरु शांत रूप हैं जहवाँ॥
नहिं उपाधि जहँ दुष्ट जननकी। त्रिविधि बयारिबहैजहँबनकी॥

कोकिल शुक चातक चहुँ ओरा। मोर शोर बहु खग रव घोरा॥
जनु विराग को देते डंका। रहहु एकांत सबहिं निःशंका॥
दो०—नदी प्रवाह बहै तहाँ, निशिदिन शांति न लेत।
जनु आयू गत सूचना, जागो सबहिं अचेत॥
इमि सुस्थल गुरुदेव बिराजैं। जिनके दर्शन से भ्रम भाजैं॥
योग्य समय जन तहवाँ आये। पुष्प चढ़ाय माल पहिनाये॥
कर जोरे स्तुति जिज्ञासू। करत सबै मन सहित हुलासू॥

* प्रार्थना *

सतगुरु तु दीनबन्धू, सब जाल को प्रखा दो।
भूले हुये हैं हम सब, सद्ज्ञान को बता दो॥टे०
दुनियाँ में पंथ नाना, निज निज तरफ कोताना।
सूझता नहीं ठिकाना, सिद्धांत सब जना दो॥१॥
विषयों कि खैंच भारी, अज्ञान मोह कारी।
छाई है खुब अंधारी, सत पंथ को लखा दो॥२॥
सब दोष पाप हरिये, भक्ती वो ज्ञान भरिये।
बिन्ती जनों कि सुनिये, निज रूप में डटा दो॥३॥
तुम सम है कौन दाता, माता पिता वो भ्राता।
स्वारथ के प्रेम नाता, गुरुदेव दुख छुड़ा दो॥४॥
दो०—इमिस्तुति करि सब जने, चहुँ दिशि बैठे शांत।
सद्गुण बिच निर्मान बर, शोभत त्यों गुरु कांत॥

* शिष्य वचन *

गुरु रुख देखि शिष्य कर जोरे। प्रश्न करत अति बिनय निहोरे॥

हे गुरु सब गुण ज्ञान निधाना ; पूर्व प्रसंग समुझेउँ सबनाना॥
तहि मा रहे जो संशय बाकी । प्रगट कहौं गुरु खण्डहुताकी॥
दोउ कर जोरि पड़ौं पद तेरे । नाश करो यह संशय मेरे ॥
चोर जो चोरी कर के आवै । आपहि आप जेल नहि जावै ॥
राजा ताको पकरि मँगावै । यथायोग्य तेहि दण्ड भुगावै॥
तिमि जीवन फल ईश्वर देता । यथायोग्य चहिए जेहि जेता ॥
याको निर्णय कहो गुरुराई । तब हमरे कर्त्ता भ्रम जाई ॥

* गुरु उत्तर *

लगे कहन गुरु दीनदयाला । त्रिविधितापदुखहरणविशाला॥
सुनहु सकल मिलि सत्य सुबानी । जाते हो सकलो भ्रम हानी ॥
भूप समान ईश जो कहते । तो यामें शंका बहु लहते ॥
राजा का दृष्टांत विषम है । यह प्रत्यक्ष वहअनुमितभ्रमहै॥
राजा का तो हुक्म हुकूमत । ईश्वर का नहिं जोर जुल्मत॥
राजा हाकिम सब घट नाहीं । ईश्वर हाकिम सब घट माहीं॥
सर्वशक्ति ईश्वर है व्यापक । अन्तर्यामि दयालू न्यायक ॥
ऐसा हाकिम आगे पीछे । पाप होय तो अचरज दीछे ॥
भय डर लज्जा ईश्वर देता । रोकि न पावे अचरज एता ॥
तब तो जीव भयो बलवाना । हाकिम पास डर नहिं माना ॥
पाप करत में रोकि न पावै । टुकुर टुकुर देखत रहि जावै ॥
दण्ड देत कहवाँ बल पावत । प्रथमै देखत पाप करावत ॥
सन्मुख जोर चलै नहिं कोई । देखि लेब पाछे कह सोई ॥
समय योग यक देशी ताके । जड़ चेतन नहिं वश में जाके ॥

समय पाय के दण्ड जो होई। तब सामर्थ ईश की खोई॥

* सवैया *

सब शक्ति सु ईश्वर न्याइ दयाल, अहै जग में सब के उर माहीं॥
पाप करै तब रोकत क्यों नहिं, ईश्वर शक्ति रहै जब ठाहीं॥
हाकिम आगे वो पीछे खड़ा तब, जीव स्वतन्त्र कहो किमि आहीं॥
राजहि रैयत नाहिन मानत, कैसा है राजा मनव न पाहीं॥

दो०—तब तो ईश्वर भर्म है, रज्जू सर्प समान।
जीवै प्रभुता ईश पद, जीव विना जड़ खान॥

छं०—हे हमारे बंधु हो, निर्णय सुनो अब ध्यान से।
दो किसम से दण्ड हो, यक आपही यक आनसे॥
दूसरे से दण्ड होता, देख ले परत्यक्ष है।
निज वासना से भोग हो जो, न्याय बीज सु वृक्ष है॥

पंच विषय सुख हित यह जीवा। स्वयं फँसत सुख हित दुख लीवा॥
करि दुष्कर्म दुखी हो जावै। करि शुभ कर्म सु सुख को पावै॥
काम क्रोध अग्नी उर उठई। कौन जलावै आपुहि जलई॥

दो०—आपहि क्रोध विवश ह्वै, बहु विधि झगड़ा ठानि।
जाय कूप में गिर पड़ो, कौन दुखायो आनि॥

जो कहो ईश गिराने वाला। तो त्यागहु ताको तत्काला॥
जो कहो कर्माधीनहिं देता। तब तो कर्महिं ईश सचेता॥
तेहि ते कर्म भोग फल आपै। सुनु दृष्टांत कहौं तोहिं यापै॥

* दृष्टान्त *

विप्र एक विदु सुगुण सुचाला। मानत बहु सब सुन तेहि हाला॥

प्रौढ़ भये मनमथ तेहि जागा । महा अंध है विषयन पागा ॥
काम विवश है रोकि न पयऊ । चर्मकरी से फँसि वह गयऊ ॥
मुख कारिख ज्यों पोतै कोई । तुरत प्रगट जहवाँ वह होई ॥

दो०—कामी कब निकलंक है, सुनहु सुजन मतिधीर ।
लहसुन प्याज को खाय जिमि, प्रगट गन्ध जेहि तीर ॥

इमि सो शीघ्र प्रगट भयो बाता । आगे हाल सुनहु तेहि ताता ॥
नीच जानि सब श्वान समाना । लगे करन सब तेहि अपमाना ॥
जाति पाँति बाहर सब कीन्ह्यो । कुल परिवार छांड़ि तेहि दीन्ह्यो ॥

दो०—चर्मकारी इक दिन कह्यो, सुनो विप्र मन लाय ।
हमरी जाति में तुम मिलो, तब दोनों सुख पाय ॥
पाप करम वश विप्र है, कहन लाग यह नीक ।
सब चमार बोलवाय कर, भो पंचायत ठीक ॥
नीचे खाट के विप्र तू, सोवहु अति हर्षाय ।
ऊपर खाट के हम सबै, स्नान करैं मन लाय ॥
सो पानी तेहि ऊपरे, परै तो होउ चमार ।
पीछे से परसाद लो, मद मांसादि अहार ॥
जो इतना मंजूर हो, तो चमार है जात ।
सुनत विप्र सब ही कियो, सत्य कहत कबिराव ॥

* कवित्त *

माता जात पिता जात तात जात भ्रात जात.
नात जात जाति जात लाज सी लजाये से ।

दया जात धर्म जात कर्म जात पुण्य जात,
पति जात पानी आनि बानि जातकाये से ॥
ऋद्धि जात सिद्धि जात बल बुद्धि वृद्धि जात,
महरम कहत कहाँ लग चुके गाये से ।
ज्ञान जात ध्यान जात योग जप तेज जात,
चित्त जात चित्त विषय भामिनी के भाये से ॥
दो०—जिमि अग्नी के लागते, जल बल हो सब नाश ।
व्यभिचारहुँ का हाल इमि, सब गुण केर विनाश ॥
प्रथम विप्र क्या होत चमारा । पै वह विशय ध्यास से धारा ॥
क्षण सुख लागि सह्यो दुख भारी । सुखाध्यास वश भयो अनारी ॥
तिमि जीवन को समझहु हाला । सुख हित फँसत सहत जंजाला ॥
सुख दुख देर न दूसर कर्त्ता । करि विचार देखहु दिल भर्त्ता ॥
जो कुछ धर्माधर्म कमावै । सो उर में फोटू टिक जावै ॥
संस्कार सुक्षम उर अन्दर । ताहि विवश नाचत जस बंदर ॥
जाग्रत में जो भोग रहाई । स्वप्ने में सोइ भास लहाई ॥
करत कर्म प्रारब्ध सिराना । तब पुनि छूटन लागत प्राना ॥
सकलो बीज सुषुप्ती राखै । विविधि विटप बपु योग लहाखै ॥
स्थूल देह तजि सुक्षम साथे । जहवाँ आश जाय तहँ नाथे ॥
दो०—फूल सुगंधि को बायु जिमि, लै उड़ाय तेहि जाय ।
वश्य बासना जीव तिमि, भ्रमत खानि के माय ॥
अनादि काल से जीव सब, विषय भोग वश मान ।
खानि बानि में रहट सम, भ्रमत ध्यास वश तान ॥

जो जो करता मनन सोइ, जो जो मनन सो बीज़।
पाप-पुण्य क्रिय योग लहि, दुख-सुख फल सो लीज ॥

शुभ अरु अशुभ कर्म जेहि जैसा। ह्वै संयोग ताहि पुनि तैसा ॥
चुम्बक लोह अकर्षण समता। जैस कर्म तस खानिन रमता ॥
अण्डज पिण्डज उष्मज खानी। चौथी कर्म भूमि नर जानी ॥
आपुहिं करै आपु तस भोगै। जस बोवत तस काटत लोगै ॥
उपादान[1] रज बीरज भाई। पूरब कर्म निमित[2] जिव आई ॥
विषयसम्बन्ध सधारण[3] कारण। तासे जीव गर्भ महँ धारण ॥
बीज वृक्ष वत तहँ तनु बनई। पूरित गर्भ प्रगट ह्वै परई ॥
मात पिता करि पालन तेही। प्रौढ़ भये बर्तै कर्म से ही ॥
पुरुषारथ प्रारब्धनुकूला। सुख दुख भोगत है सब शूला ॥
बल बुधि विद्या ज्ञान प्रदाता। रक्षक जीवहिं जीव दिखाता ॥
बोवत बीज कर्म रे भाई। वृक्षा फल आपुहि ह्वै जाई ॥
श्रम नहिं तामें करना पड़ता। आपुहि फल छाया जो मिलता ॥
करत कर्म तिमि मेहनत भाई। भोगत आपै आप सदाई ॥
आपुहि बरी आप गर बन्धा। झूठा मोह काल को धन्धा ॥
विषय माहिं सुख मानि के जीवा। फँसत स्वतः दुख लेत सदीवा ॥
परयो दुःख तब सोच अयाना। ईश ब्रह्म आहै भगवाना ॥
माया का फल दुख है भाई। तजना है फल सुक्ख सदाई ॥

टि०-१-मिट्टी वत रज, बीर्य। २-कुम्हार वत जीव ताके पूर्व कर्म। ३-चाक दण्डावत विषय सम्बन्ध ये तीन कारणों से देह रूपी घट बन जाता है।

अब ईश्वर का कौन है हेता। करि बिचार देखहु दिल एता ॥
औरहुँ अपर ग्रन्थनौं* माहीं। कर्म भोग फल स्वयं कहाहीं ॥

* शब्द *

मनुवाँ परखि ले सार असार, तब तेरा होगा निस्तार ॥टे०॥
मैं हूँ कौन? कौन है बन्धन, कौन अहै करतार।
सम्बन्ध कौन है केहि विधि छूटै, याको करहु बिचार ॥ १ ॥
सब को जानत सब को मानत, सब का थापनहार।
ज्ञान मात्र चेतन अविनाशी, तू है सब से न्यार ॥ २ ॥
पंच विषय सुख मानि के भूले, नहिं तेरो करतार।
अध्यास विवश तन धरि २ भोगत, योनिन दुःख अपार ॥ ३ ॥
योग यज्ञ जप तप व्रत तीरथ, कर ले यतन हजार।
स्वरूप ज्ञान विन भर्म न छूटै, जिमि तम सूर्य उजार ॥ ४ ॥
पंच विषय विषजानि के त्यागो, संतन संग अधार।
शुभ गुण सब अमृत सम धारो, प्रेमदास हो पार ॥ ५ ॥

---

* टि०— कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥
नहिं कोई सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सुन भ्राता ॥
जन्म मरण सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल कर्म वश होय गोसाईं। बरबस रात दिवस की नाईं ॥
यह रामायण की चौपाई। आगे नीति की साखि बताई ॥

श्लोक—स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

दो०—जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहूँ आप।
आप भ्रमत संसार में, मुक्ति लहत है आप ॥

छं०—जिमि बायु केबल आक के, उड़ते भुवा कहुँ के कहँ।
तिमि जीव निज कृत कर्म वश, योनिन विषै भरमा लहँ॥
कर संग सद्गुरु परख जालहिं, कर्म बीज कु दग्धिये।
गुरुभक्ति शुभगुण धारि सब, तब मोक्ष पद को लीजिये॥
छं०—ईश दण्ड नाहिं देत, जीव स्वतः भोगि लेत।
जौन शंक होय तोहि, तौन कहो कहँ सोहि॥
दो० इमि गुरुवर के बचन सुनि, समझयो शिष्य सुजान।
कर जोरे स्तुति करत, श्रेष्ठ सद्गुरू मान॥

* शिष्य स्तुति—गीतिका छन्द *

हे ज्ञान के परकाश गुरुवर, सत्य सुख के राशि हो।
गुरुवाजनों के हाल परख्यों, जाल संशय नाश हो॥
ब्रह्म ईश्वर भर्म सब करि, कर्म भोगत जीव है।
राउर कृपा से जानि यह, नहिं जगत कर्त्ता पीव है॥

❀ स्तोत्र-छन्द ❀

हैं विवेक वैराग्य आदी रिशालं, मैदान चौपड़ जिते दश दिशालं।
मद अष्ट के कष्ट काटे हैं भालं, कुराँ वेद भेदादि पायो न हालं॥
मुरुवा अनेकन भगे हैं दलालं, नहीं पार पावैं मिजैं कर्म लालं।
एकालं करालं फटे भर्म जालं, खानी व बानी व संधी जुकालं॥
अभिमान पाँचो को मेटे कृपालं, सजग बीर औ धीरता बेमिशालं।
तिल्ली से तैलं लियो है निशालं, सत्यं कबीरं गुरुवर विशालं॥
सो० —मोहिं बालक निज जान, क्षमो ढिठाई मोर सब।
तव समान को आन, शरणागत रक्षक प्रभो॥

* गुरु वचन *

और भक्त जे बैठे रहेऊ। तिन प्रति गुरू बचन अस कहेऊ॥
ईश्वर तर्क में जाको शंका। कहो भक्त सब ह्वै निर्शंका॥
कहत प्रश्न नाराजि न चाही। यथायोग्य उत्तर लहि ताही॥
धर्म धुरन्धर प्रभु की बानी। सुनि सब सुखी भिक्षु जिमि दानी॥
तेहि महँ यक जन को उपदेशा। पक्ष बाद से लागि न लेशा॥
बच सुनि क्रोध सहित वह बोला। झपी राख अग्नी जनु खोला॥
बड़े बड़े जो ऋषि मुनि भयऊ। क्या वह सबही भूलत गयऊ॥
बड़ी बड़ी पोथी लिख राखा। मान महातम बहुतै शाखा॥
जिनको दुनियाँ सबहीं माने। केहि विधि झूठ उन्हें हम ठाने॥
राम ईश देवता भगवाना। वेद पुराण में कीन्ह बखाना॥
वेद वाक्य या तुम्हरी मानैं। लिखी बात झूठी किमि जानैं॥
मीत देखु मन के वश जीवा। बहत तरंग न स्ववश रहीवा॥
प्रबल धार कोउ खींचि न सकई। वृथा विवाद वैर में पचई॥
लखि सन्मुख कछु शांत स्वभाऊ। तब शिक्षा कर लगत प्रभाऊ॥
अस बर युक्ति कवन शिख देवै। धन्य धन्य गुरु युक्ति जो लेवै॥
क्रोध बचन सुनि गुरु चुप थीरा। शांत देखि बोलेउ गम्भीरा॥
हे भाई निर्णय कुछ लहहू। तुम सुबुद्धि सत्संगी अहहू॥
बड़े छोट का मोह न आनहु। वेद कुरान पक्ष नहि ठानहु॥
दो०—कुलपशु गुरुपशु वेदपशु, त्रिया पशू ये चार।
मानुष ताको जानिये, जाहि विवेक विचार॥
तुम तो मानुष आहो भाई। बाल बुद्धि नहिं राखो राई॥

मैं तो कहौं तुम्हारे हेता। क्रोध न कीजै सुनहु सचेता ॥
मोहिं कविता की इच्छा नाहीं। नहीं भाँड़ सम वक हम आहीं ॥
निज मत पंथ बढ़ावन हेता। मेरे दिल यह नहीं सचेता ॥
गुरुवाई औ मान कि इच्छा। ऋद्धि सिद्धि ऐश्वर्य अनिच्छा ॥
ये तो सब अलगै रहि जाई। दुखद रूप नश्वर है भाई ॥
केवल हम जीवन हित हेतू। कहत बचन निर्णय सुनि चेतू ॥
जो चेतहु तो होय उवारा। नहिं तो हानि कौन मम प्यारा ॥

दो०—कहता हूँ कह जात हूँ, कहा जु मानु हमार।
साँच झूँठ निर्णय बिना, नहिं जीवन निस्तार ॥

छन्द—दृष्टांत सुनो जी। मन में गुनो जी ॥

छं०—कोइ विबाह कर के नारि लायो चलि गयो परदेश हो।
बहुत दिन जब वीतिया तब युवति मन अंदेश हो ॥
पत्री लिख्यो तब युवति ने तब अछत हम तो राँड़ हो।
पाय पत्री पढ़ि के देख्यो मम त्रिया भइ राँड़ हो ॥

* पुरुष बचन भुजंगी छन्द *

अरे हाय! नारी मेरी राँड़ है, क्या मैं करूँ हाय जा जान है।
सुनि के वचन लोग आये तहाँ, अरे मूर्ख तू है अनारी महाँ ॥
भला मर्द तू नारि है राँड़ कैसे, कुछ तो विचारो न बकना तु ऐसे।
सुनि के वचन मूढ़ पत्री दिखाया, जवानी न मानूँ ये मानूँ लिखाया ॥

दो०—अस लेखा मति करहु कोउ, नहिं तो निर्णय नाहिं।
पढ़ा लिखा बहु अलग करि, करु बिचार मन माहिं ॥

कबीर काहू अस कही, कान काग लिये जाय।
कान न टोवै बावरा, खोजै दहुँ दिशि धाय ॥क.प.

शक्कर मिलि ज्यों रेत में, लघु चींटी चुनि लेय।
बड़े बड़े जो ऊँट गज, ढूँढ़ि न पावत तेय ॥

तैसे बानी के अभिमानी। ऊँट समान न ज्ञानहिं जानी ॥
कल्पित बाद विषय कटु पाती। गहत ऊँट खर लादि बिजाती ॥
जिनके मत पथ पक्ष न आहीं। चींटी सम सो ज्ञान लहाहीं ॥
ज्यों धन मद में बहुतै अंधे। त्यों बानी मद गुरुवा बंधे ॥

दो०–बड़े गये बड़ापने, रोय रोम हंकार।
सतगुरु के परिचय बिना, चारों बरण चमार ॥ [बी०]

हीरा तो बहु होय न भाई। लोहा सब घर देत दिखाई ॥
सिंह बहुत नहिं दीखत प्यारे। मलयागिरि जंगल नहिं सारे ॥
तैसे सत सिद्धांत जनैया। करि सुसंग विरलेहि मनैया ॥

हीरों की ओबरी नहीं, मलयागिरि नहिं पाँति।
सिंघों के लेंहड़ा नहीं, साधु न चलैं जमाति ॥ [बी०]

अरे विचार देख तू प्यारे। सर्ब कल्पना काहि सहारे ॥
वेद कुरान पुरान बनावै। ईश खुदाय कौन ठहरावै ॥
सब को सिद्ध करै सो कौना। उलटि देखु जिव आपै तौना ॥

* निज रूप महानता गजल *

दिल में विचार प्यारे, सब का जनैया तू ही।
ईश्वर वो ब्रह्म अल्ला, सब का मनैया तू ही ॥टे०॥

तेरे बिना न कोई, नाना कला न होई।
वेदादि ग्रन्थ जोई, सब का रचैया तू ही ॥ १ ॥
जितने हैं ग्रन्थ सारे, जितने हैं पंथ प्यारे।
जितने कलें दिखारे, सब का चलैया तू ही ॥ २ ॥
अपने को आप भूला, खानी व बानि शूला।
फिर फिर वो योनि झूला, भ्रमता अनादि तू ही ॥ ३ ॥
अपने को आप जाना, पारख स्वरूप ठिकाना।
करि शोध बोध पाना, तब प्रेम मोक्ष तू ही ॥ ४ ॥
दो०—ऐसा सब से श्रेष्ठ तू, क्यों फिर भूलै मन्द।
गज हरि झख मृग न्याय से, पड़ जावे तू फन्द* ॥
फन्द छुटन हित अमित उपाई। वेद कुराँ इंजील बनाई ॥
बड़े बड़े तो खुद कह गयऊ। अगम अपार पार नहिं पयऊ ॥
बड़े बड़े जब थाह न पाये। तब क्यों वेद कुरान बनाये ॥
अनुभविता चिद आप रहावै। अनुभव पंच विषय बिलगावै ॥
दोनों तजि तीसर को प्रेरक। ज्ञाता भूलि अपर को हेरक ॥
द्रष्टा साक्षी ज्ञाता ध्याता। तेहि के परे कहाँ कुशलाता ॥
ताते सर्व कल्पना भाई। कवियों ने सब दीन्ह बढ़ाई ॥

टि०—*श्रुति पुराण बहु कह्यो उपाई। छूटित न अधिक अधिक अरुझाई ॥
दो०—नारद शेष महेश पुनि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान ॥
आदि अन्त कोउ राम न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा ॥
यह रामायण का चौपाई। नेति नेति कहि पार न पाई ॥

दो०—नरदेही भव छुटन हित, तेहि खोये कवि लोग।
मिथ्या कल्पित बानि बहु, पढ़ि पढ़ि पावत शोग॥

विषई पामर मिथ्याचारी। बड़ी बड़ी पोथी लिखि डारी॥
तुक मिलाय बहु छन्द प्रबन्धा। जगत प्रपंच लिखा सब धन्धा॥
जग प्रपंच सब तुमहूँ करहू। तेहि गाये भवनिधि किमि तरहू॥
देखहु आल्हा बाम कुग्रन्था। बिन विचार नहिं पा सत पन्था॥
कहुँ कहुँ लिखी नीति की बातैं। सत सिद्धांत बिना सोउ घातैं॥

दों०—ऋषि मुनि कवि कोविद बड़े, की उनका अनुमान।
शब्दी बड़ा कि शब्द बड़ा, कहो वत्स मतिमान॥

* भजन *

सो ऐसे गुरु परख के परम विचार॥ टेक॥
जड़ चेतन दुइ वस्तु अनादी, शक्ती गुण आकार।
द्रष्टा दृश्य विषय अरु विषई, ध्याता ध्यान है न्यार॥ १॥
कारण कर्ता अपर न दीखे, जड़ चेतन के पार।
पंच विषय जड़ गहबे में है, गाहक चेतन सार॥ २॥
साक्षी परम पदारथ पद नहिं, पद वेदादिक क्षार।
साक्षी स्वयं सर्व का न्यायक, तेहि साक्षी केहि धार॥ ३॥
प्रति घट साक्षी जाति एक पै, स्व स्व पृथक अपार।
भोगत करत गहत पुनि छोड़त, सुखाध्यास के लार॥ ४॥
हे साक्षी ठहराव करो निज, शुद्ध स्वरूप तुम्हार।
विरति विवेक टेक धरि गुरु पद, हंस होहु भव पार॥ ५॥

चित्रकार मत भूल चित्र में, चित्र भास दुख धार।
चित्र उरज तज सकल मानना, प्रेम आश सब टार॥ ६॥

दो०—ऐसे परख विचार को, प्राप्त नहीं जे लोग।
घूमि घूमि भ्रम धार में, बिन गुरु छुटै न शोग॥
सोढ़रमल दृष्टांत इक, कहँ तोहिं समुझाय।
तिमि दुनियाँ को जानहू, देखा देखी धाय॥

विधवा धोबिन एक रहाई। पुत्र नहीं तेहि कोई भाई॥
गदही सुत ताके इक रहई। निज सुत करि जानै तेहि अहई॥
सोढ़रमल तेहि नामहिं धरिया। बहुत प्यार करि राखत रहिया॥
चूमचाम करि बहु दुलरावै। सोढ़रमल कहि ताहि बुलावै॥
बहुत प्रीति भइ दोनों माहीं। कछुक दिवस खुब पाल्यो ताहीं॥
एक दिवस गदही सुत मरि गो। लखि धोबिन मुर्छा से गिरि गो॥
हा! सोढ़रमल कहवाँ गयऊ। मो अधार तुमहीं तो रहेऊ॥
हा! सोढ़रमल कहि २ धोबिन। रोवत रही सो आगे पुनि सुन॥
इतने में एक लौंड़ी आई। धोबिन से अति प्रीति रहाई॥
रुदत देखि सोढ़र बिन हा हा। तैसहि रुद दासी करि आहा॥
सो दासी गइ रानी पासा। घनी प्रीति दोनों की आशा॥
लौंड़ी देखि के रानी रोई। हा! सोढ़रमल कहि २ सोई॥
रानी पासै राजा अयऊ। नामै सुनि उनहूँ रो दयऊ॥
रोवत रोवत गयो कचेहरी। सोढ़र मरन सुनायो सबरी॥

सो०—राजा रोवत देखि, सब परजा रोवन लगी।
सोढ़रमल कोइ लेख, अंधाधुन्ध बानी सुनी॥

उसी समय यक आये संता । हाय हाय सुनि :पूछि वृतंता ॥
कहैं सबै सोदर मरि गयऊ । तेहि के सोच नगर रोदयऊ ॥
पूछ संत सोदरमल कौना । सब कह हम नहिं जानत भौना ॥
राजा रानि से पूछेउ संता । लौंडी से धोबिन तक अन्ता ॥
तब धोबिन सब कह्यो हवाला । आदि अन्त गदही सुत बाला ॥

छं०—गदही सुत पीछे,रोयो सुन ही ते, राजा रानी और सबै ।
नहिं कोइ पूछो हाला, देखा देखी चाला, तैसी गति संसार हवै ॥
यहि विधि सुन भाई,राम रहीम रटाई,नहिं जानत वह कौन कहाँ ।
अगम अपार अथाहा,नेति नेति औगाहा,सुनि बानी अज्ञानि बहा ॥

दो०—शब्दी को चीन्हे नहीं , शब्द माहिं कौवाय ।
यथा भूप कोइ स्वप्न में, रंक मानि दुख पाय ॥
षट नौ चौदह चारि पढ़ि, ज्ञान कथे अधिकाय ।
सत्य स्वरूप के ज्ञान बिन, काकू बोल व्यर्थाय ॥
ज्ञान कथा सीखी घनी , पर उपदेशहिं गूढ़ ।
निज कर्तव्य सुधार नहीं , सो अज्ञानी मूढ़ ॥
ना सुख बहु विद्या पढ़े , ना सुख बाद विबाद ।
निज स्वरूप में शांत हो, छूटे सकल विषाद ॥
षट नौ चार जु अष्ट दश, पढ़ि निज रूप न जान ।
खरवद्भार उठाय के , भूँकत श्वान समान ॥
तेहि ते सब जालै परखि , निज स्वरूप सत जानि ।
इन्द्रीजीत मन वश करै , होवै दुख सब हानि ॥

यहि प्रकार गुरुदेव बच, सुनत ताहि भो ज्ञान।
कर जोरे स्तुति करत, निजै भूल पहिचान ॥

* भजन *

नहीं पहिचान थी तेरी इसी से भूल कृत मेरी।
तेरी दाया से पहिचाना, शरण में अब हुँ मैं तेरी ॥टे०॥
बना भिक्षुक सकल दर का, फँसा तृप्ती कि आशा में।
बढ़ी तृष्णा उलट कर के, जमा भी खो गई मेरी ॥ १ ॥
उधर का मोह दृढ़ तो भी, मिले इतने में तुम साहेब।
किया मैं क्रोध हित बच सुनि, अहो मद मोह में घेरी ॥ २ ॥
कहीं दिखता ठिकाना तो, बिना ही मोल बिक जाता।
हुआ सब से निराश्रय है, इसी से आप को टेरी ॥ ३ ॥
अबुध का मान रखि रखि के, सकल भ्रम जाल परखाये।
रहा अंधा हुआ द्रष्टा, सकल महिमा अहै तेरी ॥ ४ ॥
तेरे चरणों में बलि जाऊँ, सदा ही प्रेम से ध्याऊँ।
न भूलूँ अब से हितकर को, गहूँ पारख अचल हेरी ॥ ५ ॥

सो०—धन्य धन्य गुरुदेव, परम उदार दयालु चित।
मैं नहिं जान्यों भेव, अब जान्यों तव शरण हूँ ॥

भयो प्रश्न उत्तर जब एता। गुरू शिष्य दोउ शांत सचेता ॥
सत्य ज्ञान सुनि सब सुख पाये। औरहुँ जन जे बैठे भाये ॥
भाग्य बड़ी हम सब की भाई। जो इमि गुरु को दर्शन पाई ॥
यहि विधि सबहिं सराहैं साधू। संशय भर्म मिटावैं व्याधू ॥

दो०—कथा मोक्ष सुखदाइनी, सुनत न हृदय अघाय।
सुनि सुनि गुरुवर के बचन, संशय तम सब जाय॥
सो०—अज्ञा माँगि सब लोग, करि बन्दन त्रय बचन से।
कहत सुनत सब योग, अपने अपने घर गये॥
सुनु रज तम तनु कथा प्रसंगा। जो सुनि जीवन लाभ अभंगा॥
परम पारखी हरि के वचना। भगे भूरि गज संशय रचना॥
जे सुबुद्धि निर्पक्षिक जीवा। करि सत्संग स्वपद लहि कीवा॥
डामाडोल त्यागि थिर भयऊ। गुरु आधार सदा सो लयऊ॥
रती रती सब काल के दाऊ। परखि परखि सो भिन्न रहाऊ॥
धूवाँधौर विपर्जय नाशी। बातन केर पहाड़ उड़ासी॥
गुरु व्रत जप तप चेतन पूजा। यहि ते हित कछु और न दूजा॥
भानु उदय जिमि अंध न लेशा। छिपि उलूक तारा नहि देशा॥
तिमि गुरुज्ञान उदय अनुमाना। नहिं दीखत गुरुवन अब ज्ञाना॥
सुकृत सुयश गुरु पूर्ण पताका। फैल्यो चहुँ दिशिरबिवतशाका॥
अब तो चर्चा फैली भाई। संत बड़े इक ज्ञानी आई॥
सुनि सुनि आवैं बहुतै लोगू। हठी कोऊ समझावन योगू॥
कोइ तो जीत हार लिये आवैं। कोइ तो मानि साधु हितधावैं॥
दो०—जौन जीव जौने विधी, समझावन के योग।
तौन ताहि समझाय करि, भर्म छुड़ावैं शोग॥
धन्य धन्य श्री गुरु परख, इनहिं जान ते धन्य।
इन जानै बिन काज नहिं, कोटिन यतन करन्य॥
तन धरि मनहुँ रमत बैरागा। निशिदिन निजस्वरूपमेंजागा॥

पारख बल साधन सब जाके । शुचि संतोष क्षमा हित ताके ।।
मान भंग नहिं कोइ कर करहीं । कुजन सुजन हितगतिअनुसरहीं।।
संत मुमुक्षु भक्त अधिकारी । गुरुपद पंकज पै बलिहारी ।।
दरश परश शुचि मंगलकारी । सकल सुखी गुरुशरण संभारी।।
दो०–दया स्वभाविक दयानिधि , आप बचत कर युक्ति ।
एक चित्त निर्मान लखि , अभय दान दे मुक्ति ।।
जन रक्षा कर भार उत , इत निज स्थिति सार ।
स्थिति गति निज मुख्य लखि, अति उपराम बिचार ।।
रहत रहत निज तख्त पर , होवै सोइ करतव्य ।
और बोझ सब डाल कर , आगे नहिं भवितव्य ।।
सोइ गुरु परख रहस्य युत , साधु सकल गुरु रूप ।
सो सब तीरथ श्रेष्ठ सत , भूल हरन जन भूप ।।
पुनि आगे सम्बाद सुनीजै । शोक मोह भ्रम जेहि ते छीजै।।
एक समय गुरुदेव कृपाला । सहजासन आसीन विशाला ।।
भद्र भेष गल माल बिराजै । उदासीन सत शुभ गुणसाजै ।।
बिरति विवेक ज्ञान के रूपा । भव भय भंजन संतन भूपा ।।
दो०–मन्त्री जाहि विचार है , परख रूप गुरु भूप ।
शम दमादि सैना बर , पत्नी शांति अनूप ।।
धन सन्तोषै जाहि महाना । क्षमा यही औजार कृपाना ।।
सो मन अरिदल जीत महाना । करत अकंटक राज्य सुजाना ।।
मोह विपिन महँ संशय सर्पा । वंचक-बामजनित भ्रम दर्पा ।।
प्रबल बोध मय चाप चढ़ायो । मरे कछुक कछु भागि परायो।।

ऐसे गुरु जीवन हितकारी। सत्यज्ञान परकाश प्रचारी ॥
पाय प्रकाश बहुत जिव जागे। गुरु पद पद्म अटूट सो पागे ॥
धन्य धन्य तेई बड़ भागी। जागृत रूप सदा अनुरागी ॥
और सबै आशा के सिन्धू। जड़ाध्यास वश बहते अन्धू ॥
सत्य सनेह शील गुरु ज्ञानू। धर्म धुरी बैठे मतिमानू ॥
इतने महँ आये शुचि दासन। करि प्रणाम बैठे लघु आसन ॥
वाहि समय पंडित इक आयो। पढ़े वेद अरु शास्त्र सुहायो ॥
अति निर्पक्ष नीति निपुणाई। हठ विवाद तिनको नहिं भाई ॥

दो०—जाना चहत सत्य पथ, विविधि शास्त्र लखि खेद।
सत शोधक गुरु नौमि कहि, बैठि गये हित भेद ॥

और मुमुक्षू बैठे चहुँधा। जनु स्वाती हित चातक बहुधा ॥
कछुक देर में पंडित बोल्यो। नम्र सहित निज वचनै खोल्यो ॥
सुना संत ईश्वर नहिं मानो। जगत अनादी आप बखानो ॥
सो समझावहु कर के दाया। सत्य बोध हित शरणै आया ॥
पंडित बच सुनि गुरुवर बोले। समता शील सहित बच खोले ॥
वस्तु जौन मानूँ नहिं कैसे। दुख छूटन हित हमहुँ चहैसे ॥
सब विधि कुशल वेद विद अहहू। ईश्वर रूप कौन क्रिमि कहहू ॥
ईश्वर कौन ? कहाँ है ? कैसा ? कहो आप निश्चय हो जैसा ॥
सुनि गुरु वचन सु पंडित बोले। अनुमित सैन बचन को खोले ॥
प्रकृति जीव पर ईश्वर जानो। जग का कर्त्ता ताहि पिछानो ॥
उत्पति पाल संहारहिं करई। व्यापक है जेहि को मुनि भजई ॥
प्रेरक साक्षी है बलवाना। दया न्याय विज्ञान निधाना ॥

तेहि ईश्वर के नाम अनन्ता । निराकार कहि गावैं सन्ता ॥
अस हिय निश्चय मोरे आवै । जग कर्त्ता आवश्य रहावै ॥
अब स्वामी निज मत बतलावो । जौने विधि थिति सो समझावो॥

दो०—कहत गुरू ऐश्वर्य सह, ईश्वर नाम विशेख ।
द्रष्टा दृश्य दोउ छोड़ि के, कहँ ऐश्वर्य परेख ॥
लखि सुनि सूँघिसु परश चिख, पंच विषय वहि ठान ।
भू जल अग्नी बायु गुण, तेहि द्रष्टा खुद जान ॥
जड़ चेतन से भिन्न कोउ, जो प्रतिपादन कीन्ह ।
सो प्रतिपादन का भयो, केहि अनुभव को चीन्ह ॥
कर्त्ता भूषण न्याय जो, तो पहिले कहुँ देखि ।
अग जग रचते देखि को ? बिन देखे भ्रम लेखि ॥
प्रत्यक्षान्तर से भिन्न जो, सो प्रमाण है भर्म ।
रविजल औ शश शींग पुनि, तरु से गज नहिं पर्म ॥
औरौ श्रीगुरु विविधि बिधि, कहे बचन समुदाय ।
पंडितहँ ता हर्ष से, श्रवण करत सुख पाय ॥
श्री गुरु आशय पाय के, इक सत्संगी श्रेष्ठ ।
कर्त्ता निर्णय कहत भौ, संग्रह शब्द वरेष्ठ ॥

❀ कर्त्ता विषय: लावनी ❀

कर्त्तावादी कहे जीव का, कर्त्ता हर्ता परमेश्वर ।
सृष्टी को रचि जीव बनाये इनमें संदेह पड़े नजर ॥टेक॥
अगर रची सृष्टी ईश्वर ने, फिर क्यों अन्तर दिया है डाल ।
एक सुखी यक दुखी बनाये, एक धनी निरधन कंगाल ॥

ऊँच नींच क्यों पुरुष बनाये, एक दयालू एक चण्डाल।
सब जीवों पर समदृष्टी क्यों, रहा न इसका कहिये हाल॥
अगर कहोगे अपने भक्त को, वह रखता हरदम सुख हाल।
करै बुराई जो ईश्वर की, उसे देत दुख अति विकराल॥
तो खुशामदी हुआ ईश है, बड़ा दोष यह करिये ख्याल।
अगर कहो अनुसार कर्म के, देता है सुख दुख धन माल॥
तब तो यह बतलावो जीव के, संग कर्म लागे क्यों कर॥१॥

जब ईश्वर ने प्रथम जीव को, पैदा किया जगत के माहिं।
उस दम कर्म जीव के संग में, लगे हुये थे या की नाहिं॥
अगर कहोगे कर्म संग थे, यह तो बात हुई बे राह।
किये कर्म बिन कर्म कहाँ से, लगे जीव क्यों हुये तबाह॥
अगर कहोगे कर्म नहीं थे, संग जीव के जन मतवार।
फिर आये कर्म कहाँ से, इसका बतलाओ विस्तार॥
किये कर्म क्यों पैदा ईशने, क्यों सुख दुख ये दीना डाल।
झूँठ बात ये हुई सरासर, मन में समझो जरा चतुर॥२॥

अगर कर्म अनुसार दंड दे, रचता जीव बीच संसार।
पैदा करी देह गणिका की, जो नित कर भोग व्यभिचार॥
अन्याई वह पाप कर्म का, साथी बनता करो विचार।
है पूरण सर्वज्ञ ईश तो, तीन काल की जानै बात॥
तब क्यों रची देह गणिका की, जब उसको था इतना ज्ञात।
होकर स्वाधीन यह गणिका, भ्रष्टाचार करै जग बीच॥

तब तो दोष हुआ ईश्वर को, किया जानि यह करतब नीच।
ईश्वर के सर्बज्ञपने में, लगे दोष अब सुनो जिकर ॥३॥
दुष्टलोग जीवों को मारैं, बेरहमी ते हरते प्रान।
किये ईश ने क्यों वह पैदा, जब उसको था इतना ज्ञान॥
अगर कहोगे घाती द्वारा, दंड ले रहे हैं जीव अजान।
अज्ञा से ईश्वर के अपने, कर्तव्य का फल भोगैं आन॥
जब घातक ने ईश्वर की अज्ञा से, कीन्हा जीव संघार।
फिर क्यों जन को दोष लगावो, पापी दुष्ट कहै संसार॥
जैसे किसी धनी के घर में, चोरी कर धन लिया अपार।
धनी पुरुष के कर्म योग से, करवाई चोरी करतार॥
सो दण्ड मिला निर्दोष चोर को, था इश्वर का दोष मगर ॥४॥
अगर कहोगे घाती नर का, है अपराध मान लो बात।
फिर क्यों पैदा किया ईश ने, पापी जन चंडाल महान॥
अगर जान कर उन्हें बनाया, तब ईश्वर चांडाल समान।
अगर किया बिन जाने पैदा, तब तो है मूरख नादान॥
हुआ नष्ट सर्वज्ञपना, अब रक्षकपन पर करिये गौर।
जब कर्त्ता है जन की रक्षा, तबक्यों कीन्हा ठग अरु चोर॥
अगर कहोगे खान पान का, यही किया चोरों के तौर।
फिर क्यों पहरेदार बनाये, फिरैं जगाते कर कर शोर॥
तब तो दगाबाज है ईश्वर, जब करता यह कपट मगर ॥५॥
अरु यह भी कहते हो ईश्वर को, सब के घट में रहा है व्याप।
जब ईश्वर घट घट का बासी, फिर तो आप करै पुनि पाप॥

आप ही ईश्वर पाप कर रहा है, जग जीवों को दे संताप।
यह अन्याय है प्रगट नीति, इसको तो मानोगे आप॥
और दूसरे जब घट घट में, ईश्वर का परकाश विकाश।
फिर स्वाधीन जीव हों कैसे, हरदम रहै ईश जब पास॥
सच अरु झूँठ कपटछल जग में, पाप पुण्य जितने व्यौहार।
सबी कराता है परमेश्वर, जीव करे होकर लाचार॥
करे ईश अरु भरे जीव दुख, यह ईश्वर में बड़ी कसर॥६॥
घट घट बासी जब परमेश्वर, तब मेरे घट बास जरूर।
मगर ईश के कर्त्तापन का, मैं खण्डन करता भरपूर॥
तब तो अपना खुद खण्डन वह, करै मेरा नहिं जरा कसूर।
अगर मेरा अपराध कहो तब, रहै नहीं ईश्वर का नूर॥
फिर कहते हो निराकार वह, जिसका नहीं कोई आकार।
मगर बिना आकार रचे, क्या बस्तू दिल करो विचार॥
अंग हीन नर क्या कर सकता, हाथों पैरों बिन लाचार।
है अचरज की बात बिना, आकार रचे ईश्वर संसार॥
ऐसी झूँटी बात को, माने नहिं कोइ ज्ञानी नर॥७॥
फिर भी कहते हो परमेश्वर, जोति स्वरूप सदा सुखकार।
निराकारपना नष्ट हो गया, जब उसका है रूपाकार॥
सर्व शक्ति नहिं रही ईश में, जब सब जीव हुये स्वाधीन।
सर्व ज्ञान नहिं रहा ईश में, नहीं दयाल करौ आकीन॥
नहीं रहा घट घट का वासी, समदृष्टी रहा न ईश।
रक्षकपन नहि रहा ईश में, निराकार भी नहि जगदीश॥

जो गुण तुम वर्णन करते हो, कर्त्तापन में रहा न एक।
ईश्वर होता है महादोषी, उसको कर्त्ता कहो अगर ॥८॥

एक बात का और गुणी जन, अपने दिल में करिये ख्याल।
ईश्वर ने रच कर के सृष्टी, क्यों शिर अपने धरो बवाल ॥
अपने सुख आनन्द में उसने, व्यर्थ फिकर क्यों लीन्हा डाल।
हुआ फायदा क्या ईश्वर का, फैलाया यह माया जाल ॥
अगर कहोगे ईश्वर ने रच, जग को हुनर दिखाया है।
मैं हूँ ऐसा बली गुणी जन, मेरी यह सब माया है ॥
तब तो करतव्य उन्हें दिखाया, खुदही जिन्हे बनाया है।
बड़ा घमण्डी मानी है, जो जग का जाल बिछाया है ॥
किस कारण से दुनियाँ को रच, किया ईश ने प्रगट हुनर।
कर्त्तापन का कहा हाल अब, हर्त्तापन का सुनो जिकर ॥९॥

अपने हाथ बना कर वस्तू, नहीं हरे कोइ ज्ञानी नर।
अगर चतुर नर किसी बस्तु को, बना बना दे खंडित कर ॥
उसे कहे सब मूरख दुनियाँ, यह तो आती साफ नजर।
लिखकर साफ इबारत को जो, मेटै अपने हाथ बशर ॥
समझो उसकी गलत इबारत, थी कुछ उसमें रही कसर।
कहो जीव रचने में ईश्वर, भूला गलती किया डगर ॥
नहीं ईश्वर हरे किसी को, दोष लगाओ उसके सर ॥१०॥

तजो झूठ अरु सब का निर्णय, पक्षपात को तज गुणवान।
कर्त्तापन में परमेश्वर के, होता है सब भ्रष्ट जहान ॥

ईश्वर के शर लगा दोष अति, पापी कपटी अरु नादान।
तुम ईश्वर को दोष लगावो, फिर बनते हो भक्त महान॥
अरे भाई जो कर्म करोगे, उसका फल भोगोगे आप।
कहै शास्त्र सुत करै भरै सुत, बाप करै सो भोगै बाप॥
भक्तों के कारण परमेश्वर, नहीं माफ करता है पाप।
दोष लगावो मत ईश्वर को, वरना भोगोगे संताप॥
पक्षपात को तज कर ज्ञानी, यही बात लो हिरदय धर॥११
है नहिं ईश्वर कर्त्ता हर्ता, जगत जीव का आदि न अन्त।
निज निज कर्मयोग से सुख दुख, पावैं जगत जीव भरमंत॥
पाप करैं सो लहैं दुःख अरु, पुण्य करैं सुख लहैं अपार।
पाप पुण्य का नाश करैं यहि, बीतरागपन है सुखकार॥
समझत कारण गुणी जनों के, यह काफी है चन्द सतर॥१२

दो०—पुनि बोले गुरुदेव जी, का समझ्यो हे तात।
प्रेमाधीन सो मगन मन, पंडित बोले बात॥

* पंडित बचन *

शील सदन नाशक मदन, त्रास हरन भ्रम भान।
अब जान्यों पारख प्रभुहिं, सदगुण सिन्धु सुजान॥
कर्त्ता दूजो भूल से, तौ का अद्वै मूल।
भूमा ब्रह्म स्वभाव जग, द्वैत त्रिकाल न कूल॥

❀ गुरु उत्तर भजन ❀

ब्रह्म अद्वैत कहत ज्ञानी जन, भीतर द्वैत दिखावत हो॥
बंध मोक्ष औ दुख सुख केहि को? श्रुति त्रयकाण्ड दृढ़ावत हो।

प्रतिघट में इक सत्ता आतम , घट उपाधि बतलावत हो ॥
रूप रेख नहिं जाहि ब्रह्म को , तो उपाधि केहि गावत हो ।
स्वजाति बिजाति औ स्वगत भेद से, रहित ब्रह्म बतलावत हो ॥
अध्यारोप[१] अपबाद[२] कल्पना , ईश जीव किं भावत हो ।
पंच भेद गत सच्चिद आनन्द , माया कहाँ सुझावत हो ॥
जेहि जग को मिथ्या नित गावत , तेहि उपमा किमि लावत हो ।
जो स्वभाव से ब्रह्म जगत इक , तौ का रोग छुड़ावत हो ॥
जड़ चेतन गुण धर्म अबाधू , सो किमि एक रहावत हो ।
केहि आश्रय में भूल भरम हो , रवि में तम बतलावत हो ॥
प्रति घट द्रष्टा अमित स्वतः जिव , अद्वैत बितण्ड बढ़ावत हो ।
ब्रह्म जगत दोउ भास जान कर , पारथ स्वतः रहावत हो ॥

* कवित्त *

बर बर[३] एक ब्रह्म गगन से निःकर्म,
जर जर[४] जग भर्म भर भरमावते ।
अर्थ[५] अद्वैत आहि गर गर[६] ग्रन्थ काहे,
पर पर[७] पंथ काहे रार रार[८] खावते ॥
बाल बाल व्याप कहे बर बर बंध लहे ,
निर निरबान[९] कौन मन मन[१०] गावते ।

टि०–१–मिथ्या आरोपण, ब्रह्म में मिथ्या जगत का भास । २–मिथ्या का निषेध, ब्रह्म में जगत का निषेध । ३–श्रेष्ठ । ४–मूल अविद्या । ५–आरम्भ बाद । ६–बहुत बहुत । ७–भिन्न भिन्न । ८–द्वेष । ९–मोक्ष १०–मनः कल्पित ।

तर तर१ तीन पाँच गत२ बिद काहे बद,
इमि अद्वैत नाहिं गुरु परखावते ॥

* शिष्य प्रश्न *

दो०—श्री गुरु कृपा कटाक्ष से, अद्वय स्वप्ना भास ।
पुनि जड़वादी कहत कुछ, सोऊ मेटिये त्रास ॥

छं०—विकाश मानत जक्त का कोइ प्रकृति जड़ की शक्ति से ।
दो गैस३ मिलि के शक्ति बहु उत्पत्ति नेचर४ शक्ति से ॥
आदि में सब उष्ण रवि सो क्रम से शीतल भू भया ।
वायु मिलि जल कीट बहु पुनि सृष्टि सब विकशित भया ॥

* गुरु उत्तर *

छं०—विष्णु नाभि से भो कमल पुनि पद्म से ब्रह्मा भयो ।
ब्रह्मा रच्यो सब सृष्टि को या ईश इच्छा रच दयो ॥
ये सब कहैं वे झूठ फिर तो आप वैसे हाँकते ।
आदि में ज्वाला सकल को देखिया केहि ठाम ते ॥१॥
अनुभव बिना अनुमान करि रज्जु सर्प वत भ्रम मानते ।
कार्य कारण तत्त्व मिश्रित विविधि वस्तु प्रमानते ॥
हानि लाभ को मानि द्रष्टा आप भिन्न रहावते ।
चारों को लेकर युक्ति से सीमित हि वस्तु बनावते ॥२॥
गो गोचरैं जो दृश्य भूत हैं ज्ञान हीन लखावते ।
योग्य योग्य को मेल गुण पुनि कहुँ अयोग्य न लावते ॥

टि०—१ तीन सत्त । २ पंच भेद रहित । ३ शक्ति । ४ बिकास मूल प्रकृति जड़ शक्ति तिससे जीवाजीव दोनों उत्पति माने हैं ।

अण्डज व पिण्डज उष्मजौ मानुष्य जैसे पूर्व से ।
आज तक सम्भव वही पशु से मनुज ना पूर्व से ॥३॥
जड़ अंकुरज से जीव सृष्टी पूर्व में विकशित भया ।
तो आज क्यों हो खानि खानि से कुछ बिचारोगे न क्या ?
जो शक्ति उसमें थी नहीं तो वह कहाँ से आ गई ।
जो शक्ति उसमें ही रही तो क्या प्रगट होवे नई ॥४॥
जो अभाव से भाव हो तो शुन्य वृक्ष जमाइये ।
आग पीकर जल डसा कर भूमि वायु बनाइये ॥
वृक्ष से मानुष कलम करि मनुष चींटि बनाइये ।
ये सब असम्भव बात है परतीत केहि विधि लाइये ॥५॥
एक में हि विरोधि धर्मी शक्ति भी होती नहीं ।
सूर्य तम का रूप हो या वायु होवै महि कहीं ॥
एक में ही शक्ति सब है की अनेक में मानते ।
एक की ही शक्ति सब तो एक बस्तु प्रमानते ॥६॥
सापेक्ष बिन चैतन्य जड़ के कौन काहि को जानते ।
भिन्न धर्मी जग्त क्यों फिर आग पानी मानते ॥
जो अनेक में शक्ति तो वह शक्ति का रूपै भया ।
फिर एक बस्तू वन सकै नहिं शक्ति गुण से भिन्न या ॥७॥
जेहि मेल से जो हो सकै सम्भव वही होतै रहा ।
फिर उसी में शक्ति वह कारण व कारज जड़ रहा ॥
एक में साधक व बाधक हानि लाभ न बनि सकै ।
चैतन्य औ जड़ सृष्टि दो के भिन्न शक्ति न दिख सकै ॥८॥

जो कहो सब झूँठ है तो क्या तुम्हारी साँच है।
तुम भी उन्हीं के हो कुटुम्बी दैव देव्रि जो राँच है॥
हानि लाभ रु अपन पर तुम भी अहर्निशि मानते।
इक दोय वस्तू योग्य मेल से रचि वृथा अभिमान ते॥ ९॥
उन्माद वश कहने लगे वहु कल्पना मन मान से।
जो शक्ति वह सीमित व नीयम बद्ध हद स्वभाव से॥
तो व्यर्थ सब परिश्रम है हो आप से हि स्वभाव से।
जड़ स्वभाव से मानिये तो को परीक्षक चाव से॥१०॥
मन इन्द्रियों के द्वार से सब संस्कारहिं को गहै।
त्यागै गहै को सोचिये नित भिन्न इससे सो अहै॥
जो अनीयम शक्ति हो तो फिर असम्भव क्यों न हो।
अग्नि से नर शुन्य से घर त्वक लखे क्यों ना कहो॥११॥
तीन काल में शक्ति इक या चल बिचल नित होय है।
हेतु क्या है कौन वह किससे कहै को जोय है॥
सब तो वही फिर द्वेष क्यों पुनि राग एक स्वभाव हो।
अनुकूल औ प्रतिकूल क्यों पुनि भाव और अभाव हो॥१२॥
उन्माद ज्ञान सु है यही संसार सब जहँड़ाय है।
इसको भले पारख करे सो भाग्यवान सदाय है॥
हे बन्धु क्या परमाण है जो आदि में उत्पत्त सब।
प्रत्यक्ष अनुभव लेय कर दृष्टान्त होते सिद्ध सब॥१३॥
भू अग्नि जल वायू पृथक गुण भिन्न भिन्न देखाय है।
सो एक से कैसे भयो बिन अन्य क्या ठंढाय है॥

है चतुर्थीकरण तत्त्व जु एक दो किमि रह सकै।
योगौ वियोग हो एक में किमि अग्नि से का बनि सकै ॥१४॥
विपरीति के संयोग से विपरीति अब दीखै नहीं।
बादलों से मनुज बरसैं कीट से हाथी कहीं?
विज्ञानि जन क्या एक तत्त्व से कार्य कुछ भी कर सकैं।
चारों को लेकर कार्य सब पाँचो विषय ही गहि सकैं ॥१५॥
जहँलो कठोर सो धरणि गंध व शीत जल सो रस रहा।
उष्ण अग्नी रंग जहँ तक बात कोमल पर्श हा॥
इनको निकारि के गैस विद्युत की कहाँ स्थिति रही।
पाँचो विषय चौ भूत धरमी अग्नि जल हो इक कहीं ॥१६॥
तत्त्व सृष्टी भिन्न जैसे शक्ति जड़ गुण धर्म से।
पंच विष के अन्दरै सब कार्य कारण मर्म से॥
जीव सृष्टी भिन्न तैसे सर्व ज्ञाता आप है।
न्यायक परीक्षक भिन्न बिन त्यागै गहै को जाप है ॥१७॥
कुठार वत औजार इन्द्री सूक्ष्म जड़ स्थूल है।
कर्त्ता यही चेतन अहै निज भूल से सब शूल है॥
शूल हटने के लिये चैतन्य जड़ निरुवार कर।
औसर मिला है नाव भी चढ़ शीघ्र भवनिधि पार कर ॥१८॥
दो०—शक्ति धर्म बिन शुन्य से, शुन्यहि करि संयोग।
वन्ध्या सुत का रचि सकै, वस्तु बिना केहि योग॥
वस्तु त्यागि संयोग केहि, शक्ती गुण दरशाय।
शक्ति सहित वस्तू सकल, योग वियोग रहाय॥

गुण शक्ती रहि बस्तु की, तो वह बस्तु अनादि ।
जड़ चेतन गुण धर्म युत, सोइ सम्बन्ध रहादि ॥

* लावनी *

नेत्रै देखी जो वह मानै तो रस शब्द न पर्श लहै ।
जौ रस शब्द स्पर्शौं मानै तो रूपै क्यों साँच कहै ॥
अग्नि जलावै जल शितलावै वायु उड़ावै भू न दबै ।
वायु अदृश्य दृश्य हैं तीनों चारों भिन्न सु एक कबै ॥ १ ॥
सब को एकै तत्त्व कहै तो जल ही से सब काम करै ।
औरौ तत्त्व कि लगै जरूरत तो जानो नहिं एक खरै ॥
भिन्न भिन्न जिमि तत्त्व अहैं तिमि चेतन भिन्न निराला है ।
यह जल यह भू बात अगिन यह पृथक से कहने वाला है ॥ २ ॥
पर प्रत्यक्ष दृश्य जड़ जानो स्वयं प्रत्यक्ष ये आला है ।
प्रोक्ष प्रत्यक्ष अनुमान कल्पना यह ही भनने वाला है ॥
त्यागत गहत त्रिजाति वस्तु को सुख दुख मानन वाला है ।
नेत्र न उसको देखि सकै वह खुद ही देखन वाला है ॥ ३ ॥
जीभ न उसको चीख सकै वह सब को चिखने वाला है ।
पर्श न उसका होय सके वह सब को पर्शन वाला है ॥
गंध में कैसे आवै प्यारे वह तो सूँघन वाला है ।
शब्द में कैसे धारण होवै शब्दोच्चारण वाला है ॥ ४ ॥
पाँचो विषय मात्र हैं सनमुख तिनको जानन वाला है ।
द्रष्टा साक्षी ज्ञाता ध्याता चेतन समझन वाला है ॥

मन बुधि इन्द्री चित्त प्राण जड़ सब को लखने वाला है ।
मस्तक नाभी स्वप्न सुषुप्ती इनको ध्याने वाला है ॥ ५ ॥
कोटिन स्वप्न सुषुप्ती जागृत तजने गहने वाला है ।
बालक वृद्ध जवानी में सो इक रस रहने वाला है ॥
अहं अहं सब ले के बोलत भूल में धँसने वाला है ।
भूल को कारण सुखाध्यास है तिसमें फँसने वाला है ॥ ६ ॥
जब दुख तिसमें देखि परै तब सब से हटने वाला है ।
द्रष्टा दृश्य माहिं कस आवत तू सब लखने वाला है ॥
जानि स्वयं अपरोक्ष आप को तू सुख पाने वाला है ।
पाँचों स्वाद के हंता गहि के तू दुख पाने वाला है ॥ ७ ॥
नर पशु अण्डज उष्मज खानी गो मन गहने वाला है ।
इच्छा यतन अवस्था सुख दुख मन वश चलने वाला है ॥
स्वतः स्वरूप देश को तजि के जहँ तहँ भटकन वाला है ।
तू अब भिन्न करै खुद निज को हो जा शीघ्र निहाला है ॥ ८ ॥

दो०—जड़ चेतन से भिन्न कोउ, कर्त्ता कारण मानि ।
कहत सबै सो भूल पथ, जस उपमा यह ठानि ॥

❀ दृष्टांत ❀

गप्पी के घर गप्पी आये । मद वश बातैं बहुत बढ़ाये ॥
मोरे गृह इक सरसों बिरवा । चौंसठिमनसो नित प्रति झरवा ॥
दूसर बोला झूँठ है तोरा । कहँ सुनौ साँची है मोरा ॥
नदी एक मम गाँव के तीरा । कोस एक तेहि फाँट सु नीरा ॥

मिर्चा एक धरा तेहि उपरै। सरिता सेतु जानि सब उतरै॥
नर पशु गाड़ी आवै जावै। नेक न मिर्चा कबहुँ डिगावै॥

दो०—पहिला गप्पी कहत भौ, मिर्चा इतना लम्ब।
कहँ पायो लाग्यो कहाँ, बड़ अचरज कहु कम्ब॥

वह बोला तब सरसों जहवाँ। मिरचा बृक्ष रहै मम तहवाँ॥
नहि प्रीतीति तो जाय के देखो। सुनि के इतना चुप्प बिशेखो॥

दो०—पुनि बोला इक कोठरी, इतनी लम्बी मोर।
दुनियाँ भर के पशु सकल, तेहि महँ रहत सजोर॥

हाथी घोड़ा पशु हैं जेते। रहत सकल तहँ चैन भरे ते॥
पुनि दूसर बोला मम खेती। जब झूरा तहँ परै लखेती॥
इक लग्गा बड़ आहै मोरे। तेहि उठाय बादल कहँ फोरे॥
भर भर पानी टपकन लागै। खेती तुरत सो हरियर जागै॥

दो०—पुनि वह कह्यो कि मीत तुम। इतना लम्बा बाँस।
कहाँ धरत तब वह कह्यो, तब गृह के बिच खास॥
देखो दोनों बतबढ़ा, बातन केरो लाम।
भ्रम वश तैसों जीव सब, हाँकत झूँठ तमाम॥
आरम्भ[१] परिणाम[२] बिकाशहूँ, जड़ चेतन दोउ मेलि।
जस अनुभव बर्तमान में, तैसे नित्य रहेलि॥
सो निर्णय पद छोड़ि के, बृथा करत अनुमान।
बिन गुरु पारख दृष्टि के, ठौर बस्तु न ध्यान॥

टि०—१-उत्पत्ति। २-रूपान्तर-बिड़गना बनना।

जस बिकाश[१] अब होत है, तस माने का दोष।
वृथा कल्पना करत नर, काहे करत है रोष॥
याते निर्णय भाव जेहि, होय न चित्त अटूट।
ताहि न निर्णय मढ़िय शिर, मढ़े तो द्वेष हो फूट[२]॥
साँची श्रद्धा धारि के, दुखमय जगत पिछान।
सत्य हेतु सत्संग कर, तेइ निर्णय पद जान॥

* भजन *

जगत अनादी जानो रे॥ टेक॥
बीज कि बृक्ष कर्म की देही, नरकी नारि आदि कहु केही।
है प्रारब्ध कि यतन लखेही, एक दूसरे बिन हानो रे॥१॥
याते उभय अनादि प्रवाही, जड़ चेतन की शक्ति सदाही।
कर्त्ता कारण और न आही, उभय शक्ति दिखलानो रे॥२॥
जड़ की शक्ति जड़हिं तकजावै, त्रिविधि कार्य जड़रूप दिखावै।
क्रिया शक्ति गुण कारज कारण, पंच विषय बिलगानो रे॥३॥
इन्द्रिन द्वारे पाँच को ज्ञाना, पाँचो दृश्यभूत जड़ जाना।
ज्ञाता आर जु सबहिं पिछाना, सबसे भिन्न रहानो रे॥४॥
भूल से ग्रन्थि ग्रन्थि से भूला, बिन पारख सो पावत शूला।
परखि पृथक ह्वै शांति समूला, सो गुरु शरण गहानो रे॥५॥

* सवैया *

नेत्र औ नेत्र से रूप को देखत नेत्र न देखि सकै जेहि को रे।
कान रु कान से शब्द को लेखत शब्द न आवत शब्दी है जो रे॥

टि० — १–क्रमशःवृद्धि। २–पुष्ट।

घ्राण रु घ्राण से गन्धको सूँघत गन्ध को देखत भिन्नहिं सो रे।
पर्श त्वचा रसना रससो लहि गो गुण पंच को ज्ञान करो रे ॥१
आँखि तो कान से देखि सकै नहिं कान तो नाक को जानत नाहीं।
ऐसे प्रकृति सबै मन प्राण गो जानैं नहीं निज औ पर काहीं॥
पाँचो के द्वार से जीवहिं जानत त्यागत रागत जो सब आहीं।
दृश्य मनोभव भास अहं तज्ञु द्रष्टा स्वयं परकाश सदाहीं ॥२

* गजल *

जगत ये अनादी रहाया हुआ है,
नहीं ये किसी का बनाया हुआ है। टेक०॥
जड़ और चैतन्य संतत अनादी,
नहीं और कर्त्ता लखाया हुआ है॥
उभय मेल भी है अनादी ये जानो,
स्वतः सिध हो खर दुखाया हुआ है॥
जितनी हैं पोथी कलायें जगत में,
वो जिव की कलायें रचाया हुआ है॥
नहीं और कोई ये जीवन फँसाया,
वो विषयोंमें खुदही भुलाया हुआ है॥
गुरु पारखी से जो निर्णै न लिन्हा,
वो सद्बोध रंचक न पाया हुआ है॥
जिसे भोग ऐश्वर्य हंताकि ख्वाहिश,
उसे ज्ञान भक्ती न भाया हुआ है॥
बिना ज्ञानऔ भक्ति के बोध कैसे,

बिना बोध के दिल जलाया हुआ है ॥
यदी प्रेम तुमको हो मुक्ती की बांछा ,
तो सतसंग को कर बताया हुआ है ॥
दो०-ऐसो गुरु पथ त्यागि के , जो लोभै कहुँ और ।
काल जाल वश दुख सहै , खानि बानि में दौर ॥
इमि निर्णय के वचन सुनि , हरषे सब जिज्ञास ।
कहो कौन गुरुदेव सम , परखावैं जो भास ॥

* भजन *

बिना गुरु परख के सदा मैं दुखारी ।
रहा साँच अमृत भरम वश अनारी ॥टे०॥
काशी व बद्री गयाजी नहाये ।
किये देव दर्शन बिरह तन बढ़ारी ॥१॥
गोबिन्द माधव सहस नाम लीन्हें ।
हुई दर्श आभा मनोभाव कारी ॥२॥
जो दीखे वो नश्वर भई फिर ये शङ्का ।
लगाया निराकार में लव अपारी ॥३॥
सोहं व त्रिकुटी सुना शब्द अनहद ।
दिखी ज्योति चकमक निरंकार सारी ॥४॥
भई शुन्य वृत्ती सुषुप्ती तहाँ पै ।
जगे फिर जगत चक्रका मूल जारी ॥५॥
जगत ब्रह्म औ ब्रह्म से जग्त रहटा ।
भया रोग पुष्टी न सूझे अँधारी ॥६॥

जड़ाध्यास वश नीच ऊंचे बहूँ मैं।
त्रिविधि ताप भोगूँ अनाश्रय सदारी ॥७॥
मनोमय कि धारा में बहते हि बहते।
एकाएक मिलि के परख प्रभु सँभारी ॥८॥
अहेतुक कृपा कर सकल की परीक्षा।
दिये दास को दान निर्भय कियारी ॥९॥
जो सब का परीक्षक सो सब से है न्यारा।
है पारख स्वरूपी सकल दृश्य टारी ॥१०॥
जो रक्षक गुणों युत सदा प्रेम उर में।
बसैं गुरु परख नित्य विनवों पुकारी ॥११॥

* गजल *

गुनः बन्दा खड़ा सन्मुख, क्षमा के गर्ज शिर नाये।
न फेरो दृष्टि गुरु हम से, शरण में आप के आये ॥टेक॥
प्रथम तो आप के पद को, न जाना कुछ भि हे स्वामी।
महा उन्मत्त विषयों में, किये बहु पाप मन भाये ॥ १ ॥
पुनः जब आप दर्शन भे, दयासिन्धू मिले हितकर।
प्रबल पारख स्व दृष्टी से, सकल भ्रम जाल परखाये ॥ २ ॥
मुँदी आँखैं खुलीं कुछ कुछ, सुझे जब आप पद श्रेयस।
तभी से दौड़ कर पकड़ा, चरण गुरु भाग्य वश पाये ॥ ३ ॥
मगर प्रारब्ध पूरब की, जो कुछ ऐसा कि भव मारग।
वो बारम्बार खींचै है, विषय में मोह मन जाये ॥ ४ ॥

प्रभो भव में गिरे देखो, वो शिशु कमजोर पैरों से।
पकड़ कर खींच लो जल्दी, सदा ये प्रेम गुण गाये ॥ ५ ॥

सो०—हित साधन सु सफल्य, भयो सफल देही धरब।
बोध मिल्यो जु अटल्य, सफल मूल गुरु परख मिलि ॥

दो०—अस कहि सत शोधक सहित, सब जन नौमि त्रिबार।
निज निज आश्रम सब चले, धरि शिक्षा उर सार ॥

छं०—यहि भाँति नित प्रति सतकथा गुरुदेव जू कहते रहैं।
हे सत्वतनु जिज्ञासु जन सादर तहाँ सुनते रहैं ॥
सतलोक संत समाज यहि जहँ बैठि अक्षय पद लहैं।
दारुण मनोमय विघ्न दलि धनि गुरु कथा जे नित कहैं ॥

सो०—मित्र कहै कर जोरि, मोह सर्प विषसे त्रसित।
मृतक जियाय बहोरि, बूटी विषहर गुरु बचन ॥

* बन्दना *

गुरु कृपाल नमों नमों, गुरु विशाल नमों नमों ॥टेक॥
परख रहनी परख गहनी, परख कहनी नमों नमों ॥१॥
लक्ष बानी जाल खानी कर के हानी नमों नमों ॥२॥
एकांत बासी जग निराशी मद विनाशी नमों नमों ॥३॥
नहि राग द्वेषी बुधि प्रवेशी तम न लेशी नमों नमों ॥३॥
रहनि रमता सहनि समता कहनि कमता नमों नमों ॥५॥
सत्य ज्ञानी अति अमानी दे निशानी नमों नमों ॥६॥
दूरदरशी चित अकरषी बोध बरषी नमों नमो ॥७॥

उर में मेरे बास करे धन्य तेरे नमों नमों ॥८॥
प्रेम प्रेमी शांत नेमी शुद्ध क्षेमी नमों नमों ॥९॥

* त्रिविधि भूल निवारण *

दो०–एक समय गुरुदेव जू, बैठि रहो सुखकन्द।
बहु सिद्धांत से ग्रसित इक, प्रश्न कियो स्वच्छन्द॥
ईश्वर है या नहीं है, तेहि उत्तर गुरु दीन्ह।
नहिं समझाये समझिया, उलटि प्रश्न गुरु कीन्ह॥
ईश कहाँ? क्या? कैसे है? इच्छा कैसे कीन्ह।
है अपूर्ण या पूर्ण? तो, जगत कहाँ रचि दीन्ह।
क्यों? कब? कासे कहँ रच्यो? अनमिल काहे रचाय।
सम औ विषमक हेतु क्या? सोचि विचारो भाय॥

* बिस्तार गद्य *

ईश्वर ने पाँच तत्त्व अनन्त जीवों को बनाये काहे में से थे? क्योंकि उपादान सामग्री बिना कुछ नहीं बन सकता। यदि कहो पाँच तत्त्वों के परमाणु नित्य हैं, उनको मोटा करके सब कुछ बना लिया, तो विचारो क्यों बनाया? यदि कहो जीव पदार्थ अनादि है और उसके कर्म भोग भी अनादि हैं कि जिनके भोगने के लिये ईश्वर ने परमाणु समूह मिला के स्थूल किया और जगत रच लिया। सो जगत कई बार उपजा और उपजता बिनशता रहेगा, तो बताओ जब ईश्वर के रूप रेखा और इन्द्रियाँ नहीं हैं तो वो जगत कैसे रचेगा? यदि कहो अपनी शक्ति से, तो उसको बहुत खण्डन करते हैं तथा तमाम

मनुष्य उसके विरुद्ध काम करते हैं और तमाम पापकर्म अन्याय अनीति दुनियाँ में हो रहा है, तो ईश्वर की अब सर्व शक्तिमानी कहाँ चली गई ? न्यायपना दयालुपना कहाँ गया ? क्या कभी शक्तिहीन भी हो जाता है ? यदि कहो मेरी बुद्धि तुच्छ है इस लिये आप के पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता ?? परन्तु ईश्वर का होना इस युक्ति से मैं सत्य मानता हूँ कि जगत के समस्त वेदादि ग्रन्थ ईश्वर ही की वाणी हैं, तो हम पूछते हैं कि वेदादि ग्रन्थ किस ईश्वर का कथन है, कि जिसका होना अब लौं सिद्ध नहीं भया ? उसका कथन हम कैसे किसी ग्रन्थ को मान लें ? यदि कहो मनुष्य की बुद्धि तुच्छ है, उस महान परमेश्वर के ब्यौहार को कैसे समझें, कि जगत कब बनाया और काहे में से बनाया है, तो फिर इस मनुष्य के तुच्छ बुद्धि से कैसे जाना गया कि ईश्वर ने जगत को बनाया है और क्यों मान लिया कि ईश्वर है ? यदि कहो जगत की उत्पत्ति के लिये ईश्वर माना है तो सुनो ! घट-पट पर आदि विविधि कार्य मनुष्यों के बनाये से बनते हैं । और अनन्त जीवों की देहैं कर्मानुसार चार खानियाँ अनादि रहने से समय योग्य माता पिता के सम्बन्ध तथा भूमिका के सम्बन्ध से बन कर सुख दुख का भोग बासना वश होता है । और सर्व बृक्ष अपने २ बीजों में से और सर्व बीज अपने २ बृक्षों में से प्रवाह रूप अनादि से होते ही आये हैं। और तीन काल आदि सब विराट के कार्य चार तत्त्वों से होते हुये देख ही पड़ते हैं और चार तत्त्व भी स्वतः ही अर्थात्

अनादि ही सिद्ध हैं। तत्त्वों का द्रष्टा चेतन भी नित्य अखण्ड अनादि परीक्षक जान मान रहा है। अब उस पदार्थ का नाम लो जो ईश्वर ने उत्पन्न किया व करता हो। जो कहो बड़े बड़े वेद ज्ञाता विद्वान एक सभा में इकट्ठे किये जायँ तो वे सब ईश्वर का होना प्रबल युक्ति से निर्णय कर देंगे। तो ऐसा कहते जरा भी संकोच नही आता ? जब कि बड़े बड़े विद्वान मनुष्य इकट्ठे होकर ईश्वर का होना निर्णय से सिद्ध करेंगे तब तो बिचारे ईश्वर की सिद्धी होगी, नहीं तो असिद्ध ही रहेगा। सोचिये ! कहाँ ईश्वर को हम सब जीवों का न्यायकर्त्ता कहते हैं। और कहाँ उसके सिद्धी होने के लिए हम सब मनुष्य बाद बिवाद करके निर्णय करें। तब तो ईश्वर का न्यायकर्त्ता ये मनुष्य जीव सहज ही श्रेष्ठ हुये। ईश्वर है या नहीं, ऐसी शंका करने के पश्चात् ईश्वर प्रतिपादक चुप रहें और निषेधक भी चुप रहें दोनों का बयान ईश्वर न्यायक सुन लिया होगा ! अब जो ईश्वर व्यापक अपना होना अभी न्याय कर दे तब तो ईश्वर यथार्थ ही है। और यदि हम सब मनुष्य मिल के ईश्वर के बारे में बाद बिबाद नाना तर्क करें तो जानो कि ये मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ है क्योंकि कानून से कानूनी हमेशा बड़ा होता है। उसीको ऐश्वर्य युक्त ईश्वर भले मान लो।*

नोट—पारख प्रेमियों को चाहिये कि जिसकी संगति अधिक न पड़ने वाली हो या पक्ष और मद छोड़कर जो सत्य शोधक न हो उसे उसके सुधार हेतु ईश्वरादि मानन्दी सहसा निषेध न करें, हां ! उसी

* जिज्ञासु वाक्य *

हे गुरो ! यदि परोक्ष ईश्वर किसी प्रकार से दूसरा नहीं सिद्ध होता है तो अपरोक्ष अद्वैत ब्रह्म निश्चय सत्य ही है। शुद्ध ब्रह्म के आश्रय अविद्या से जगत सब भ्रांति मात्र भास है वास्तविक एक ब्रह्म चेतन ही है दूसरा कोई पदार्थ नहीं, यह अद्वैतवाद वेदान्त में विस्तृत सिद्ध है।

❀ अद्वैतवाद पर विचार—गुरु वाक्य ❀

प्रश्न--१-चेतन एक शुद्ध अखण्ड में सामान्य विशेष दो कैसे ? २-चेतन अज्ञान कल्पित है सो अधिष्ठान का स्वरूप ही है सो दोनों एक स्वरूप होने से आप अपने को आवरण कैसा ? ३-अज्ञान आवरण शुद्ध चेतन में है उपदेश प्रतिबिम्ब को सो कैसे ? ४-पांच तत्त्व और चेतन से माया नहीं तासे भिन्न माया का स्वरूप क्या है ? ५-जाको अद्वैत बोध हुआ, सो अद्वैत कहै कासे ? ६-चेतन ब्रह्म अलिप्त है, तत्त्वों का उसमें स्पर्श नहीं तो फिर चेतन अज्ञान का साधक बाधक कैसे ? ७-ज्ञानी

के आधार से उसको शुद्ध साधन या धर्म मार्ग की पुष्टी कर देवें ताकी उसकी हानि न हो। हां ! यदि वह परम पद के विरही जिज्ञासु शोधक जग से उपराम और अधिक संग पड़ने वाला दीखे तो अवश्य उसे सब जाल परखा देना चाहिये और उसे ही पारख सिद्धांतिक ग्रन्थ देना चाहिये। यदि वह पारख सिद्धान्त भी न समझा और ईश्वरादि में भी शंका हो गई तब तो—"इधर के रहे न उधर के" "दुइ मड़वा के श्वान ज्यों, झांकत परा उपास" वाली दशा हो जायगी, इससे शिक्षा दीक्षा देने लेने में सावधान !

की दृष्टि में दूसरा चैतन्य है नहीं और जगत प्रपंच भी नहीं है फिर उपदेश किसको ? ८—सफेद स्फटिक पत्थर पर बड़े लाल फूल की दमक पड़ने पर प्रतिबिम्ब होता है उसी फूल के समान चेतन जो कूटस्थ है ताही का प्रतिबिम्ब अथवा चेतन ब्रह्म का प्रतिबिम्ब और बुद्धि व व्यष्टि अज्ञात संयुक्त जीव कहा है परंतु वही अभास अंश कर्म करै है और फल भोगै है, चेतन से कोई तालुक नहीं, तब तो प्रतिबिम्ब भिन्न भोक्ता कर्त्ता ! और चेतन भिन्न अभोक्ता " दोनों को एकता कैसे करिये " क्यों ? किसके लिये ? ९—जड़ चेतन या माया ब्रह्म दो हैं या एक ! जो दो हैं तो अद्वैत का उपदेश मिथ्या ? जो अद्वैत है तो वेदांत सिद्धांत की अधिकाई क्या ? १०—बोध करना प्रकृति में है या चेतन में ! जो प्रकृति में, तो प्रकृति जड़ है। जो चेतन में कहोगे, तो एक निर्लेप अखण्ड है, दोनों का सम्बन्ध माना नहीं। ११—चेतन एक है या अनेक ? एक, तो उपदेश मिथ्या। अनेक, तो सिद्धांत मिथ्या। १२—जगत मिथ्या है या सत्य ? जो मिथ्या तो उपदेश मिथ्या। जो सत्य तो द्वैत। १३—एक व्यापक निराकार निर्लेप में शंका समाधान ठीक है या नहीं ? जो ठीक है तो कैसे ? नहीं ठीक है, तो क्यों करना चाहिये ॥ इत्यादिक ॥

दो०—मृग तृष्णा का तोय अरु, बांझ पुत्र को न्याय।
　　अस विचार वेदान्त का, अन्त कछु न लखाय ॥

* जिज्ञासु प्रश्न *

हे गुरो ! यदि ईश्वरवाद ब्रह्मवाद खण्डनीय है तो सब

तत्त्व प्रत्यक्ष प्रतीत होते हुये इन्हीं के गुण धर्म मेल से सर्व कार्य होते हैं और चेतन भी तत्त्व ही के मेल से प्रतीत होता हुआ देख पड़ता है। तत्त्व क्रिया विशेष संयोग से विविधि प्रकार बस्तु बन कर क्रिया हो जाती है, जैसे जल वायु आदि से बुदबुदा की उत्पत्ति और चूना हल्दी मेल से लाली की उत्पत्ति, बीज वृक्षादिक अनेक कार्य तत्त्व कारण से बिलक्षण हो जाते हैं। बस इसी तरह चेतन की उत्पत्ति होती है। यह जड़ बाद नास्तिक ग्रन्थों में बिस्तारित है। अतः चेतन क्या है, कैसा है, कृपया इसका भेद कहिये ?

* गुरु उत्तर *

क्या तू ईश्वर ब्रह्म देव देवी खण्डन सुन कर अपरोक्ष सत्य चेतन जीव को भी खण्डन समझ लिया ? जैसे आकाश गुण धर्म से रहित शुन्य है उसी प्रकार क्या चार तत्त्व गुण धर्म क्रिया वालों को भी तू शुन्य मान लेगा ? हरगिज नहीं। चार तत्त्व गुण धर्म वाले शुन्य कैसे हो सकते हैं। तैसे ईश्वर ब्रह्म देवादि नर जीवों के कल्पे हुये कल्पना मात्र शुन्य हैं तो क्या सर्व कल्पनाओं का कर्त्ता चैतन्य जीव भी शुन्य हो जायगा ? यदि सर्व पदार्थ शुन्य ही मानो तो शुन्य अभाव से भाव रूप जड़ चैतन्य दोनों के भिन्न भिन्न क्रिया गुण धर्म होना महा असम्भव है। जैसे बंध्या सुत अभाव से कोई भाव रूप क्रिया कार्य नहीं होता, तैसे शुन्य से कोई भाव रूप क्रिया कार्य नहीं हो सकता, अतः चार तत्त्व स्थूल सूक्ष्म रूप कभी शुन्य नहीं हो सकते।

इसी प्रकार चैतन्य न तो ईश्वर वत कल्पना हो सकता है न तो जड़ हो सकता है क्योंकि कल्पना का कर्त्ता कल्पना नहीं हो सकता और जड़ का जनैया कभी जड़ नहीं हो सकता। क्या तू बाहिरी जड़ तत्त्वों से विविधि कार्य होता हुआ देख कर चेतन की भी उत्पत्ति जड़ से मान लिया ? क्या तू रात्रि के बाद सूर्य निकलने से सूर्य की उत्पत्ति अँधेरे से मान लेगा ? ये तेरी भूल दृष्टि है और नास्तिकों के संगति का कारण है सो तू पक्ष और मोह त्याग के सुन ! जड़ से चेतन की उत्पत्ति हो सकती है, ऐसा हमने कभी नहीं देखा। हमने क्या किसी ने भी न देखा होगा कि जड़ वस्तुओं के एकत्र होने से चैतन्य उत्पन्न होता हो। जड़ और चैतन्य सम्पूर्ण रूप से भिन्न धर्मी हैं। जड़ का जो धर्म है वह चेतन का नहीं औ चेतन का जो धर्म है वह जड़ का नहीं है। बारूद और आग के मिलने से एक शब्द होता है, घड़ी में कूक देने से एक प्रकार की क्रिया उत्पन्न होती है। क्षार और अम्ल के मिलने से बुलबुला उटता है, हल्दी चूना मिलने से लाली होती है। बीज वृक्षादि तत्त्व योग से हरे भरे रहते हैं, परन्तु सर्वत्र देखियेगा तो जहाँ वह शब्द, वह क्रिया, वह बुलबुला, वह लाली, बीज वृक्षादि उत्पन्न होगा वहाँ वहाँ एक ही प्रकार का होगा। मात्रा का तारतम्य होगा, परन्तु जाति भाव में कुछ भी भेद न होगा जड़ तत्वों के कारण से कारज में यद्यपि नाना विलक्षणता दीखती है तथापि केवल जड़ पदार्थ के मेल से जो जो पदार्थ क्रिया गुण या कर्म

उत्पन्न होते हैं वे कोमल कठोर शीत उष्ण पंच विषय जड़ के अन्दर ही रह जाते हैं उसमें दुख सुख का ज्ञान होना, वासना के वश रहना, इच्छा अनिच्छा ज्ञान युत कर्तव्य कुछ नहीं दिखाई देते। जब झगड़ा चलाने वाला मुद्दई न्यायक के सामने कुछ पेश ही नहीं करता तो गवाह क्या कर सकेंगे, न्यायक किसका न्याय करेगा? जब दृश्य जड़ तत्त्व कारण कार्य स्वयं जड़ हैं, विविधि कार्य बनते हुये भी अपने चैतन्य होने का कहीं भी कोई चिन्ह नहीं प्रगट करते तो जड़वादी भूले लोग उसके चैतन्य होने का गवाही साक्षी कैसे दे सकते हैं? यदि दें तो उनकी सरासर भूल है। मिले हुये जड़ पदार्थ सोच नहीं सकते न यह कह सकते हैं कि हम अमुक नियम पर चलैंगे। हम जड़ पदार्थों के भीतर हैं या नहीं हैं, ऐसा ज्ञान उसमें नहीं होता, इच्छा सहित क्रिया, सानन्दी, ज्ञान, सुख-दुख यत्न अवस्थादि जड़ में नहीं होते, यह अनुभव है कि जीवों के जैसे मन हैं, मिले हुये जड़ पदार्थों के वैसे कोई मन नहीं हैं, यही जड़ औ चेतन का भेद है। जड़ तत्वों के कारण कार्य का समवाय सम्बन्ध है, और एक दूसरे तत्त्वों से अन्य दूसरे तत्त्व का संयोग सम्बन्ध है और तिन्हों का मेल स्नेह व रसायन शक्ति से है। फिर घट बढ़ शक्ति से उनमें छिन्न भिन्नता है, तिससे तरह तरह के कार्य बन बन के बिगड़ते रहते हैं परन्तु तिनसे विलक्षण अर्थात् जीवों और तत्त्वों का समवाय सम्बन्ध व संयोग सम्बन्ध नही दीखता, किन्तु जीव और देह तत्त्वों से

सम्बन्ध तो मानन्दी मात्र ही संयोग देखने में आता है। काहे ते कि जिस वस्तु का ज्ञान होकर अन्तःकरण में जीवों को मानन्दी दृढ़ है वा पूर्व बासना हृदय में वसी है, उसी वस्तु का गो मन द्वारे मनन हो हो कर हानि लाभ सुख दुख जीवों को होता है।

और अपनी हैता की प्रतीति सब देहधारी जीवों में है इसलिये जड़ तत्वों का जानने वाला दूसरा पदार्थ चैतन्य जीव है। और जीवों के शरीर केवल रज वीर्य ही से बने, तो माता पितासे अनेक लड़कों की बुद्धि अनेक प्रकार व नाना प्रकार की न होनी चाहिये ? भिन्न भिन्न आचार विचार देश काल बुद्धि आदिक को रोज अनुभव करते हुये भिन्न भिन्न प्रारब्ध कर्म अवश्य ही मानना पड़ेगा। और जब प्रारब्ध कर्म मानो तो पूर्व के किये हुये इससे पूर्व जन्म की सिद्धी और अब आगे देह धरने की सिद्धी होती है। इसलिये दूसरा जीव कर्म वश रज वीर्य में मिलने से देह की उत्पत्ति सिद्ध है। देखो बासना वश अविनाशी देहधारी धीवों के लक्षण भिन्न ही हैं जीवों के शरीर का मेल एक एक जाति में एक ही प्रकार का है, परन्तु मन सर्बत्र भिन्न भिन्न है। एक बकरी के कई एक बच्चों की आकृति रोम, रंग, ढंग सब में एकता होगी परन्तु जब बकरी जुगाली करतीं है तो उस समय एक बच्चा कूदता है, एक सोता है और एक माता का अंग चाटता है। चारों के चार प्रकार के मन हुये। उनके शरीरों का मेल एक हुी प्रकार का है, परंतु मन की गति नाना प्रकार की। इसी से जान पड़ता है कि

जड़ तत्त्व और चेतन स्वतंत्र दो पदार्थ हैं। यदि जड़ तत्त्वों के मिलने से चैतन्य होता तो क्रिया भी सर्वत्र एक सी होती। जड़ वस्तुओंके तत्त्व गुण जानने से हम अपनी इच्छा के अनुसार कितने ही काम कर सकत हैं। हम जानते हैं कि अमुक अमुक जड़ पदार्थों के मिलने से अमुक फल होगा। यदि जड़ के भी ज्ञान होता अथवा जड़ वस्तुओं के मिलने से चैतन्यता औ ज्ञान उत्पन्न हो सकता तो हमारे विज्ञान वाले बाबुओं की विज्ञता कुछ भी न रहती। लोग रेल में चढ़ चुके हैं, घण्टी बज चुकी है, ड्राइवर ने कल का कान मरोड़ दिया है परन्तु कल का मन मचल खड़ा हुआ। ह सामने नहीं चलना चाहती है, कभी पीछे को भागती है, कभी दाएँ बाएँ चलने को बल करती है। यदि ऐसा हो सकता तो ड्राइवर की मिट्टी खराब होती और कल का कलपन भी कुछ नहीं रहता। कल को कितना ही समझाना होता, भय दिखाना पड़ता, जेल में भेजवाने की धमकी देनी होती। कोई कल सुशील होती और कोई उद्धत। अब जड़ चेतन का भेद तेरे समझने में आया होगा। अब तू किस द्वारे कहाँ पर चैतन्य जीव को देखना चाहता है देह से निराला तू जीव को कैसे देखैगा ? जैसे तत्त्वों के मिलने से चारों तत्त्वों का तू परीक्षा कर के भिन्न भिन्न नाम रक्खा है और भिन्न भिन्न पदार्थ माना है, फिर बिना किसी दूसरे तत्त्व के सम्बन्ध लिये केवल अग्नि व वायु आदि तत्त्वों के केवल परमाणुओं का तू परीक्षा कभी नहीं कर सकता। तो क्या सब तत्त्वों के

सम्बन्ध में अग्नि वायु आदि को भिन्न भिन्न पदार्थ मानेगा ? यदि मानता है तो तैसे ही जीव पदार्थ भिन्न रहते हुये भी अनादि काल से देह के सम्बन्ध में भ्रमता रहा है इसीलिये इसको देह संबंध ही में निर्णय कर के निराला समझना होगा। क्या तू जीव को पत्थर वा ईंट वा किसी जड़ तत्त्व कारण का कार्य समझ कर पकड़ना चाहता है ? तू अपनी मोटी दृष्टि को त्याग कर भितरी ज्ञान दृष्टि से देख, जैसे घट का देखने वाला घट से न्यारा रहता है, व पाँच अशर्फियों का परीक्षक पारखी पाँच अशर्फियों से निराला रहता है, तैसे तू पंच तत्त्व कारण कार्य देह रक्त वीर्य वायु आदि सर्व को तू जान कर निराला रहता है। इसलिये तू देह में सर्व का द्रष्टा जानमात्र है। देह में जहाँ तक तू जानता, मानता, देखता, अनुभव करता, वह सब दृश्य जड़ तेरे को कैसे जान सकते हैं। तू ही ज्ञेय दृश्य के आधार से खुद ज्ञाता स्वरूप रहता है। इसलिये तू अविनाशी ज्ञानमात्र व जानमात्र शेष है। द्रष्टा साक्षी परीक्षक जो है वह दृश्य में कैसे आ सकता है ? अब जो तू दूसरे जीव देखना चाहै तो जिस तत्त्व की जो इन्द्रियाँ हैं उसी तत्त्व के विषयों को ग्रहण करती हैं, तो क्या जीव पंच विषय है जो इन्द्री द्वारे देखने में आवे ? सब का जीव ज्ञान स्वरूप इन्द्रिय दर्शन रहित है उसको ज्ञान द्वारे ही लक्षणा कर के देहधारी जीवों में स्वतन्त्र ज्ञान देखकर समझ सकता है, कि ये चैतन्य जीव हैं। अगर कल्याण चाहता है, तो पाँच सिद्धांत ग्रहणकर—

* सत्यधारी के पाँच सिद्धांत *

१—सत्य को जानना, सत्य को मानना और सत्य का बखानना परम धर्म है। २—यह जगत स्वतः सिद्ध है, इसका कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं, उत्पत्ति प्रलय रहित अनादि है। ३—जितने ग्रन्थ मत पन्थ कलायें जगत में विद्यमान हैं सर्ब मनुष्य कृत हैं। सच्चा वेद शास्त्र सब के हृदय में है जिसको बिचार कहते हैं। ४—चार तत्त्व तिनके कार्य घट-पट घर और शुन्य आदि चार खानियों के देहादि सर्ब के जानने वाले कारण कार्य से रहित सब से न्यारे अविनाशी चेतन जीव हैं, इस प्रकार इन्द्रिय गोचर पंच विषय रूप दृश्य जड़ तत्त्व और तिसके जानन-हार द्रष्टा चेतन ये दोई पदार्थ हैं। ५—पंच विषयों की सुखाध्यास, खानी बानी में मुख्य स्त्री पुत्र धनादि और बानी में ईश ब्रह्म आदि जड़ तत्त्वों को निज स्वरूप मानना यही जीवों का मुख्य बन्धन है। ताको पारखी सद्गुरु का सत्संग कर के सर्ब सत शुभ गुणों को धार और सर्ब औगुण आसक्ति कुसंगति को त्याग कर माया जाल से स्वतन्त्र मोक्ष होने का प्रयत्न करै यही सर्ब मनुष्यों का कर्तव्य है।

* धर्म के दस लक्षण सब को ग्रहण करना चाहिये *

छं०—धृति क्षमा दम अस्तेय, शौच इन्द्रिय जीत लेय।
धी विद्या अरु साँच अक्रोध, दश धर्म* अंग गहहु शोध ॥

---

*अर्थ—(१) धृति—कैसी ही विपत्ति हो, तो भी धैर्य्य रखना और धारणाशक्ति को सदा बढ़ाते रहना (२) क्षमा—निन्दा

मानापमान, हानि आदि जितने क्रोध और दुःख के बढ़ाने वाले स्थान हैं, उनमें क्षमा (सहनशीलता) रखना। (३) दम—पापों में फँसाने वाले, इस चंचल मन को सदैव दमन करना अर्थात् बुरे कर्मों से हटा कर सत्यकर्मों में लगाना और अधर्म को ओर कदापि इच्छा न करना। (४) अस्तेय—मन कर्म वाणी से कभी चोरी और छल न करना। (५) शौच—शरीर को जल और मिट्टी से, मन को सत्य से, चैतन्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार दोषों के त्याग और सत्कर्मों के करने से और बुद्धि को ज्ञान से शुद्ध करना चाहिये। (६) इन्द्रिय निग्रह—दशों इन्द्रियों को अधर्म मार्ग से हटा कर सदैव धर्म मार्ग ही में लगाये रहना, और मादक द्रव्य कहिये तम्बाकू, बीड़ी, गांजा, चर्स, शराब आदि जितने नशा और दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि बुद्धि नाशक कुकर्मों से बचा कर सत्पुरुषों के संग औ सत्यासत्य के निर्णय में लगाये रहना। (७) धी—बुद्धि को अच्छे कर्मों में लगाना और इसकी शुद्धि के लिये यत्न करना। (८) विद्या-वेद शास्त्र पुराण कुरानादि सर्व सिद्धांतों की बानी यथार्थ तत्त्व पारखी गुरुदेव के सत्संग से परख कर सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सद्ग्रन्थों सत्य शास्त्रों का नित्य पठन पाठन कर के यथार्थ वस्तु को जानना। (९) सत्य—सच बोलना अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही समझना मानना। (१०) अक्रोध—क्रोध का हेतु रहते भी क्रोध न करना। धर्म ही हमारे शरीर का आभूषण और शोभा है।

यह वह प्रकृति है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकता है, यह वह शक्ति है जिसके करने से मनुष्य आवागमन से छूट जाता है, यह वह नौका है, जिसके द्वारा मनुष्य भवसागर से पार हो जाता है, यह वह धन है, जो हर मत और हर जाति के लोगों को प्यारा है; यह वह वस्तु है जिसकी प्रसंशा लोक परलोक दोनों में एक सी है, यही हमको कठिन समय से बचाने वाला और हमारा परम श्रेष्ठ कर्तव्य है। अतः हे प्रिय! धर्म भक्ति को प्राण जाते हुए भी न त्यागन करो क्योंकि यही तुमको शांति और मोक्ष फल का प्रदाता है।

सो०—सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम।
तिया शान्ति सुत जान, क्षमा यही षट बन्धु मम॥

दो०—जोहम भ्रमत अनादि से, सहत अनन्त कलेश।
सो कबीर ने शोध कर, परखायो निज देश॥
ताते सद्गुरु शरण तव, पुनि पुनि बिनय निहोर।
निजपद भक्ति अनन्य दो, भूल क्षमो सब मोर॥
औरो बहु विधि बिनय करि, गुरू शरण में लीन।
नर तन पाये फल यही, धन्य कथामृत पीन॥
सत्य ज्ञान प्रकाश का, इमि चौथा परकाश।
पढ़ि सुनि गुनि हैं जीव जो, पइहैं मोक्ष निवाश॥

सत्य ज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड का चौथा प्रकाश

कर्त्ता विषय निर्णय समाप्त

* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश
व
ज्ञान मार्तण्ड

❀ पञ्चम प्रकाश प्रारम्भ ❀

❀ स्वरूप ज्ञान प्रसंग वर्णन ❀

सो०—आये सुजन समाज, दर्शन करि मन दमन के।
भये कृतारथ आज, विघ्नहरन गुरुवर नमों॥

* प्रार्थना *

गुरु भक्ति दान दे दो, सब को प्रखाने वाले।
अपने शरण में ले लो, भव भय हटाने वाले॥टेक॥
सुत नारि धन जवानी, त्रय लोक राज धानी।
नश्वर ये ठाठ जानी, नहिं काम आने वाले॥१॥
पांचो विषय के वश में, सुखध्यास वश दुखी मैं।
उस ध्यास को जला दो, सोते जगाने वाले॥२॥
कोइ ईश ब्रह्म देवी, कोइ भूत प्रेत सेवी।
अनुमान सब छुड़ा दो, बीजक पढ़ाने वाले॥३॥

खानी व बानि धारा, तिससे बचा के जनको ।
निज पद में थिर करो हे, कब्बीर कहाने वाले ॥४॥
है प्रेमदास दीना, जो कुछ खता ये कीना ।
तिसको क्षमो प्रबीना, गुरु लाल प्रखाने वाले ॥५॥

* प्रार्थना *

बिनती सुन लो हे गुरुदेव, हमें लखा दो अपना भेव ।
हम सबको कुछ ज्ञान नहीं हैं, ताते शरण तुम्हारि गही है ॥१
चोरी चुगुली औ व्यभिचारी, जीव बद्ध ये पातक भारी ।
इन पापों से हमें बचना, धीर बीर गम्भीर बनाना ॥२
शील सत्य संतोष बिचार, सेवा साधन भक्ति सुधार ।
अच्छे अच्छे गुण के धारी, हम सब दें अवगुण को टारी ॥३
मानुष के गुण धर्म बता दो, न्याय बोध को हमें सिखा दो ।
नमस्कार हैं हम सब करते, जय ३ गुरु ध्यान हैं धरते ॥४
दो०—विविधि भाँति स्तुति करि, बैठे सब जिज्ञास ।
तब सतगुरु कुछ देर में, भ्रमहर बचन उजास ॥
अब जो जेहि शंका हो कहहू । तजि असत्य सद पद को लहहू ॥
तात मात सुत भ्रात तियादिक । स्वर्ग नर्क जितने भोगादिक ॥
कर्म काल से सब कुछ पावै । दुर्लभ संत सुयोग दिखावै ॥
ऐसा समय कहँ नहि पइहौ । नर तन माणिक तजि पछितइहौ ॥

* भजन *

नरतन है सौभाग्य कि मूरति, दुख छूटन की युक्ति करै ।
बैल होय तो बाँधा जावै, ऊँट होय तो लादि मरै ॥

बन पशु होय शिकार बनै, औ पक्षी होय तो जाल परै।
बीछी सर्प शशा जो होवै, जहँ तहँ लुकि लुकि बहुत डरै ॥
कुत्ता होय तो दण्ड सहै सब, चींटी तृष्णा नाहि भरै।
नर से भिन्न खानि हैं जेती, पराधीन नहिं बुद्धि धरै ॥
नरहुँ देह में रोगित पीड़ित, राति दिवस सो कहरि मरै।
बधिर होय तो सुनै बैन नहिं, अंध होय नहिं देखि परै ॥
गूँगा होय सो बोलि सकै नहिं, पंगु होय तो किमि बिचरै ?
सब साधन यदि योग्य होंय तो, मुक्ति हेतु क्यों देर करै ?
करै निरूपण ज्ञान कथा मुख, सुनै कथा श्रुति मोद भरै।
पग से सदा साधु सँग जावै, कर से बहु विधि सेव करै ॥
नेत्र पवित्र करै गुरु दरशन, सद्ग्रन्थन को पाठ करै।
जगत कुबुद्धि गंध को त्यागै, ज्ञान सुगंध सुकार्य करै ॥
गुरुपद रज निज शिरहिं परशि के, मन से नित गुरु ध्यान करै।
यहि विधि क्रिया भाव को लै के, संसृत बीज को क्षार करै ॥
कहैं कबीर भली बनि आई, अवसर योग सो कार्य करै।
छन्द—सुनि के, गुनि के। भक्त इक, बोल शिष ॥
दो०—ईश ब्रह्म औ देवता, भूत प्रेत भ्रम तात।
तव कृपया से जानिया, लह्यो हिये कुशलात ॥
बहुत बार स्वामी कह्यो, जीवै सत्य स्वरूप।
सो नहिं जानूँ जीव क्या, कहिये गुरुवर भूप ?
वीर्य रक्त और तेज तम, छाया अंश जु मान।
पाँच तत्त्व गुण जीव कोई, सत्य कौन सहिदान ॥

सो०-निज स्वरूप में थीर, संशय औ विपरीत हर।
हरो हमारो पीर, बार बार बन्दन करौं॥
मम स्वरूप कैसा है स्वामी। कहहु दयानिधि अंतरयामी॥
शिष्य बचन सुनि परख बिहारी। बोले बचन भक्त भय हारी॥
सुनहु शिष्य मम प्रिय उपदेशा। जाते रहै न भ्रम लवलेशा॥
जैसे घर में पाँच झरोखा। पाँच बस्तु तेहि द्वार अनोखा॥
घर में विविधि बस्तु बहु भाँती। भीति आदि बहु चित्र लखाती॥
मानुष तेहि घर में यक रहता। सब बस्तुन से न्यारा बरता॥
घर बस्तुन का जानन वाला। मानुष न्यारा देखन वाला॥
या विधि घर देहैं को जानो। पाँच तत्त्व जड़ देह पिछानो॥
भू अग्नी जल बायु अकाशा[१]। तत्त्व कार्य यह देह बिनाशा॥
दो०-त्वचा नेत्र नाकहु करण, जिह्वा ज्ञान को द्वार।
हाथ पाँव मुख लिंग गुद, पंच कर्म औजार॥
तत्त्वन की दस इन्द्री येही। अब प्रकृति आगे कहि तेही॥
नाड़ी हाड़ माँस कच चामा। पृथ्वी प्रकृति पाँच ये तामा॥
बोलन धावन बल को करना। बायु सकोच पसारन बरना॥
लार मुत्र अरु रक्त पसीना। बीर्य पाँच जल के कहिदीना॥
भूख प्यास आलस जमुहाई। निद्रा पाँच अग्नि दर्शाई॥
काम क्रोध मद लोभ रु मोहा। पाँच प्रकृति सामान्यकि सोहा॥
इन्द्री पाँच झरोखा कहिये। पंच विषय तेहि आगे लहिये॥

टि०-१-आकाश कुछ बस्तु नहीं मिथ्या कहने मात्र, उसके बजाय हर जगह समान बायु को लिया गया है।

शब्द रूप रस गंध स्पर्शा । इन्द्री द्वार सु न्यारे दर्शा ॥
श्वाँस आदि को द्रव्यहिं जानो । चित्त चतुष्टय चित्र पिछानो ॥
तीन अवस्था तीनों कोठरी । विविधि वस्तु औरोजेभितरी ॥
जीव सबों का जाननहारा । सबको जाने सब से न्यारा ॥
वीर्य रक्त तेज तम श्वाँसा । छाया माया अंश विनाशा ॥
सकल भूत जड़ दृश्य हैं जेते । कारण कारज रूप हैं तेते ॥
जीव अखण्ड नित्य अविनाशी । जानत सबहिं भिन्न परकाशी ॥
घट द्रष्टा ज्यों घट से न्यारा । त्यों सब द्रष्टा सब से न्यारा ॥
दृश्य तत्त्व औ कारज ताके । नित्य निरन्तर भासत जाके ॥
जाको भासै सो है भासिक । भासिकसो निजरूपप्रकाशिक ॥
साक्षी साक्ष्य न होवै भाई । द्रष्टा दृश्य नहीं दिखलाई ॥
तो केहि विधि निज रूपहिं देखो । देखो सो तो भिन्नहिं पेखो ॥
देखनहार सो आपहि आपा । गो गोचर नहिं आवत जापा ॥
जाको शंका हम हैं कौना । उलटि देखु जिव आपै तौना ॥
आप आप नहि देखि सकाई । जानमात्र तव रूप कहाई ॥

दो०—जासे सकलो जानहू, सोई जान तव रूप ।
पारख चेतन ज्ञान खुद, तू है सब का भूप ॥
हानि लाभ सुख दुःख अरु, वर्णाश्रम त्रय लिंग ।
तब स्वरूप में ये नहीं । सब द्रष्टा तु अभंग ॥

❀ गजल ❀

उर में ठहर के देखो, ज्ञाता स्वरूप साईं ।
है सर्व का परीक्षक, निज़ रूप सत्य भाई ॥टेक॥

बीरज व रक्त श्वाँसा, तम शुन्य आदि जेते।
नख शिख जु थूल सुक्षम, मुर्दा सकल दिखाई ॥ १ ॥
जड़ माहिं कार्य कारण, पाँचो विषय स्वभाविक।
तिनसे तु भिन्न द्रष्टा, अबिचल अखण्डताई ॥ २ ॥
चम चम जु ज्योति चमके, अथवा जु शब्द सोहं।
सब कुछ है सिद्ध तुझ से, तू सत्य शुद्धताई ॥ ३ ॥
चित बुद्धि मन जो मानै, तू ही तो इनको जानै।
तुझको वो कैसे देखैं, उनमें न ज्ञान राई ॥ ४ ॥
पाँचो विषय जु मिल के, तुझको न जान सकते।
तू सर्व का है ज्ञाता, निज रूप क्यों भुलाई ॥ ५ ॥
निज सत्य जान अपना, पारख के बल ये थिर हो।
साधन सकल गहै तू, मन बेग नाश जाई ॥ ६ ॥

* शिष्य विनय *

जय गुरु ज्ञान स्वरूप प्रभो !
निज सत्य स्वबोध लखा दो मुझे ॥ टेक ॥
मद गंजन भंजन ताप त्रयं,
भव शोक हरं प्रभु संत प्रियं।
जय जानक सर्व जनाय रहं,
निज रूप में आप डटा दो मुझे ॥ १ ॥
सम एकरसं प्रभु मोक्ष प्रदं,
निरुपाधि अखण्ड न मान मदं।

जय पारख रूप इहा रहितं,
　　जड़ चेतन भेद बता दो मुझे ॥ २ ॥
कवि कोविद ईश बताय रहं,
　　सब द्वैत मिटाय के ब्रह्म अहं।
जय दुइ जाल सदा शमनं,
　　प्रभु खानि व बानि हटा दो मुझे ॥ ३ ॥
अविकार सु साक्षि स्वरूप निजं,
　　अविनाशि स्वरूप सु आप भजं।
जय धीर कबीर विशाल गुरुं,
　　निज किंकर जानि बचा दो मुझे ॥ ४ ॥

सो०—फेरि कहो गुरुदेव, जेहि ते संशय ना रहै।
　　जीव भास बहुतेव, सुनिसुनि बानी भ्रमित भौ ॥
दो०—एक जीव या बहुत हैं, व्यापक या इक देश।
　　निराकार आनन्द मय, क्या सत कहो संदेश ॥

* गुरु वाक्य *

विपतिविभंजन विशद विशाला। कहन लगे शुचि बैन रसाला ॥
गगनोपम अत्यन्त अरूपा। ज्ञान शक्ति केहि धर्म हो भूपा ॥
ज्ञान बिना सो चेतन कैसे। गो मन को प्रेरक न बनैसे ॥
जो सब प्रेरक एकै होवै। बंध मोक्ष फिर केहि को जोवै ॥
कर्म भोग फल को पुनि भोगै। सब मिथ्या गुरुआई होगै ॥
दुक्ख रूप प्रत्यक्ष जगत ये। ताहि निवृत्तिक सुक्ख चहत ये ॥
सब की समझ है न्यारे न्यारे। जस जो करै सो भोगव प्यारे ॥

ताते एक जीव नहिं व्यापक । भिन्न २ सो प्रति घटथापक ॥
गो मन देह को स्व स्व प्रेरक । साक्षी सकल परीक्षक हेरक ॥
सो मिश्रित जड़ में नहिं देखो । कारण कारज जड़हिं रहेखो ॥
घट प्रति बास किये सो ज्ञाता । सो स्वजाति है अमित सुताता ॥

* कुण्डलिया *

व्यापक चेतन सबन में, निर्लेप एक जो मान ।
गुरू शिष्य तब क्यों चही, दूसर नहीं अयान ॥
दूसर नहीं अयान, घट उपाधि जो कहिये ॥
किमि असंग निर्लेप, एक गगनोपम चहिये ॥
तब न अवस्था होय, नाना मत नहिं थापक ॥
सर्वत्र ज्ञान होना चही, एक आहि जो व्यापक ॥

जहँ लो नेत्र से रंग दिखावै । सो गुण अग्नि तेज दरशावै ॥
जहँ लो नाक सो गन्ध गहाई । धरणी विषय कठोर दिखाई ॥
जहँ लो जीभ से रस को चिखई । सो सब जल गुण शीतल दिखई ॥
जहँ लो सपरश वायू करो । शब्द ताहि गुण कहत निबेरो ॥

सो०—ये सब जड़ को रूप, कारण कारज गो विषय ।
ज्ञाता भिन्न स्व भूप, छोड़त पकड़त जानि के ॥

दो०—पंच विषय युत तत्त्व जड़, गो गोचर बिलगात ।
गो मन द्रष्टा निज निज, जान स्वयं रहि जात ॥
जैसे निज निज गुणसहित, सकार तत्त्व सब आहिं ।
वैसे जिव चिद गुण सहित, ज्ञान अकार बहुताहिं ॥

वे जड़ दृश्य पाँचो विषय, कारण कार्य देखात।
यह द्रष्टा जड़ पार है, नित्य अखण्ड रहात॥

जेते घट तेते हैं जीवा। व्यापक व्याप्य परीक्षक पीवा॥
जो यकदेशी कहिये नाशा। तो परमाणुन करो बिनाशा॥
कार्य लोप कारण वहि रहई। जेहिते फिर फिर कारज बनई॥
जड़ परमाणू नाश न होवैं। तब द्रष्टा जिव कैसे खोवैं॥
सो द्रष्टा गो मन से न्यारा। सकल परीक्षक है निरधारा॥
कारण कार्य रहित खुद ज्ञाता। सदा एकरस सत्य रहाता॥
सुक्ख रूप अरु दुख को रूपा। जीव नहीं ये जानो भूपा॥
भोगत विषय सुषुप्ती माहीं। जहँ वृत्ती रुकि सुख दर्शाहीं॥
चंचल वृत्ति से दुख दरशावै। तेहि अपेक्ष थिर वृत्ति सुखावै॥
भोगि विषय मद दौड़ि जु गिरई। इच्छा भोग भूलि सुख धरई॥
क्षण कालीन विषय आनन्दा। दीर्घ स्थिती ब्रह्मानन्दा॥
दोउ परिणाम दुखै तुम जानो। जो दरशत सो भिन्नै मानो॥
द्रष्टा दरशन में अरुझाना। जगत ब्रह्म सुख नश्वर ठाना॥
स्वादी सदा स्वाद से न्यारा। आनन्दी आनन्द न प्यारा॥
जगत ब्रह्म थिर वृत्ति अनन्दा। चलित हेतु सो काल को फन्दा॥

* कबित्त *

सुनब गुनब अरु देखब कहब सब,
मानव जहाँ लो आहि विषय बिकार है।
नाम रूप सकल भनत औ लखत कौन,
सब का जनैया न्यारा जाने निर्धार है॥

ईश ब्रह्म छाया माया जगत सो दृश्य भास ,
भासिक स्व जीव खुद ज्ञान का अकार है ।
पिण्ड अण्ड जड़ भास ताको सुख आश तजि,
निज रूप थीर रहे मुक्ति ये प्रकार है ॥

दो०– विषयासक्ति सो जीव पद , ताहि तजे दुख दर्श ।
सो पारख भव पार गुरु , स्वयं सत्य पद शर्श ॥
सो जेहि घट में जात है , श्री गुरु परख प्रताप ।
सोऊ पारख रूप है , संग जौहरी आप ॥
पट दश नौ अपरादि सब , परा आत्म भरपूर ।
सबहि परीक्षक परख पद , शुद्ध परात्पर शूर ॥
सो अबाध्य त्रय काल में , जाती स्वतः अनंत ।
निज निज मनमय जगत निज, जेहि तेहि बोध से अंत ॥
भास अध्यास अनुमान अरु, कल्प प्रत्यक्ष परोक्ष ।
परखि परखि डारै सकल , गुरुपद सो अपरोक्ष ॥
सो गगनोपम पूर्ण नहिं , इन्द्रिय विषय सो नाहिं ।
सब द्रष्टा सब से पृथक , ज्ञान रूप सद आहिं ॥
प्राप्त स्वयं निज रूप है , गल भूषण सम भूल ।
नित्य प्राप्त पारख लहै , ठहरै गुरुपद रूल ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य त्रय , निर्णय द्रष्टा पाठ ।
यही तत्त्व आरूढ़ रहि , दया क्षमादिक आठ ॥
ऐसो स्वयं अखण्ड धन , द्वैताद्वै तजि भास ।
थीर रहै सम रूप में , रक्षण गुण रखि खास ॥

सो०—नित्य प्राप्त निज रूप, अभय अचल अविकार पद ।
भयो भिखारी भूप, गुरु पारख बिन क्षुधित नित ॥

* शिष्य बचन *

मोह जनित मल लाग, जनम जनम अभ्यास तेहि ।
सो प्रभु कीन्ह अदाग, अभय दानि तजि जाऊँ कहँ ॥

❀ छन्द ❀

जय देव बिशाला, बिरति सँभाला, बंधन त्यागि रमन्ता ।
जय जय गुण सिन्धू, दीनन बन्धू, भक्त जनन के कन्ता ॥
जय जयति बिवेकी, सतपद टेकी, नाशक सबहीं हन्ता ।
जय जय दुख हारी, परख बिहारी, ध्यावत सेवक सन्ता ॥१॥
बिन तव पद जाने, फिरत भुलाने, सदा मनोमय धारा ।
हम जहँ जहँ जावैं, जमा गमावैं, खानि बानि बिकरारा ॥
कहुँ लहे न बोधा, गुरुबिन शोधा, यद्यपि सब से न्यारा ।
सोइ चेतन अविनाशी, भूलसे फाँसी, भूल मिटै अविकारा ॥२॥
इच्छा पूरण काजा, व्याकुल राजा, इक्षा दुख है भारी ।
सब सुख के भोगी, तबहूँ शोगी, तृष्णा बढ़त अपारी ॥
सोइ सहजै पूरा, इच्छा धूरा, बन्दीछोर बिचारी ।
सोइ ज्ञान प्रकाशक, तृष्णा नाशक, नित संतुष्ट सुखारी ॥३॥
जय सन्तन अभिरामा, पूरण कामा, चरण सरोरुह ध्याऊँ ।
प्रभु परम पुनीता, सबातीता, बड़े भाग्य से पाऊँ ॥
निज सेवक कीजै, शुभ गुण दीजै, बार बार बलि जाऊँ ।
क्रोध लोभ भव भीरा, हरिये पीरा, प्रेम सहित गुण गाऊँ ॥४॥

छं०—ऋषि सिद्धि मुनिवर बृन्द जेहि को नित्य ही ढूँढ़त रहैं।
आगम निगम सब कण्ठ करि अति भाव से शोधत रहैं॥
बृक्ष बंधन सिमिटि जग सो बीज व्यापक को गहैं।
सोइ कठिन आनन्द बेरी, श्री गुरू क्षण में दहैं॥
सो०—सुलभ पंथ परमार्थ, सुलभ स्वरूप को ज्ञान भौ।
सुलभ भयो हित स्वार्थ, श्री गुरु दाया सुलभ सब॥
एसे गुरु हितकारि, जड़ाध्यास छिन में हरैं।
शरण गहै न सम्हारि, तिन कहँ रक्षक कौन है?
दो०—तव कृपया से जानिया, भास दृश्य सब न्यार।
जान मात्र मैं खास खुद, द्रष्टा स्वयं निर्धार॥
पै शंका औरो जिय माही। कहो दयानिधि संशय याही॥
जान मात्र मम चेतन रूपा। केहि विधि से पड़िया भ्रम कूपा॥
जान बूझ के बन्धन माहीं। केहि विधि कौन समय से आहीं॥
तव समान नहिं दूसर स्वामी। परख रूप गुरुदेव नमामी॥

* गुरु उत्तर *

सुनहु शिष्य याको अब भेदा। जीव अखण्ड अनादि अछेदा॥
याको नाश कहै जो कोई। नेत्र फोड़ि देखन चह सोई॥
कारण भूत नाश जब नाहीं। ताहि परीक्षक कैस बिलाहीं॥
गोचर भूत विषय जड़ जानो। देखन वाला भिन्न पिछानो॥
अपनी हैता है सब काला। नाशमान जिव कहिते बाला॥
जानै जीव स्वतः अविनाशी। आप ठौर निज ज्ञान प्रकाशी॥
पंच विषय सुख की मानन्दी। फँसत जीव तामें सानन्दी॥

यद्यपि जीव जानने वाला। तद्यपि भूलि रहा इमि हाला॥
दो०-जड़ तत्त्वन की इन्द्रियाँ, सो आवर्ण सरूप।
जीव दृष्टि विपरीत करि, भ्रमत स्वप्न ज्यों भूप॥
नेत्र से रूप देखि सुख मानै। तलफत यथा पतंग दिवानै॥
रसना से रस ले बहु भाँती। मीन समान उतावल राती॥
त्वक से सुख सपरश में मानै। गज औ श्वान समान दिवानै॥
नाक से गंध बिहर अनुकूला। कोमल कमल भ्रमर ज्यों भूला॥
श्रवण शब्द सुख मानि अपारा। रसिक तान भटकत मृग धारा॥
पाँचो विषयन में सुख मानी। यहि प्रकार बन्धन नित ठानी॥
काम बृति गहि नर औ नारी। दोउ यक होन चहत दुख भारी॥
मोह बृत्ति गहि जौन विजाती। राखन चहत सदा पर थाती॥
लोभ बृत्ति गहि द्रब्य अशेषा। सकल होय मम बचै न लेशा॥
अहं बृत्ति गहि पर पर शाशन। बृथा पचत गहि दुखकी राशन॥
गो गोचर नख शिख जड़ काया। मानि मानि सुख बहुत बँधाया॥
यह सब भूल केर परिवारा। नाद बिन्द बहु भाँति अपारा॥
सो सुख भ्रम यह माया मूला। अपर न माया और कबूला॥
देखत ही सब सुख दरशावैं। मधुर मनोहर कोमल भावैं॥
जीव सृष्टि जड़ सृष्टि अपारा। क्षण इक लगत अपनपौ प्यारा॥
पलक मात्र में औरहिं औरा। बज्र शूल तेहि सम का बौरा॥
बहत प्रवाह मनोमय धारा। डूबत पुनि पुनि वहै अधारा॥
बिन पारख दुस्तर यहि तरनो। ईश ब्रह्म किहुँ जाय जो शरनो॥
तदपि बचावा होवै कैसे। बीज बृक्ष कहुँ अलग रहैसे॥

यहि ते सत्व सकल मद त्यागी । पारख शरण गहत बड़ भागी ॥
और अभागी दोउ वश माया । खानि बानि दोउ विधि जहँड़ाया॥

दो०– यहि माया वश जीव यह, विषय सुखों में बंध ।
बिन गुरुपरख के छुटत नहिं, यद्यपि है निर्बंध ॥
जानि मानि सुख बस्तु में, आसक्ती करि लेत ।
जाने नहिं निज रूप को, यहि अज्ञान अचेत ॥

छं०– जड़ दृश्य में सामर्थ नहिं बंधन में डालै जीव को ।
यह खुद फँसत पर के गुणों में हं महा कहि पीव की ॥
जैसे भ्रमर फूलों के गंधों में निकट सुख मान कर ।
बँधता कमल में वो निरंतर श्वान छाया जान कर ॥१॥
मर्कट वो तोता सिंह गज मृग मीनहूँ फँसि स्वाद में ।
तैसे ये चेतन भूलता गो-स्वाद के अहलाद में ॥
चिद् पंच इन्द्री द्वार से पाँचो विषय को भोग कर ।
सुखध्यास जो दिल में टिकै वह बाँधती जड़ जीव धर ॥२॥
जड़ इन्द्रियाँ सम्बन्ध में अध्यास चेतन ग्रासता ।
अध्यास जड़ अरु जीव को साथी किये नित राहता ॥
साइकल झूला व गाड़ी में मनुज बहु कूक भर ।
सम्बन्ध करता यंत्र से तैसे ये बपु अरु जीव कर ॥३॥
चंचल बिजाती भूत के गुण वा विषय अभिमान कर ।
इस भूल से यह जीव माया में फँसत नित ध्यान धर ॥
माया चपल के ध्यास से बहु कर्म देखो कर रहा ।
नारी व सुत धन धाम सुख लखि दुख सदा ही सह रहा ॥४॥

पुनर्जन्म सम्बन्ध

आवागमन कर्मफल यथार्थ निरूपण ।

❀ कवित्त ❀

मानना अध्यास संस्कार सुख दुख ज्ञान,
भूतन में कहुँ नाहिं जड़ सो रहतु है ।
जड़ देह मेल माहिं जहाँ जहाँ जीव रहै,
तहाँ तहाँ मानि मानि ज्ञान सो करतु है ॥
भूत जड़ आश वश चेतन स्वरूप भूलि,
त्रिविधि अवस्था सुख दुख सो लहतु है ।
देखे भोगे संस्कार जाग्रत स्वपन भोग,
सुषुपति फेरि जागि क्रिया ही गहतु है ॥ १ ॥
जड़ सृष्टि माहिं जिमि बीज वृक्ष शक्ति भूरि,
औरहु अनेक क्रिया होत ही रहतु है ।
जड़ अरु जीव मिलि तिमि मनोमय सृष्टि,
शक्ति संस्कार बीज देह को गहतु है ॥
बाल युवा वृद्ध पुनि मरण गरभ जन्म,
षट ये विकार मन शक्ति से लहतु है ।
जैसे जैसे कर्म लिये मृत्यु होय तैसे जन्म,
त्रिगुण के भोग खानि देखि के कहतु है ॥ २ ॥
इन्द्रिन से जाने विन संस्कार नाहिं बने,
संस्कार बिन कोई क्रिया नहिं जीव से ।

बच्चन में हर्ष शोक भय आदि क्रिया लखि,
पूर्व जन्म लक्ष होत जानिये सु कीव से ॥
दुख सुख सकल स्वभाव भिन्न त्रिगुण जु,
करत परीश्रम न एक सम लीव से ।
आयु भोग घट खानि भिन्न भिन्न पूर्व अब,
क्रिया मिलि भोग होत कर्म है सदीव से ॥ ३ ॥

छं०-जाग्रत में जो जो भोग भोगा स्वप्न में वह भोगता ।
जो जो क्रिया है कर्म उस उस को अगाड़ी भोगता ॥
निज कर्म बीजों का निरंतर जामना ही धर्म है ।
इस देह रूपी चेत्र में नैमित्य कर्त्ता कर्म है ॥१॥
त्रय अवस्था तीन पन इस देह में होते यथा ।
बीज बृक्षों न्याय से आवागमन फल हो तथा ॥
त्रय काल छः ऋतु हो स्वतः गुण धर्म भूताधार ते ।
तिमि काल कर्म सबन्ध गुण वश जीव वपु युग धार ते ॥२॥
है प्रवाह बिजाति जड़ से जिव निमित्त सबन्ध है ।
कुम्हार घट-गह त्याग सक क्यों भोग से तू बंध है ॥
जागो ! उठो ! मम बन्धु हो ! इस मोह निद्रा को तजो ।
तू स्वतः चैतन्य होकर भोग जाल में मत रजो ॥३॥
हे जीव ! तू अपरोक्ष ज्ञाता रूप निज मत भूल तू ।
पंच कोष रु गुण विषय जा भास में मति भूल तू ॥
पंच विषयों के सदा ख्वाहिश में सहता शूल तू ।
कर के जरा सत्संग कर दे भंग माया मूल तू ॥४॥

* कबित्त *

अस जिय जानि जन सुकृत करत सुज्ञ,
　　दया धर्म तप तोष चलत सुधार से।
मन बच काय पर पीड़ा न करत भूलि,
　　तेहि ते सकल सुख पावत हैं सार से॥
जौन नर पामर अधिक अंध मद करि,
　　हिंसा पर द्रोह घात भोग व्यभिचार से।
तेइ दुख भाजन हो लोक परलोक माहिं,
　　याहि हेतु चेत चित्त चलिय बिचार से॥

तजत गहत अनादि ते देहा। बीच माहिं नहिं बंधन येहा॥
प्रथम मुक्त जो बंधन परई। तो पुनि मुक्त होय के धरई॥
तो उपदेश श्रवण केहि हेता। मुक्त बंध जो फिर फिर लेता॥
ताते जीव ये बंधन माहीं। रहत अनादि से भ्रमत सदाहीं॥
पंच विषय सुख मानव जानौ। जड़ाध्यास जड़ प्रियता ठानौ॥
भोग क्रिया सब बंधन मूला। उभय सबंध बिना किमि भूला॥

दो०-गो सबंध बिन ध्यास नहिं, ध्यास बिना नहि बंध।
　　बंधन युत जिव दीखते, ताते अनादी बंध॥

* शिष्य प्रश्न *

दो०-श्री गुरु बंध अनादि है, सो किमि होवै नाश।
　　वहि युक्ती कहि दीजिये, जानि आपनो दास॥

* गुरु उत्तर *

सुनहु शिष्य दिल माहिं बिचारो। करि बिचार संशय सब जारो॥

बीज रु बृक्ष अनादि प्रबाही । बृक्ष में बीज बीज बृक्षाही ॥
बृक्षा बीज प्रवाह अनादी । दग्ध किये तब बीज नशादी ॥
बीज नाश तब बृक्षा नाहीं । भूनन वाला क्या फल पाहीं ॥
इमि सम्बंध प्रवाह विजाती । देह बीज आसक्ति दिखाती ॥
विषयों में सुख मानत बंधन । दुक्ख जानिके छूट निकन्दन ॥

दो०—सुख दृष्टी से बंध है । दुख दृष्टी से मोक्ष ।
सुख दुख द्रष्टा आप है, आप रहै अपरोक्ष ॥

जो विजाति बन्धन नहिं नशता । त्याग ग्रहण तो केहि विधि करता।
देह बीज आसक्ती भाई । ज्ञान अग्नि से देहु जलाई ॥
बीजासक्ति दग्ध हो जावै । बृक्षा रूप देह किमि पावै ॥
बिना जलाये दुख नहिं छूटै । पुनि २ त्रिविधि ताप शिर कूटै ॥
संचित क्रियमान प्रारब्धी । तीन कर्म ये करिये दग्धी ॥
खानि बानि में सुख जो मानत । तेहि सुख हेत कर्म जो ठानत ॥
सोई कर्म अगामी कहिये । विषय सुखों की हंता लहिये ॥
भोग हेत जो कर्म रहाई । संचित कर्म जमा धन भाई ॥
जाहि अधार देह यह प्यारे । प्रारब्धी से दुख सुख सारे ॥
ठीहा वत यह देह गुजारा । अन्न वस्त्र आवश्यक धारा ॥
त्यागहु विषय सुखों को भाई । धारहु शुभ गुण सबै सदाई ॥
औगुण मूल शूल प्रद खानी । त्यागहु नारि विषय दुख जानी ॥
श्रवण सुमिरण कीर्तन कहिये । चितवन बात एकांतहि लहये ॥
दृढ़ संकल्प यत्न सहवासू । मैथुन अष्ट इहै दुखदासू ॥
मैथुन अष्ट सु त्यागु सदाई । सब विधि जानि ताहि दुखदाई ॥

बोध होत संचित नशि जावै । दया उदय हिंसा ज्युँ अभावै ॥
या विधि कर्म अगामी नाशै । रक्षक बोध जु रहनि उजासै ॥
दया क्षमा सत धीर बिचारा । विरति विवेक भक्ति आधारा ॥
एक कर्म बोना है भाई । उपजै वृक्ष बीज बहुताई ॥
एक कर्म भूनब है प्यारे । उदय न अंकुर सूतहु धारे ॥
बंधन लोह कि बेरी करई । छेनी लोहै कर तेहि हरई ॥
तैसे मोक्ष हेत जो कर्मा । सो नहि बंधन जानो मर्मा ॥

दो०-मन उद्वेग बिरोध तजि, ममता हं परित्याग ।
इन्द्रिय जीत विराग गह, हो जावै जड़ भाग ॥
जो तू देह औ जीव को, करि विवेक अलगाय ।
जान मात्र मैं सत्य हूँ, निश्चय से दुख जाय ॥
पंच विषय जड़ दृश्य है, मैं तेहि द्रष्टा जान ।
करि विवेक भ्रमि शांत हो, और उपाय न आन ॥
मूल अहंता मृत्यु डर, वैर मोह सुख आस ।
भोग क्रिया ये क्लेश हैं, तजे मुक्ति ले खास ॥
गो मन विषय बिकार सब, भ्रम से धारत जोय ।
संस्कार द्वारे सकल, क्रिया करत है सोय ॥
सोई चेतन रूप है, जड़ सृष्टी से भिन्न ।
भिन्न जानि निज रूपको, ठहरै परख अछिन्न ॥

---

* समग्र विषयों में सुख मिथ्या औ दुःख पूर्ण है तथा वासना ध्वंस से मोक्ष की सिद्धि और मोक्ष साधक बाधक अंगों का निरूपण *

यहि प्रसंग में इक इतिहासा। सुनहु ध्यानधरि भ्रम मनाशा॥
चेतचन्द एक भूप महानौ। मनश्चन्द तेहि के सुत जानौ॥
प्रभुता धन अविवेक जवानी। चारिउ अहैं अनर्थ कि खानी॥
चारिउ पाय मनश्चंद जबहीं। प्रबल भयो उनमादी तबहीं॥
राउनीति कै धर्म बिसारी। लोलुप रहत लखत पर नारी॥
जेहि की सुन्दर प्रमदा देखै। जोर जबर करि गहत बिशेखै॥
जीव बधै मद पिवै बिशेषी। जूआ खेलि हनै बिन द्वेषी॥
जेहि मन आवै तेहि को बांधै। अति तृष्णालु जार सँग साधै॥
बेश्या नृत रत तेहि कर मेली। घूमि घूमि उत्पात नवेली॥
जड़वादी चाहत प्रभुताई। धर्म कर्म की रीति बहाई॥

दो०—सज्जन साधू वृन्द शुचि, सत कर्मी द्विज कोय।
सद्ग्रन्थन शुभ नीति कहँ, दियो तिलाञ्जलि सोय॥
माता पिता मन्त्री सुहृद, जो समझावैं ताहि।
सब को डारेसि जेल महँ, रोकि सकै को वाहि॥

यहि बिधि रावण सम दुखदाई। पीड़ित प्रजा सकल बिललाई॥
सकल समाज मंत्र करि साजू। रहै अभूप कुभपन राजू॥
रहै अदार कुदारै त्यागी। रहै अमित्र कुमित्रै नागी॥
रहै अशिष्य कुशिष्य न कीजै। भल अपुत्र दुष्पुत्र न लीजै॥
यही मन्त्र करि सब जुटि आये। मनश्चन्द को मारि भगाये॥

प्राण विसर्जन अवसर लखि के। भागेउ शठ सो जसतस करिके ॥

दो०—कारागार ते मात पित, सबहिं छुड़ाये लोग।
पुनः सँभारेउ राज्य सोई, सकल सुखी जन योग ॥
तेहि सीमा से भागि के, मनश्चन्द करि टोल।
खल समूह जुटि लूट फुँक, जोर जुलम भौ होल[१] ॥
जहँ तहँ जंगल गिरि महँ, दिन में छिपि वे दुष्ट।
राति होत जहँ तहँ लुटैं, प्रजा सकल भइ रुष्ट[२] ॥

तहँ के भूप प्रजा मिलि शोधी। खोजि २ कुजनन कहं रोधी[३] ॥
मनश्चन्द यह जानत भाग्यो। गिरत परत तेहि जहँ तहँ लाग्यो ॥
आगे हाल सुनहु मन केरा। जेहि ते दुखमय जगत निबेरा ॥
गिरि चोटी पर सो चढ़िगयऊ। इतने महँ इक आपति लयऊ ॥

दो०—गिरि चोटी से मधुर रव[४]। सुन्यो सो इत उत देखि।
गिरि नीचे इक सुभग तिय, लखतहिं लुब्ध बिशेखि ॥
इक टक ह्वै आतुर चल्यो, जल्दी महँ गिर सोय।
लुढ़कत ढनगत लगत पवि[५], अंध कूप गिर जोय ॥
सुनहु मित्र लोलुप नरन, विषय देखि ह्वै अन्ध।
सब प्रकार दुर्गति सहत, कठिन चाह को धन्ध ॥
हाय हाय करि रुदन रव, सुनि चारवाहन देखि।
ताहि निकारयो युक्ति करि, देख्यो दुखित बिशेखि ॥

टि०—१-होल कहिये हल्ला। २-क्रोध। ३-रोक दिया। ४-शब्द।
५-पत्थर।

भूखे प्यासे अंग छिलि , चोटहुँ दर्द वियोग ।
शत्रुन भय सब दुःख दब , कछु उपरामित शोग ॥
भय वश दूर देश सो गयऊ । संत मिले इक निर्जन ठयऊ ॥
अति दुख में खलहँ हो कोमल । संत दरश कछु जागेउ तेहि भल ॥
अति खल को शिक्षा नहिं लागत । दुःख परे वह खुद ही जागत ॥
जगि सुवृत्ति खल करत विचारा । अहो बहत्त कहँ मंद असारा ॥
नर तन पाय सार नहिं चीन्ह्यों । गो सुख हेतु सकल दुख लीन्ह्यों ॥
आगे देखि संत स्वच्छन्दा । दोउ कर जोरि दुखी मनचन्दा ॥
मोहिं सुख होय कहहु केहि भाँती । भय वशि मोरि जरति है छाती ॥
संत समाने आरत देखी । यथाशक्ति दुख हरत विशेखी ॥
भ्रम वश सकल दुखी लखि जीवा । समय पाय शिक्षत जन कीवा ॥
संत ताहि सब जानि कहानी । अहो शोक ! यह बोले बानी ॥
अमृत सिन्धु स्वतः जो द्रष्टा । भूल विवश जहँ तहँ हो भ्रष्टा ॥
नित्य तृप्त संतुष्ट अनाशी । सदा एक रस प्रति घट बासी ॥
शांति सिन्धु खुद भूलि के धावै । रवि जल भ्रम कहुँ प्यास बुझावै ॥
दो०—अहो मनश्चंद सोचहू , सकल यतन केहि हेत ।
इच्छा पूर्ति भोगै बढ्यो , फिर क्यों दुख अब चेत ॥
भोगै से लत होत है , लत से इच्छा पुष्ट ।
वहै चक्र फिर फिर परत , यतन विघ्न श्रम लुष्ट ॥
कहुँ यहि विश्वारण्य[१] के माहीं । सुक्ख लेश नहिं दुख दव आहीं ॥
जो कहुँ सुक्ख तुमहिं परतीती । तो हम से तुम कहउ अभीती ॥

टि— १- संसार रूपी जंगल ।

ताहि प्रासि तोहिं तुरत कराउब । सुख सिन्धू महँ तुमहिं डटाउब॥
मनश्चन्द बोला कर जोरी । राज काज दुख संशय घोरी ॥
हिस्सेदार बहुत भय देवैं । चूकन शीश काटि पुनि लेवैं ॥
अरिहुँ त्रास रक्षा जन पालन । भूप ठौर देखे दुख टालन१ ॥
अपर स्थिती हम नहिं देखे । विन देखे परतीत न हेखे ॥
कह्यो संत तुम भल जु बखाने । संशय ग्रसित विनश्यति माने ॥
जाय सकल श्रेणी तुम देखौ । आय लहहु जो सुक्ख विशेखौ ॥
ऐसे सुनि बच सुख के कामी । चले खोजमें भव भय धामी ॥
चलत चलत लखि बालक टोली । जनु अचित खेत दिल खोली ॥
भय अरु त्रास रहित आनन्दा । करत कलोल घुमत स्वच्छन्दा॥
खान पान कछु फिकिर न इनको। यहि सुख रूप रचत भौ मन को॥
यहि सोचत मन पंथी देखत । इतने महँ इक कौतुक लेखत ॥
सुन्दर वस्तु बाल इक लायो । अन्य बाल सबहीं ललचायो ॥
छीनि छोरि सब करि बहु दंगा । इक इक ठेलि टाल दलि अंगा ॥
रोवन लगे बाल कमजोरा । जननी सब आईं लखि शोरा ॥
इक इक को मारन पुनि लागीं । लै घसीट बहु भय दै पागीं ॥
चलहु पढ़हु शिक्षक के पासा । सुनत बाल सब भयउ हरासा ॥
भय परवश आतुर की खानी । बाल टोल सुखरूप न जानी ॥
दो०—आगे बढ़ि देखत भयो, उभय मित्र बतलात ।
अहो मित्र ! तुम दुखित क्यों! जानत नहिं तुम तात !
तरुण अवस्था आज हमारी । चली जात नहिं आवत प्यारी ॥

टि०—१ बहुत ।

अजहुँ ब्याह मम नाहिन नारी । नारि बिना मोहिं सब अँधियारी ॥
युवा वेग नहिं भेंटत प्यारी । धृग धृग जीवन आज हमारी ॥
सब सुख मूर्ति वाम बिन ख्वारी । जरत विरह दव मिलि कब नारी ॥
ऐसे वैन सुनत हा शोका ! भनत मित्र नारिहु सुख फोका ॥
नारि सगाई जब से मोरा । सब दुख बोझ मोर शिर घोरा ॥
धन हित सब की करत गुलामी । मन अर्पण करि विकत कुधामी ॥
करत कमावत धावत चहुँ दिश । पूर न परत करत वह बहु रिश ॥
दुइ पुत्री यक पुत्र हमारे । तेहि विवाह के संशय जारे ॥
नहिं ह्वै संतति तौ हिय शोकू । सुत पुत्री बहु तौ उर कोकू ॥
सुजन कुजन ये मिलन विछोहू । देत दुसह दुख सब को मोहू ॥
सकल कुटुम्बिन के मन कामा । केहु विधि पूर न होत तमामा ॥
तब वै जरत जरावत मोहीं । सकल मूल नारिहिं सुख जोहीं ॥

दो०—नारी बीज अंकुर विषय, सुत पुत्री सब शाख ।
पर्ण सकल व्यवहार तेहि, त्रिविधि ताप फल चाख ॥

बल बुधि वीर्य स्ववश शुचि स्वाहा । भूल विवश फिरिफिरि वहि राहा ॥
पढ़ि पुराण भाषत बहु बानी । न्याय सांख्य योगहुँ सब जानी ॥
सो सब ज्ञान तहाँहि हेराने । हंसि लसि रसि जब शरतिय ताने ॥
हाकिम हुकुम बड़ी प्रभुताई । शान मान तेहि हित चतुराई ॥
सपनेहु सुधि न करत हम कौना । मैथुन हित दोऊ अघ भौना ॥
नयन बयन शर उर में खरकत । जेहिते जलत उधर ही सरकत ॥
पट भूषण धन पाय अशेषा । तउ संतुष्ट होत नहिं लेशा ॥
जो कहुँ तुष्ट तो कोमल छूरी । मीठो विष पर्शत गुण धूरी ॥

परवशत भोग चाह बढ़ि जावै। आदि अंत दुख लत भरमावै॥
ज्यों २ मिलत,सो त्यों २अनमिल। अनमिल ख्वाहिशमेंजरक्योंदिल॥
यह सब संग दोष कर हेतू। योषित घट भ्रमजल कर केतू॥
ज्ञान विचार सुसंग न भावै। सदग्रंथन में नहिं मन जावै॥
देहवाद घनघोर हृदय महँ। सूझत नहिं सन्मार्ग कछुक तहँ॥
बेर बेर वहि खटकत नारी। काम क्रोध मद से मद जारी॥
अति उनमाद करे विपरीती। जेल सजा भोगत सब भीती॥
दीप तेज लखि नाश न जाने। पाँखिहुँ सेऽधम जानि लुभाने॥
पाँचो विष पुर चुम्बक नारी। खिंचत लोह सम तहाँ अनारी॥

दो०—सुखछलकारिणि भ्रम भरन, करन दीन अघ देश।
सो नारी की कामना, दुखमय मित्र हमेश॥
ब्याहा तो पीड़ा विवश, अन ब्याहे को चाह।
सो ललना विष लड्डु वत, खाय न खाये दाह॥
बिन खाये रोगै गयो, भोग खटक आसक्ति।
सो तथापि बिन बोध के, श्वान शुनी ज्यों रक्ति॥
बिन मारे अरि मरण भल, नारि रहित स्वच्छन्द।
करै विविधि सब साधना, ले निस्पृह सुखकन्द॥
सुख भोगे सुख दुरत है, सुख तजि सुक्ख अथाह।
ज्यों अफीम लत से दुखी, लत्त रहित दुख काह?
जस नर नारी ओर खिंचि, तैसे नारिउ क्षोभ।
कठिन परस्पर मोह है, बिन पारख दोउ लोभ॥

दो०–अस हरि आरी विषलती, दलि मलि दे गुण ज्ञान।
सुभग भोग दीपक रमणि, जरि पतंग चिद मान॥
पर्श भोग कंटक चुभ्यो, नारी नर ही माहिं।
ज्यों ज्यों ताहि निकारतो, त्यों त्यों चुभतो जाहिं॥
माया चाह दवाग्नि दै, मैथुन आँच सु जोर।
जले जात सुध बुध गई, परखे पावै ठौर॥
सुत मोरे नहिं एक दुख, गर्भ जन्म दुख पाल।
नीको मोह सुदुष्ट दुख, नशि दुख दुख ता टाल॥
बहु श्रम दुख रक्षा दुख, तृष्णा दुख बहु आहि।
नृप भय चोर बधत ठग, धन मद दुख तजु ताहि॥
बुद बुद तड़ित व दीप शिख, सकल जगत के भोग।
जो विचार करि देखु तो, अंध कूप गृह शोग॥
इन्द्रिन सुख चारा लखे, युवति जार के बीच।
रमत रमणि पकड़्योबधिक, मर्कट नाचत भीच॥
परम पारखी देखि यह, मर्कट जीवन हाल।
चारा सुख को लोभ तजि, सदा स्वतन्त्र निहाल॥
भद्र होउ हे मीत! तुम, करो आपनो काज।
मन मारब निज काज है, जेहि ते सब सुख साज॥
साधु संग भक्ती करै, तजै बाम अष्टंग।
करै परिक्षा साधना, काम वेग हो भंग॥
दुखश्रम साधन जगहु महँ, केवल दृष्टि घुमाय।
बहुतै श्रम से भव बहै, थोड़े श्रम ठहराय॥

मनश्चन्द यह सब सुन्यो, क्षण विराग उर चेत।
दुखमय सकल देखात जग, वृथा जगत से हेत॥
यह विचारि आगे बढ़्यो, देख्यो बहु बहुतेक।
रटत सूत्र निर्भय सकल, सहज स्वतन्त्र सुटेक॥

मनश्चन्द पुनि मन में लेखै। विद्या तप से सब सुख देखै॥
सुख खोजी तहँ कछु रुकिगयऊ। देखत सुनत वहाँ जो भयऊ॥
आपस में सब बहु बतलावहिं। आशा बद्ध सकल भय पावहिं॥
कोउ कह विद्या पढ़ि सब नीके। खण्डन करि बहुमत धरणीके॥
जीति सबै निज मत फैलइहौं। धनिन भूप कहँ जाय चेतइहौं॥
एक कहै विद्या मोहिं आवै। शीघ्र व्याह मम ह्वै पुनि जावै॥
इक कह मित्र परिक्षा[१] को दिन। तीर्थ[२] अतीर्णहुँ[३] को भयछिन२॥
ह्वै उतीर्ण पुनि पण्डित होयहौं। बहुत धनार्जन[४] करिसुखजोयहौं॥
कोउ कह बिना संस्कृत विद्या। नाश होत नहिं कबहुँ अविद्या॥
जब अशेष[५] विद्या मैं पढ़हौं। जानि सकौंसत तबथितिलइहौं॥
यहि विधि क्षणिक प्रवाही वपु में। भ्रमत आश वश नित यहि जग में॥
दुख समाज लखि पथिक जु आगे। देखत भयो सभा बड़ लागे॥
भूरि भूरि पण्डित जन भेषी। शास्त्र वेद विद तर्क बिशेषी॥
करत सकल शास्त्रार्थ न हारहिं। द्वैताद्वैत मंत्र उच्चारहिं॥
यहि विधि करत विबाद बढ़ायउ। शब्दारण्य में सकल भुलायउ॥
जीत हार की चली जु धारा। सब विदुपन को यहि दुख मारा॥

टि०-१–इम्तिहान। २-पास। ३–फेल। ४–धन की प्राप्ति करना। ५–सम्पूर्ण।

जो हारै सो जनु मरि जावै । जो जीतै नहिं फूलि समावै ॥
शीघ्र वाक्य पटु भनत न थकई । जीत ताहि ताड़ी दै हँसई ॥
ऐसे थल में बुध नहिं जावैं । सर्प समाज देखि भय पावैं ॥
सुनहु तात जो अतिशय न्यारे । धीर स्वतः संतुष्ट सदारे ॥
सो केहि हेतु विवाद में परई । निर्विवाद जेहि रूप असरई ॥
बहुत काल सत्संग से बोधा । सो कि घरी महँ होवत शोधा ॥
दो०-जीत माहिं बपु स्वार्थ सुख , हारत स्वारथ नाश ।
इमि अबोध जन मान कर , पावत निशि दिन त्राश ॥
जे विराग संयुत सुजन , हंस वृत्ति ते पुज्य ।
सहजै आवै नाव भरि , तो क्यों दुख में भुज्य ॥
जो राजा यह सभा कराई । लखि विवाद नहिं निर्णय राई ॥
पुनि राजा कछु यज्ञ करायो । सादर पूजि सबहिं शिर नायो ॥
द्रव्य भेंट कम ज्यादा देखे । कियो द्रोह सब विप्र विशेखे ॥
कह्यो भूप जस भाव सो कीन्ह्यों । विद्वज्जन दुख में चलि दीन्ह्यों ॥
लोभ क्रोध मद मान समाना । जस मूरख तस पंडित जाना ॥
विद्या फल विशेष अभिमाना । और क्रिया अबुधन सम जाना ॥
यह सब देखि पथिक दुख भयऊ । विदुषन कूँ विद्या दुख दयऊ ॥
अहो ! सृष्टि महँ कहुँ सुख नाहीं । यहि सोचत आगे चलि जाहीं ॥
पुनि देखेउ मन्दिर में भीरा । दर्शन करि निकसीं तेहि तीरा ॥
बड़े गृहन की योषित१ वृन्दा२ । बरबर३ पट भूषण स्वच्छन्दा ॥
तरुण अरुण पंकज मय देहा । सुभग मद्य घट आयुध सनेहा ॥

टि०—१-स्त्री । २-समूह (तमाम) । ३-श्रेष्ठ ।

परत न श्रम कछु धरत न शोकू । पुतली इव जन रक्ष इन्हों कू ॥
मन वाणी काया सब मोहक । मन माँगे सुख भोगिन सोहक ॥
जेहि के देखत मन सुख सिन्धू । है व्याकुल सो घट सुख बिन्धू ॥
हमहुँ याहि घट में सुख पावैं । यहि चिन्तत पीछे चलि जावैं ॥
पंथ चलत योषित इक इक से । चर्चत गुप्त मंत्र प्रिय प्रिय से ॥
सुनहु सखी दिन रैनिहुँ शोगी । कबहुँक कृपा ईश की होगी ॥
धवलधाम धन दम्पति सुख सन । बिना वंश इक दीखत दुख घन ॥
इतने महँ इक बाला बोली । लघु वय शोक करति क्यों पोली ॥
अब नहिं तौ आगे फल फूलै । अहो मोहिं दुख निशि दिन शूलै ॥
दस दस सुत ह्वै ह्वै मरि गयऊ । विधि कठोर एको नहिं दयऊ ॥
सम सम के सुत अन्य वड़ेरे । छाती जलत देखि तिन केरे ॥
इक बोली तोहिं याद तो होवत । हमरो शुन्य कोख किहिं रोवत ॥
अन्य कहति मम पूत कपूता । यहि ते भल नहिं होय प्रसूता ॥
रोगी सुत कोउ कहे में नाहीं । बहु पुत्री कोउ निधन दुखाहीं ॥
अपर बदत प्रौढ़ा दुख रोई । मम संगी जारनि संग गोई ॥
कबहुँ न हम से राखत मेली । देखि दुसह दुख जरत हवेली ॥
कोउ अतृप्ति कोउ बिधवा रोवति । सब दुख के दल दल मेंगोवति ॥
यहि विधि सब आपस में भामिनि । कहत सुनत आईं दुख धामिनि ॥
अस्थि मांस मल मुत्र कि भाजन । कामक्रोध मद मोह में राजन ॥
सो सुख दायक किमि हो माया । मित्र ! अबुध सुख मानि भुलाया ॥
लखि पंथी पर्दा के भीतर । भट्ठी जलत शोक दुख घर-घर ॥

दो०-बिना नित्य गुरु पद लखे, कैसे दुख हो अन्त।
स्वप्न दुःख जागे बिना, कौनिउ विधि नहिं हन्त ॥
आगे चलि पंथी लखि म्याना। चारि कहार लगे बलखाना ॥
कोमल स्वच्छासीन सुशोभित। सेठ लक्ष्मीचन्द उजोसित ॥
पीछे सब सैना तेहि आवत। क्षमा-क्षमा कहि चँवर डुलावत ॥
लखि प्रणाम नारी नर करहीं। मंगल मंत्र विप्र उच्चरहीं ॥
यहि विधि पहुँचे जहाँ हवेली। रत्न जटित सब सुख से रेली ॥
मन्त्री जन बहु रत्न लुटाये। आज्ञावर्ति अनुग जुटि आये ॥
अंग अंग भल भाँति सवाँरे। आई युवति मिलन निज प्यारे ॥
पंथी यह सब कौतुक देखा। सुख आश्रय निर्विघ्न विशेखा ॥
अन्य ठौर सब कलई देखे। तेहि कारण कछु संशय लेखे ॥
दो०-समय पाय एकान्त में, मिले सेठ से जाय।
धन्य धन्य तुम सुखितइक, भावत सुख तव आय ॥
मधुर मनोहर सुन्दर जोरी। अघटित धन कछु बात न थोरी ॥
आज्ञावर्ति सकल तव दासा। वपु आरोग्य नाहिन कोइ त्रासा ॥
अन्य ठौर सुख-दुख से घेरे। कहि सब कथा-सुखित-तुम हेरे ॥
सूक्ष्म दुःख तुम्हरेउ कोउ आहे। कहहु सत्य बहु विनवत पाहे ॥
सुख खोजी सुन पंथी हाला। मो सम दुखी नाहिं यहि काला ॥
जब बिवाह मैं कियों सुभागी। दम्पति प्रेम नेम सुख पागी ॥
एकाएकि दैव दुख दीन्हिसि। जहँ फूलन तहँ सूखब कीन्हिसि ॥
दो०-अघटित प्रेमिन नारि को, भयउ अचानक रोग।
औषध बहुतै करत हूँ, भइ असाध्य अतिशोग ॥

चित्र मात्र सो रह गई , मोहिं अतिशय दुख देखि ।
अहो दैव ! आरोग्य कर , या खैंच इसे दुखि लेखि ॥
जाय निकट तेहि बहु दुख पायों । तहि संजीवनि रस जु खिलायों॥
तब कछु नयन खोलि वह रोई । पूछे कहति भई दुख गोई ॥
अहो ! हमार सकल सुख साजा । सब छुटि जाय तुमहुँ महराजा ॥
हमरे ठौर जू दूसर नारी । करि सुख सेमनिहौ वहि प्यारी॥
सुनि अस मोह विवश मैं भयऊँ । अपर न बरब नारि मैं बदेऊँ ॥
प्रिये ! बिरह मैं रहब एकाकी । नहिं समझी हठ तिय जिय टाँकी
दो०—मोह विवश मैं अन्ध ह्वै , पैन धार लै हाथ ।
काट्यों इन्द्री[२] तुरत ही , विह्वल भयउँ अनाथ ॥
घाव भरे बहु दिन सरे , मन्दिर बीच कपास ।
जलत रहूँ दुख अग्नि से , गुप्त कहौं केहि खास ॥
जस कस हम कछु दिन महँ , भयउँ ठीक हे तात !
क्रम क्रम मम प्रियवादिनी , भै अरोग्य दैवात ॥
वेगारम्भ युवक दोऊ , संततिहुँ नहिं कोय ।
नित सनमुख धन धाम बिच, जग सुख स्मृत होय ॥
कहहु काह हम दोनों सुख में । कुलिश हृदय करि जीवत दुखमें॥
जौनि प्रिये वश अकृत करिया । सो संतुष्टि न मोहिं से भरिया ॥
विघ्न हरन ये बिनय निहोरे । किहु विधि धर्म रखहु प्रभु मोरे॥
दग्ध वृक्ष बिच ऊपर सुन्दर । तथा सुखिन दुख जानहु अन्दर॥
अपर फिक्र मोहिं आहि अनन्ता । राग द्वेष धधकत उर हन्ता ॥

टि०—१–निश्चय । २–शिश्नेंद्री ।

जोरू ज़र घर के सम्बन्धा । भोग रोग श्रम बिघ्न प्रबन्धा ॥
यहि भवधार त्याग करि नीके । करत बोध थिति संत अमीके ॥
सुने बचन अस ढोल में पोला । अहो सकल सुख विष से घोला ॥
दो०-मन माया को रूप यहि, जहँ जहँ सुख अति दर्श ।
तहँ तहँ दुख भट्ठी जलत, ख्वाहिश अग्नी शर्श ॥
धनौ बहुत तो पूत नहिं, पूतहुँ तो धन नाहिं ।
दोनों तौ अनुकूल नहिं, खटक रहित सुख काहिं ॥
नर नारी शिशु अधनि धनी, भूप युवक जिव बृन्द ।
सब दुख मूलक देह धरि, गँसे सकल दुख फन्द ॥
शेष ठौर सब घूमि के, देखेउँ दुख बहु भाँति ।
देह रोग मन चाह युत, कहो कहाँ कुशलात ॥
मनश्चन्द पुनि घूम के, गयो सन्त के ठौर ।
बिनय कियो बहु भाँति से, शरण शरण शिर मौर ॥

* गजल प्रार्थना *

शरण में तुम्हारे हम आये हुये हैं ।
जगत के दुखों से दुखाये हुये हैं ॥टेक॥
करूँ प्यार प्यारी जिसे जान दोस्ती,
वही कुल कुटुम सब फँसाये हुये हैं ॥१॥
हुये काम पूरे वही दोस्त घूरे,
खलक स्वार्थ अपने दिखाये हुये हैं ॥२॥
बलूँ आह आतस करूं भोग ख्वाहिश,
न दिल चैन तृष्णा बढ़ाये हुये हैं ॥३॥

शैतान इन्द्री जो मन ये घसीटें,
किये ख्वार ख्वारी जलाये हुये हैं ॥४॥
बिनै जाल बानी जु कज्जाक गुरुवा,
बहुत भर्म डारी भ्रमाये हुये हैं ॥५॥
जगत सिन्धु भारी डुबूँ मैं अनारी,
करो पार गुरुवर घबड़ाये हुये हैं ॥६॥
भरो ज्ञान भक्ती जलैं कर्म बीजै,
छुटैं तीन तापैं चहाये हुये हैं ॥७॥
हो तारक जहाँ में तु गुरु देव स्वामी,
यही प्रेम आशा लगाये हुये हैं ॥८॥

सकल ठौर मैं घूम्यों स्वामी। दुःख रहित पद लहेउँ न धामी ॥
है कोउ स्थिति रहित कलेशू। अथवा अंधाधुन्ध सब देशू ॥
उत्पति पाल संहार तरंगा। बिधि हरि हरहुँ चाहदुखअंगा॥
ब्रह्म स्वभाव जगत को रूपा। विशय ईश मन ब्रह्म अनूपा ॥
बीज वृक्ष सब दुख मय वादी। केहि के शरण जाउँ मैं आदी ॥
यद्यपि सब दुख में हैं व्याकुल। सो तथापि मैं बहु बिधिआकुल॥
रोगी डूबत भूलत जोई। सोइ नर दुखित बिवाई होई ॥
जेहि पद पाय रहहु प्रभु थीरा। जेहि जाने पुनि होय न पीरा ॥
जेहि को लहे जगत सुख फीका। जेहि जाने यम भय गइ जीका॥
वहि उपाय भापहु उर ज्ञाता। जेहि विधि होय दास कुशलता॥
सुनि अस बैन दुखी जन केरे। बदत दयामय करुणा घेरे ॥

दो०-दुःख रहित तव रूपहीं, चेतन स्वयं अरोग।
चाह न सन्मुख जीव के, तो कहं दुख सुख रोग॥
सबै भास निश्चय मनन, छोड़त पकड़त जोय।
सो स्वरूप चेतन स्वतः, जानि दुःख गत होय॥
पंच विषय तम देश में, अंधाधुन्ध भव धार।
तेहि को द्रष्टा जीव पद, कुशल स्वरूप तुम्हार॥

* प्रश्न *

जो अरोग नित कुशल मैं, तो क्यों लाग्यो रोग?
जेहि के वश व्याकुल रहत, पावत असह विशोग॥

* उत्तर *

इन्द्रिन के सम्बन्ध से, मनोरोग बनि जाय।
मन से इन्द्री पुनि लहैं, चक्र ये घूमि घुमाय॥
यहि दुख कारण भूल है, भूलै से भव रोग।
जेहि के भूले होय दुख, तेहि को जानि अशोग॥
निजै भूलि के निजै दुख, निजै जानि निज थीर।
निज स्वरूप अमृत अहै, क्लेश रहित गम्भीर॥

* प्रश्न *

अहै स्वाभाविक या संयोगिक। कैसे भूल जनित दुख भोगिक॥

* उत्तर *

जो स्वभाव से भूल रे भाई। तब तो एकै रूप दिखाई॥
एक रूप तो दुख पुनि कैसे। केहि को केहि से छुटत चहैसे॥
छुटन चहत सब दुख से प्रानी। यह अनुभव सबजीवहिंजानी॥
यहि ते नाहिं स्वभाविक भूला। जड़ चेतन संयोगिक भूला॥

जड़ चेतन दोउ बस्तु अनादी । द्रष्टा दृश्य पृथक समझादी ॥
स्वाद रु स्वादि विषय अरु विषयी । कर्त्ता कर्तव भिन्न जु रहई ॥
ठहरि हृदय तुम प्रथम विचारो । दुख का कवन रूप आधारो ॥
इच्छा पूर्ति चहत सब प्रानी । सहि न सकत इच्छा अज्ञानी ॥
दो०—नाह रंक जग जीव जत, वृद्ध युवा पुनि बाल ।
चाह रोग पीड़ित सकल, तेहि टालन सब ख्याल ॥
लाभ बहुत श्रम कम परै, शीघ्र पूर्ण हो काम ।
यहि ते मेहनत नहि चहैं, सब को श्रम दुख जाम ॥
तीसर चाहत मान नित, सब पर होउं स्वतंत्र ।
तेहि ते परवश रहब दुख, ये ही त्रय दुख तंत्र ॥
ये त्रय दुख को थूलहि मूला । थूल मूल अध्यास रु भूला ॥
श्वान काँच के धाम भुलै से । बपु में भूलि स्वतः पद तैसे ॥
चाह सकल इन्द्रिन से बनई । चखै लखै सुनि सूंघि सो धरई ॥
भोग से चाह—चाह से भोगा । उभय प्रबाह धरत संयोगा ॥
जिव कर्त्ता उर खेत रु बीया । पापपुण्य दुख सुख तस लीया ॥
भोग रु इच्छा करतब जानौ । कर्तव्य कर्त्ताधीन पिछानौ ॥
सो कर्त्ता कर्त्तव्य से न्यारा । अस न जानि भूलत है प्यारा ॥
ग्राहक जीव ग्राह्य है भोगू । भूल विवश दृढ ग्रंथि संयोगू ॥
दो०—भ्रम दृष्टि से विषय महं, मानत इच्छा पूर्ण ।
इच्छा मूलक विषय है, यह नहिं जानत तूर्ण ॥
विषय भोग आसक्ति लत, देह क्रिया सम्बन्ध ।
सकल दुःख कहँ सुख लखे, यही भूल भ्रम संध ॥

* प्रश्न *

कछु सुख पावत विषय महं, तबहिं चहत दिन रात।
सो दुखमय कैसे भयो, हिय नहिं आवत तात॥

उत्तर-छन्द-

सुख तो कहाँ है भोग में, अभ्यास की यक बात है।
जलते हुये लख दीप में, पुनि पुनि शलभ झुलसात है॥
बेचैन हो इच्छा विवश, जो भोगता ये भोग को।
तृष्णा विवश आतुर महा, अंतिम में मुर्छा आत है॥
लाचार हो सुख मानि तहँ, जब होश में पुनि आवता।
तब तो वही है भूख सुख की, हाथ मल रहि जात है॥
एक सुख की चाहना में, सर्व इच्छायें दबीं।
अन्य इच्छा नाश का, सुख भोग में दरशात है॥
शिशु खेल औ मदपान सम, सुख वस्तु में अभ्यास है।
यहि ताप दुक्ख अनंत हेतुक, मोह भ्रम की घात है॥
तृष्णा व विघ्न प्रतंत्रता का, धाम सुख दुख क्यों गहे।
उसको परख के छोड़ दे, वैराग्य में आ तात है॥
अभ्यास कर वैराग्य का, सब भूख इच्छा दूर हो।
प्रेम पावे स्थिती, निज रूप जब ठहरात है॥

दो०-रोग शत्रु पीड़ा वशी, दुख में ही उपचार।
बिना दुःख नहिं सुख चहै, जिमि अरोग नहिं भार॥
बन्ध्या सुत शश शींग से, मार्यो ठूँठ के चोर।
ऐसे सुख हैं ही नहीं, दुखै नाश सुख शोर॥

सीप माहिं चाँदी लखे, रवि जल भ्रम से दौर।
निज स्वरूप को भूल वश, भ्रम सुख निश्चय और॥
क्रिय इच्छा प्रारब्धि दुख, तेहि को जेहि नाश बिधि।
सोई सुख तुम जानहू, और सुक्ख कहँ भास॥

पान तमाखू नाच तमासा। जब जाको जेहिं नहिं अभ्यासा॥
तेहि बिन हानि दुख नहिं चाहैं। पूरण तृप्त अरोग्य समाहैं॥
लहि संयोग करै लत रोगू। तब तो निशि दिन तेहि बिन शोगू॥
इक्षित भोग पाय सुख मानै। रोग बढ़ै तेहि दवा पिछानै॥

दो०—भ्रम कृत यत्न जु भोग है, जेहि ते इच्छा और।
गुरु दृष्टी लहि भोग तजि, मिटै दुक्ख करु गौर॥

प्र०—दुख को रूप हेतु पहिचान्यों। सो सम्बन्ध को कारण जान्यों॥
दुखमय बंध मिटै की नाहीं। यहौ बुझाय कहौ जन पाहीं॥
तुम सम ज्ञानिहुँ के बपु देखौं। ज्ञान से भूल मिटत किमि लेखौं॥
उ०—बंधन सुक्ख हेतु जो भूला। तो पुनि अवशि मिटै सब शूला॥
भ्रम सम्बन्ध द्विबिधि तुम जानौ। रज्जू अहि भूला पुनि मानौ॥
रज्जू ज्ञान होत भ्रम नाशत। दुःख लख्यो पर भूला जासत॥

दो०—दोनों भ्रम संयोग जिमि, जीवन में तुलि जाय।
बोध होत तम नाश हो, पूर्वहुँ बेग भोगाय॥
भूला भूलै सुक्ख लखि, दुख लखि देय न शक्ति।
तबहूँ तुरतै रुकत नहिं, क्रम क्रम रुकत अरक्ति॥
भूला चक्र सों भ्रमत बपु, प्रारब्धिक सो भोग।
ज्ञान भये हूँ पूर्व भुगे, मिटै ग्रंथि संयोग॥

निज कर छूरी मद पिया, हनै पैर निज माहिं।
सोई घाव औषध यथा, प्रारब्धिक लखु वाहिं॥
अब न पिये मद नहिं हनै, नहीं घाव पुनि होय।
सुखासक्ति इमि मन क्रिया, आगामी तजु सोय॥
आगामी सुख भर्म है, जो सुख मानै भोग।
काटि गोड़ अरु मद पिये, फिर फिर सोइ संयोग॥

* कुण्डलिया *

खान पान अति त्याग दे, तो बपु होवै नाश।
मैथुनादि सुख भ्रम तजै, ठहरत देह सुपास॥
ठहरत देह सुपास, काम मोहादिक तज कर।
पाँचो विष सुख अंश, त्याग मन क्रिय को लखकर॥
औषध सम निर्वाह करि, तजि असक्ति दुखदान।
बोध रहस्य युत थीर रहि, सोई मुख्य सुख खान॥ १॥
भोग जु त्यागी पुरुष को, है अरोग सम सुक्ख।
इक्षा श्रम औ विवशता, सुक्ख तजे किमि दुःख॥
सुक्ख तजे किमि दुख, चाह रोगै निर्मूला।
निश्चिन्त अभय अविकार, स्ववश तज्यो विषयन शूला॥
प्रारब्धिक दुख निर्वाह इक, सोउ वैराग्य के योग।
यहि विधि पारख थीर पद, दुःख रहित तजि भोग॥ २॥
छं०—जेहि संग में जेहि भोग में जेहि काम में दुख देखता।
वह काम करता है नहीं उससे सदा मन रोकता॥

नाच रंग नशादि आदत में जिसे दुख समझ जू ।
वह भूल कर नहि ग्रहण करता त्याग दे करि यतन जू ॥
जड़ देह पाँचो विषय लत इच्छादि से जिव भिन्न जू ।
त्यागत गहत परत्यक्ष है सुख दुक्ख मानि अछिन्न जू ॥
भोग से इच्छा बनै इच्छाहुं भोग जु करन से ।
हानि लाभ को जानि के कर्तव्य तजि तजि धरन से ॥
जो जो क्रिया करने से हो वह नहिं करे मिट जाय है ।
हानि जानि के रुकत जिव पुनि लाभ लखि जुटि जाय है ॥
नारि पुत्री माँ बहिन इक वाम जो जस मानता ।
शुभ अशुभ तस संस्कार जु देख कर तेहि जागता ॥
वस्तु पाँच समान्य हैं निज निज समझ सुख दुःख है ।
सुख मानि के होवै ग्रहण दुख जानि के तजि सुक्ख है ॥
भोग से इक्षा बनै बिन भोग से इक्षा मिटै ।
इक्षा मिटाना सुक्ख है यह बात जब दिल में डटै ॥
तब भोग इच्छा तजि उभय पुनि दृढ़ परीक्षा साधना ।
सुख ध्यास आदत काल तजि गुरु भक्ति बल आराधना ॥
यहि भाँति तजि सब भोग सुख निर्वाह मात्रहुँ औषधी ।
प्रारब्ध रोग उपाधि दलि सुविचार सह रहि मुक्तधी ॥
शुभ संस्कार जु पूर्व के पुरुषार्थ अब दृढ़ करि गहै ।
देखि दुःख जग बूनि दृष्टी सुजन जन संगत लहै ॥
लहि परीक्षा शक्ति पुनि निश्चय व साहस नित रहै ।
भोग सुख से अतुष्ट लखि निःतृष्ण सुख मुक्ती लहै ॥

दो०—है सम्बन्ध बिजाति जड़, भूल भरम से तात।
गहे पूर्ब सब अंग को, निश्चय मोक्ष हो भ्रात॥
प्र०—सम्बन्ध मिटै निज बोध से, जोनेउँ परख प्रताप।
बोध सुदृढ़ साधन यतन, भाखिये श्री गुरु आप॥
बाधक साधक दृष्टि बिन, इक रस ठहरत नाहिं।
तेहि ते सोऊ कहहु गुरु, लखि अनाथ निज पाहिं॥
उ०—बिपरीत[१] निश्चय[२] संग अरु, बिपरीत क्रिय[३] बाधक अहैं।
यथार्थ निश्चय[४] संग[५] पुनि, सुयथार्थ[६] क्रिय साधक लहैं॥
ध्येय औ पुरुषार्थ संगत, तीन ही इत उत रहैं।
अस जानि तीनो पलट दे, तब मोक्ष पद निश्चय लहैं॥
ये तीन अंग को पुष्ट करि, परमार्थ तब छूटै नहीं।
अस बैन पीयुष सैन सुनि, जिज्ञासु अति सुख को लही॥

टि०—१-उलटी समझ देहादि दृश्य जड़ को चेतन मानना, खानी बानी रूप पाँचो विषयों में सुख समझना, तिनके सुख लेने में लाभ निश्चय। २-भोग साधक स्त्री, धन, बहु विद्यादि तथा काम क्रोधादि दुर्गुण आसक्त औ भ्रमिकों का संग करना। ३-विषय पदार्थों को इकट्ठा करने तथा तिसके विषय सुख लेने में लाभ जान कर सब प्रकार के प्रयत्न प्रसन्नतादि शुभाशुभ क्रिया परमार्थ से उल्टे कार्य करना। ४-ज्यों का त्यों बोध, जड़ चेतन को भिन्न समझना विषयों में दुख का, उभय संबंध का, विषय त्याग से मोक्ष का, साधक बाधक का, ठीक २ निःसन्देह निश्चय होना। ५-संत, सज्जन, सद्गुरु देव, सर्व हितैषियों से प्राण प्रिय स्नेह। ६-शील क्षमा भक्ति विवेक वैराग्यादिक सब अंगो के पुरुषार्थ में साहस हिम्मत धीरता से निरंतर जुटे ही रहने का नाम यथार्थ पुरुषार्थ है।

हे सत्त्वतनु गुरु की दया, यहि भाव को जो दृढ़ गही।
चतुर कपटी काल मन भव, सिन्धु बिच सो ना ढही॥

सो०—भूल जनित मन चाल, उलटि परीक्षा और करि।
लहि अभ्यास कराल, स्थिति ले अब देर क्या॥

छं०—मोक्ष निश्चय सामने रखि यत्न में जुट जाइये।
जो जो पड़ै जग बिघ्न बहु धरि ताहि हटाइये॥
सत्संग लव नव नव बढ़े साधन सु चाव बढ़ाइये।
नहिं ख्याल करिये अन्य पर नित मन समर से धाइये॥१॥
जो बिराग के मूर्ति हैं तिनके शरण सुख पाइये।
दीन हीन असक्त चित कैसेउ अधम निज काइये॥
तउ जुटे परमार्थ रण में शत्रु मारि भगाइये।
भागने से लाभ क्या है? अर्पि प्राण डटाइये॥२॥
जब अनादी रोग है भ्रमि फिर बिजाति सबन्ध है।
है दीर्घ रोग में देर कछु छूटै अवशि यह संध है॥
ऊबने का काम नहिं है यत्न दृढ़ करता रहे।
जीव ही जब नित्य है निश्चय स्व पद जुटता रहे॥३॥
यदि यत्न से सुख भास सन्मुख भूल से नश जायेगा।
राग बिन हो चाल किमि तब मुक्त पद यह पायगा॥
कुछ कसर शुभ संस्कार जु फेरि सनमुख आयगा।
पुरुषार्थ सुकृत ज्ञान बल निश्चय ये सिद्धी पायगा॥४॥
सत शील धीर विचार दाया का कवच नित धारिये।
उपराम औ सद्‌बोध लेकर काम रिपु को मारिये॥

वैराग्य का भाला चला आसक्ति की जड़ काटिये ।
गुरु भक्ति रथ पर बैठ कर सब शत्रुवों को छाँटिये ॥५॥

❀ रहस्यामृत—छन्द ❀

भव छूटन चाह जोई धरिहैं । सब साधु गुणौं से सदा भरिहैं ॥
सब ग्रन्थन को जो सदा गुनिहैं । परमारथ सिद्धि गुणौं लुनिहैं ॥
पर के गुण को जु भले गहिहैं । तिनके दुख द्वन्द नहीं रहिहैं ॥
अपनो गुन अवगुन जो देखिहैं । कबु ते मद के वश ना शखिहैं ॥
धृति साहस निश्चय ना छोड़िहैं । निज स्थिति पंथ तेई अड़िहैं ॥
नित प्रेम एकांन्त को जो गहिहैं । नर ते मन फंदन को ढहिहैं ॥
पुनि मोहक ठौर से जो दुरिहैं । डर भय जु रखैं सो सदा बचिहैं ॥
मन प्राणिन से सजगै रहिहैं । भव सिन्धु में ते नर ना बहिहैं ॥
सत्संगत में रुचि लौ रखिहैं । नर ते कबहूँ दुख ना चखिहैं ॥
गुरु ऐन को जो न कबू तजिहैं । सुख शांति सदा थिति में गजिहैं ॥
भ्रम शब्द के द्वन्द में ना खिचिहैं तेइ पारख शब्दी को स्व चिन्हिहैं ॥
किहुँ मान को भङ्ग जो ना करिहैं । तेइ वैर से नित्य बचे रहिहैं ॥
निज सत्य स्वरूप में जो टिकिहैं । सहजै भव पार सुखी रजिहैं ॥
दुख धाम सदा जग को लखिहैं । पुरुपार्थ यही करि गो जितिहैं ॥
यहि भाँति सबै अँग जो गहिहैं । सोइ सन्तत एक रसौ रहिहैं ॥
थाह प्रेम से सादर जो गइहैं । शुचि पारख रूप तेई लहिहैं ॥
सो०—ऐसे हित गुरु बैन, सुने सकल मनचन्द ने ।
भयो बोध लहि चैन, बिनय करत बहु भाँति से ॥

* गजल *

गुरुदेव मुझको सदा याद आवैं।
वो वैराग्य मूरति नहीं दिल से जावैं ॥टेक॥
जगत में कहो कौन ऐसा है दानी।
जो अपने स्वयं सत्य धन को प्रखावैं ॥
बहुत दिन हुये जो विषय सुख के धारा।
जो हम औ सगे सब बहे को छुड़ावैं ॥
जो अपनेहि औरों से बिन स्वार्थ दानी।
दिये दिव्य दृष्टी मिले चैन टावैं ॥
यदपि मन के धारा विवश हूँ हमेशा।
तदपि यत्न गुरु की दया पार पावैं ॥
निकट दूर सुख दुख या कोई हो औसर।
हमेशा रहैं याद गुरु प्राण भावैं ॥
हितैषी क दृढ़ प्रेम भक्ती न छूटै।
इसी से हमारे सकल विघ्न जावैं ॥
गुरू से गुरू पद को याचूँ हमेशा।
यही प्रेम गुरुजी जु निश्चय पुरावैं ॥

छन्द—

जस स्वाद महै मन लागत है, जस सुन्दर रूप में पागत है ॥
जस कोमल कोमल पर्श चहै, जस गन्ध सुकोमल शब्द लहै ॥
जस यौबन औ धन मान प्रिये, जस देह को स्वारथ जान लिये ॥
जस गो मन सुक्ख के धार बहै, दुख द्वन्द सहै पै तहाँहि रहै ॥

जस प्रोक्ष में तीरथ वर्त तपै, बिरही नव नित्य जु नाम जपै ॥
तस हे गुरुदेव तुम्हीं में लगें, तोहि छोड़ि न और कहूँ पै पगें ॥
गुरु ग्रन्थ पढ़ें गुरु ध्यान करें, गुरु वाक्य विवेक भवाब्धि तरें ॥
यहि भाव करो यहि चाव भरो, गुरुदेव! जु आप के पाँव परों ॥
शुचि सत्य सुदेव हैं आप खरे, बस आपहिसे मम काज सरे ॥
जस माया ने मोर सुबुद्धि हरी, सत साधन औ सद्बोध टरी ॥
तस आप दया करि ज्ञान भरी, हरि कै कुमती दै मन्त्र जरी ॥
आप दया करि ज्ञान दियो, सब भाँति हमें प्रतिपाल कियो ॥
सब जाल प्रखाय कृतार्थ कियो, मम पारख में नित प्रेम दियो ॥
बस आप से दास सदा ये चहै, तोहिं भूलि न ये मन अन्त बहै ॥
गुरु आप के ऐन सदाहि रहैं, जग संसृत नाँघि के थीर रहैं ॥

दो०—श्री गुरुदेव सुभेव दै, जैसे मोहिं प्रतिपाल ।
तैसे संतव दोष क्षमि, रहो अनुकूल बिशाल ॥
साधन दृष्टी ध्येय शुचि, जो कुछ मुक्ती साज ।
सो सब गुरुवर की दया, गुरु बिन बनै न काज ॥
मनश्चन्द बहु भाँति से, बिनय करी गुरु शर्ण ।
गुरु रहस्य अभ्यास लव, हो गयो तारण तर्ण ॥
सुने विशद सम्वाद इमि, सब जन अकथ प्रसन्न ॥
जनु सब कारज सिद्ध भौ, नौमि नौमि गुरु धन्य ॥
कथा भयो बिश्राम, निज निज आश्रम सब चले ॥
गावत भजन विराम, तन मग मन गुरुपद महैं ॥

❀ चैतन्य भजनाष्टक ❀

* भजन—१ *

मुझे अब नाथ बिन तेरे, नहीं पल भी करारी है।
कहो प्रभु याद कैसे हो, मेरी दिल से बिसारी है ॥टेक॥
कठिन भवसिन्धु की दरिया, न दिखता घाट बेड़ा है।
तरूँ बल पार फिर किसके, यही मो शोक भारी है ॥ १ ॥
किया मैं खोज बहुतेरा, मिलै कड़िहार कोउ मेरा।
सदा ये युक्ति करते ही, उमर सारी गुजारी है ॥ २ ॥
बहुत दिन योग जप आदिक, फिकर शिर बोझ ढोता हूँ।
न पाया जगत कुल हेरा, तुम्हें तब आ पुकारी है ॥ ३ ॥
सकल अब छोड़ि के आशा, पड़ा कब्बीर तप द्वारे।
लखो अब दास चेतन को, चरण में प्रीति धारी है ॥ ४ ॥

* भजन—२ *

मुझे दीन बन्धू बचा कर के दाया,
असह दुःख दारुण जगत बीच पाया ॥टेक॥
सुना नाम तेरा है अधमो उधारण,
हृदय-हर्ष कर के हूँ अतिशय मैं आया ॥ १ ॥
सहायक नहीं और दूसर है मेरा,
अहो प्रतिपालक जो तुम्ह भी दुराया ॥ २ ॥
नहीं कर्म अब तक बने कोई लायक,
समय मुफ्त में ही है सारी गवाँया ॥ ३ ॥

मिटे भूल करतव सही जो सिखा दो,
हटैं ताप त्रय जिनमें नित ही तपाया ॥ ४ ॥
पड़ा शीश धर के कमल पद पै चेतन,
करो जन्म सद्गुरु सफल कर के दाया ॥ ५ ॥

* भजन—२ *

नहीं याद मेरी है सतगुरु भुलाना,
पतित बाल को ये चरण में लगाना ॥टेक॥
विदित नाम तेरा है अधमो उधारण,
तो कहिये कहाँ फिर मैं जाऊँ बताना ॥ १ ॥
मलिन कर्म मेरे कहाँ भाग्य ऐसी,
न मालुम हुये दर्श कैसे न जाना ॥ २ ॥
गुजरते हैं जैसे हमारे प्रभू दिन,
नहीं देह से निकलते जो प्राना ॥ ३ ॥
ढके पूण घन हैं वो कामादि हमको,
उठै शल विद्युत विषय चाट नाना ॥ ४ ॥
कर के कृपा ऐसी शोषक प्रभंजन,
चला जोर से मेघ तम को उड़ाना ॥ ५ ॥
फटै मोह बादल खुलै ज्ञान रबि जब,
बसै तेरी सूरति मेरे मर्म थाना ॥ ६ ॥
यही आश चेतन पुरा दो विशालम्,
कठिन ग्रंथि स्वामी ये चिज्जड़ छोड़ाना ॥ ७ ॥

* भजन—४ *

भयो दुख दूरि दरश तव पाये ॥ टेक ॥
सूखत खेती बिन बर्षा ज्यों,
भै हरियर जल पाये ॥ १ ॥
भ्रम बन्धन अघ शोक मोह उर,
दै निज बोध नशाये ॥ २ ॥
तत्त्व अकारण जड़ खुद किरिया,
जीवन नित्य लखाये ॥ ३ ॥
पंच विषय अध्यासहिं बन्धन,
मोक्ष होय निज तिनहिं हटाये ॥ ४ ॥
कृपा करन गुरुदेव विशालं,
चेतन शीश चरण तिन नाये ॥ ५ ॥

* भजन—५ *

ऐसे गुरु हैं जीवन हितकारी ॥ टेक ॥
जो चलि दीन शरण तिन आवैं,
देय तुरत दुख तिन सब टारी ॥ १ ॥
विमल सो निर्णय करि शिक्षा वर,
सकल भ्रम दुख देंय निवारी ॥ २ ॥
दया क्षमा शीलादिक बल दै,
मन रुज व्याधि हिये संघारी ॥ ३ ॥
दिव्य धीर कबीर कृपानिधि,
चेतन को लिये बेगि उबारी ॥ ४ ॥

* भजन—६ *

गुरु हो दयाल दया के सिन्धू ॥ टेक ॥
करत सदा नित दीनन पालक,
आश न राखत कोइ उर हो बंधू ॥ १ ॥
जेहि पर दृष्टि तुम्हारि परति है,
होत जगत से हैं वै निर्बंधू ॥ २ ॥
हो समतज्ञ धीर भवतारक,
खेवत नाव स्वतः बल कंधू ॥ ३ ॥
जेहि पर लक्ष न कोइ को चेतन,
तेहि से आप करत सनबन्धू ॥ ४ ॥

* भजन—७ *

कहो मान मेरी स्व करतव करो।
नहीं होके परवश सबों के मरो ॥ टेक ॥
तिया के प्रसव सम है तेरी गती ये।
नहीं ध्यान परिणाम पै तुम धरो ॥ १ ॥
कहो ये विवशता किसे सुक्ख देती।
कभी भी इसे तो विचारा करो ॥ २ ॥
क्षणिक सुक्ख कारण ये औसर अमोलिक।
नहीं बुद्धि मानव गमाया करो ॥ ३ ॥
सभी काम हैं तो तुम्हीं को ये करना।
सहारा किसी का न आलस करो ॥ ४ ॥

वृथा जन्म चेतन हो क्यों ये गुमाते ।

जरा गुरु के वचनों को श्ररवण करो ॥ ५ ॥

* भजन—८ *

देखो नजर से ये वाँकी डगरिया ।

सही खास जाती है मुक्ती नगरिया ॥ टेक ॥

गाड़ी खड़ी वेग सतसंग की जावे ।

नहीं क्यों तु करता है बिल्कुल खवरिया ॥ १ ॥

दया आदि टीकट कि घंटी वो देवैं ।

खड़ा हूँ मैं कब से ये करता पुकारिया ॥ २ ॥

मनुष देह जक्सन चहै तित को जावै ।

उमर टेम पूरी है रुकती न गड़िया ॥ ३ ॥

सम्हालो करम दाम टीकट कटावो ।

चढ़ो शांति डब्बे में चेतन निवरिया ॥ ४ ॥

चेतन भजनाष्टक समाप्त ।

सत्यज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड का पंचम प्रकाश

स्वरूप ज्ञान प्रसंग समाप्त ।

* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश
व
ज्ञान मार्तण्ड

❀ षष्ठम प्रकाश प्रारम्भ ❀

(बोध निर्णय संक्षिप्त प्रश्नोत्तर प्रसंग)

सो०-परख प्रेमि जन आय, दर्शन करि गुरु संत के।
यक चित ध्यान लगाय, विनय करत दृढ़ भाव युत ॥

* प्रार्थना सवैया *

श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥ टेक ॥

जो हम भूलिके धार बहे नित कोऊ न धार से मोहिं बचायो।
और सगे जननी जनकौ सब भोगहि हेतु को पाठ पढ़ायो ॥
खेलि जुवा सब स्वारथ भोगि के मद्य पिये सुख दृष्टि के घेरे।
सो सुख मद्य नशा तुहिं टारत श्रीगुरु संत बसौ उर मेरे ॥१
कंचनकामिनि चेरे रहौं नित आजु लगे नहि तोहिं निहारयों।
ज्ञान शलाके को मेलि के दृष्टिहिं दिव्य दियो मल नेत्र को टारयो ॥
देव दया लहि देव को देखत देखत ही तम भाग उजेरे।
अंध को पारख नैन दियो प्रभु श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥२

तव पद भिन्न लह्यों दुख जो कुछ सो न कहे इति जानत स्वामी।
कहाँ न गयों रिरिहात सुखै हित कर्म रु भोग भवै सब धामी ॥
कोल अजा खर श्वान मृगा खग ताहू से मंद गती बहु घेरे।
भाग्य जगी जो मिले गुरु साहेब श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥३॥
आजु लगे गुरु दर्श न नेमहि नाहीं सु ग्रन्थ पढ़े कर नेमा।
दास के भाव न सेयों गुरु पद व्यर्थ गई वय मोह जिये मा ॥
कामीहुँ लोभिहुँ से प्रभु प्रेम न हौं हत भाग्य न सन्मुख मेरे।
ऐसेहुँ मंदन को हित शिक्षत श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥४॥

तत्त्व क्रिया जड़ चंचल रूप जो ताहि पे शासन चाहत भूले।
सो जड़ पंच विषय कछु हाथ न मानिहि मानि के आशा में शूले ॥
हैं जग जीव मनोमय भूले में भूला को स्थिति चाह गढ़े रे।
सो सब भूल जु विघ्न विनाशक श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥५॥
है विपरीति सबै मम भाव जु मान रु काम गुमान में फूले।
विद्या व बुद्धि गुणों जड़ मेल से ताहि प्रमाद के जोश में भूले ॥
जो तव दृष्टि रहै नित साहेब तो तम तामस हन्ता भगेरे।
सो सब हन्ता विनाशक पारख श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥६॥

ब्रह्म समुद्र तरंग कहाँ तजे जगतहिं रूप भयो भव खाहीं।
ईश तो माया को प्रेरि स्वभाविक पाल संघार यही जु कहाहीं ॥
तत्त्व प्रत्यक्ष विषय जड़ गोचर सो सब सनमुख दूर लखेरे।
भास त्रिधा परखाय छोड़ावत श्री गुरु संत बसौ उर मेरे ॥७॥
भाषा अनेक जु विद्या अनेकन केवल बातन के पकवाना।
एकहिं एक दबावत वाद में ज्ञाता को भूलि जु और बखाना ॥

श्री गुरु पारख के बिन को अस नाद रु बिन्द प्रखाये सबेरे ।
सर्व परीक्षक श्री गुरु पारख प्रेम नमो पद पंकज हेरे ॥८॥

दो०—विनय करी सब शिष्यजन, बैठे है निर्मान ।
जनु दासातन देह धरि, स्वामि कमल पद ध्यान ॥

सो०—प्रभुहिं देखि अनुकूल, शिष्य उभय कर जोरि के ।
मिट्यो त्रिविधि दुख शूल, तुमहिं लख्यो तुम्हरी दया ॥

दो०—सिद्धि स्वपद साधन भरन, साक्षी सरन सम्हार ।
सकल सुमंगल सदन गुरु, सफल स्वरूप तुम्हार ॥
खानि बानि दुइ जाल में, अरुझि रह्यो संसार ।
ताहि छुड़ाय निज रूप को, परखायो टकसार ॥
मन बुधि बाणी गो विषय, सकल परीक्षक पार
सो महिमा केहि विधि कहूँ, रविहिं दीप लै बार ॥
यथा बाल बल मात है, खेलत खावत पुष्ट ।
जन के बल गुरु साधु त्यों, नित नव सुसंग सुतुष्ट ॥

सब विधि कुशल धीर गम्भीरा, यथा योग बर्तत गुरु थीरा ॥
खानि बानि में नहिं अनुरागी, जीवन्मुक्त सकल विधि त्यागी ॥
नाशत बंध अनादी जान्यों । निज स्वरूपसो भलपहिचान्यों ॥
रूप न आवत रूप को जानै । गंध न आवत गंध पिछानै ॥
शब्द न आवत शब्द जो बोलै । रस नहिं आवत रसन कुँ जो लै ॥
पर्श न आवत पर्शहि जानै । यहि विधिइन्द्रिन पार पिछानै ॥
जो कुछ अनुभव इन्द्रिन द्वारे । मनन होत सोइ निशिदिन सारे ॥
सो सब आहि मनोमय राशी । छोड़त पकड़त जीव प्रकाशी ॥

जेहि ज्ञाता बल से मन चलई । पुनि जेहि दृष्टि मनोमय टलई ॥
ज्ञाता भिन्न मनोमय नाहीं । यहि विधि स्वयं प्रकाश सदाहीं ॥
ठोकर शब्द सैन गुरु पाये । घूम दृष्टि सो स्वतः रहाये ॥
सो अनुभव किमि बहु विस्तारैं । प्रभुहिं पाय निज पदहिं सँभारैं ॥
पारख पाय भास भ्रम छूटै । यह निश्चय मोहिं भयउ अटूटै ॥
परम विरागवान जे संता । बंध त्याग निर्बंध रहंता ॥
पुनि संदेह एक मन मोरे । सो पूछत करि विनय निहोरे ॥
अमित काल से जीव अनन्ता । वश अज्ञान रहत कह संता ॥
खानि बानि में भ्रमत सदाई । कौन विधी को निज पद पाई ॥

दो०—प्रथम अबोध कि बोध है ? की अनादि दोउ संग ।
केहि विधि ? को पद पायऊ ? गुरुवर कहहु अभंग ॥

* गुरु उत्तर *

अहो शिष्य बड़ भागी होई । यहि विधि प्रश्न करै जो कोई ॥
भूरि भाग्य तेहि विशद बड़ाई । निर्णय करि जो निज पद पाई ॥
याको कारण ऐसा जानो । जगत अनादी काल पिछानो ॥
अमित समय से बन्धन माहीं । बँधे जीव सब बहु दुख पाहीं ॥
दुख छूटन हित अमित उपाई । ईश्वर ब्रह्म खुदा ठहराई ॥
योगहु जप तप कीन्ह महाना । तबहुँ न पायो ठौर ठिकाना ॥
जगत ब्रह्म मिश्रित बनि भूले । बहि बहि जाल फेरि फिरि भूले ॥
सुख इच्छा धारै सब कोई । दृष्टि परीक्षा जिव महँ सोई ॥
एक दूसरे दोषहिं देखै । शोध स्वतः निज मन में लेखै ॥
तब दूसर मत देत चलाई । यहि विधि पंथ प्रगट बहु भाई ॥

आपन दोष न देखत मूढ़ा। भूल माहिं सबही भये रूढ़ा ॥
तिय सुत तन धन खानी जाला। ईश ब्रह्म बहु बानी जाला ॥
दोनों में जिव फिरत बेहाला। रहट घड़ी सम दुक्ख बिशाला ॥
शम दम तोष दया सुविचारा। धारि धारि ढूँढ़त पद सारा ॥
करि करि शोध सबै मत जाना। शोधत रहत दृष्टि बलवाना ॥
नहिं पायो जब ठौर ठिकाना। बैठि चित तब करत महाना ॥

दो०—प्रबल दृष्टि से शोधता, सत्य पदारथ कौन।
घूमि दृष्टि तब देखिया, जो जाने सत तौन ॥
अमित जीव में अमितबल, ज्ञान करन को उक्ति।
एकन एक से श्रेष्ठता, कोई कि न्यारी युक्ति ॥
रेल तार विद्युत कला, विपुल शोध नर कीन्ह।
तैसे आपन रूप शुचि, घूमि लियो पद चीन्ह ॥

घूमि दृष्टि जो निज पद पावा। धीर गम्भीर कबीर कहावा ॥
शोध स्वतः सोइ निज पद देखा। जान मात्र सो आपहि लेखा ॥
सब का जानक सब का मानक। सब से न्यारा सब का थापक ॥
निज पद पाय सो अति अनुरागे। सहज विचार दया में पागे ॥
बिना हेत परखावन लागे। पारख पाय बहुत जिवजागे ॥
बीजक ग्रंथ बनाय कबीरं। परखायो सब जाल समीरं ॥

दो०—सकल परीक्षक समकि कोइ, ईश ब्रह्म बहु देव।
व्यापक सर्वमई कहाँ, कहँ न्यारा पद भेव ॥
सो बनाय केहि तुल्य कहि, केहि उपमा दे छोट।
आपहिं आप समान गुरु, बचे आप की ओट ॥

साहेब से जो बोध ले, जिनका नाम कबीर।
क्रमशः होते आजु तक, सन्त पारखी वीर॥
साखी-बीजक वित्त बतावै, जो वित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥बी०॥
पूरण टीका तेहि की कीनी। परखायो सब मोटी झीनी॥
श्री गुरु पूरण अनुभव पूरण। नमों २ सब भ्रम करि चूरण॥
राम रहस पचग्रंथि बनावा। सबै जाल तेहि महँ परखावा॥
काशी साहेब निर्पक्ष ग्रंथा। प्रगट कियो तेहि महँ सतपंथा॥
और अनेक पारखी सन्ता। परखावत गुरु लाल न हंता॥
परख रहस्य शील जे साधू। ते सब बन्दीछोर अबाधू॥
रघु इन्द्री वर जीते जोई। रघुबर साहेब परख समोई॥
सोइ गुरुबोध दयाल विशाला। दियो कृपाकरिनिज पद हाला॥
तिन संतन उपकार महाना। ऋणी सदा मैं उनकर माना॥
सोइ निर्णय पद तुमहिं बताई। पारख सब विधि भर्म नशाई॥
दो०—अमित काल से अमित जिव, रहे अबोध के माहिं।
अज्ञ दशा में दुक्ख लहि, शोध बोध प्रगटाहिं॥
अबोध प्रथम ताही ते भाई। जाते देह बनत चलि आई॥
देहैं धरि के बोध प्रयोजन। बिन अज्ञान न देह सुजन जन॥
दो०—बोध अबोध विरोध है, जिमि प्रकाश औ अंध।
धर्म विरोधी साथ नहि, तेहि ते अनादी बंध॥
तेहि ते पीछे बोध उदय हो। जीव अखण्ड अनादि सदय हो॥
जौन दृष्टि से भासहिं अरुझा। घूमि दृष्टि तब से भयो सरुझा॥

निज में फेर नहीं कुछ भाई । तब चंचल अब थीर रहाई ॥
जान मात्र सो चेतन रूपा । ताके परे और भ्रम कूपा ॥
जगत ब्रह्म की छोड़ौ आशा । वर्तहु सदा सजग नैराशा ॥
खानि बानि में नहिं तुम बहहू । पारख पाय अभय पद लहहू ॥
महा कठिन दुख जन्म मरन को । धन्य तेई तारन सु तरन को ॥
तेई शूर सुभट सुज्ञानी । शोधक श्रेष्ठ शिरोमणि जानी ॥
तेइ विद्वान सु पण्डित जानो । कवि कोविद गुणवानदखानो ॥
तेइ भ्रमसिन्धु के कर्णाधारा । परख बोध करि शोध विचारा ॥
तेइ गुरु परख कबीर कहावा । निज पद जानि के बंध नशावा ॥
सो०—सोई बोध जो लाय, नित्य वही वह रूप है ।
भूप तख्त कोउ पाय, सोऊ भूप गुण शक्ति युत ॥
परख दृष्टि दृढ़ शोध, रक्षक सद्गुण बाल लहै ।
तेइ साधु गुरु बोध, संग जौहरी दृष्टि लै ॥
दो०—सो तुमहूँ वहि दृष्टि गहि, निज पद जानो आय ।
त्रिविधि दुक्ख सब नाश हो, परख थीर पद पाय ॥
काया कुटिल कुचाल स्वभाऊ । ताहि जीति जो बीर रहाऊ ॥
सो कबीर ज्ञानिन महँ श्रेष्ठा । सोइ विशाल पद आहि बरेष्ठा ॥
सो गुरु बोध अंग जे धारे । साधु रूप सब इष्ट हमारे ॥
यहि कारण ते परम पुनीता । वरणेउँ कछुक रहस्य अतीता ॥
जाहि जानि फिर भव नहिं आगे । जाहि पाय संतत जिव जागे ॥
यह रहस्य त्रयताप नशावन । सादर सुनत हृदय हो पावन ॥
कहेउँ यथामति गुरु आधारा । पढ़त जाहि लहि विमल विचारा ॥

अधिकारिन कहँ अविचल छाया । लहत याहि जिय जरनि जुड़ाया ॥
नित्य नेम से पाठ लगावै । कण्ठ करै नित गुरुपद ध्यावै ॥
गोमन प्रकृति स्वभाव के जाला । पार होंय संतत सो निहाला ॥
सब इच्छा पूरण बिन श्रमा । सकल सिद्धि प्रद बोध ये पर्मा ॥
सो सद्बोध सकल हितकारी । नर नारी कोइ वर्ण विचारी ॥

दो०—पक्ष मोह यम देश कर, तजि के करै विचार ।
सहजै पावै परम पद, गुरु कबीर आधार ॥
जे मतिमन्द अजान हैं, अबुध मलिन मद जोर ।
गुरु कबीर को और कहि, कान न करत हितोर ॥
अब्धि खार तहँ रत्न है, गन्ना मलिन जु टौर ।
को नहि गहत सु सार को, गुणी पुज्य सब ओर ॥
व्यास वशिष्ठ कणाद जन, वाल्मीकि मुनि भूरि ।
सनक सनन्दन अखिल मिलि, कह्यो ब्रह्म सब पूरि ॥
जग समष्टि सब ब्रह्म है, व्यष्टि रूप, सब जीव ।
न्यारा पद पावन कहाँ, मिश्रित अग जग शीव ॥
सब से न्यारा अछत निज, तृण के ओट सुमेरु ।
परम पारखी शोधि शुचि, स्वयं भिन्न पद हेरु ॥
ते पारख सिद्धान्त बिन, मर्कट की गति होय ।
भास आश वश सब कहँ, नाचन पड़त सदोय ॥
इमि गुरुवर के वचन सुनि, जे समझे जिज्ञासु ।
ते सब अति सुख पायऊ, ज्यों चातृक स्वाति सुपास ॥

पुनि स प्रेम सब हो खड़े, स्तुति करें हर्षाय ।
ज्यों कोइ धार्मिक नृपति गृह, खड़े रंक समुदाय ॥

❀ गजल ❀

सतगुरु तुम्हारि महिमा, सब जग समा रहा है ।
पारख प्रकाश तेरा, सब को जगा रहा है ॥टेक
कोइ ईश ब्रह्म व्यापक, कोइ योग जप को थापत ।
कोइ तीर्थ व्रत नापत, धोखा वो खा रहा है ॥१॥
निज रूप जब कि जाना, धोखा सबी पिछाना ।
द्रष्टा स्वयं ठिकाना, खुद जो जना रहा है ॥२॥
खानी वो वानि दो ही, इनमें फिरे बटोही ।
लहता स्वपद न वोही, फिर फिर दुखा रहा है ॥४॥
इतने में शोध प्यारे, सद्गुरु कबीर धारे ।
धनि धनि शरण तुम्हारे, प्रेम शिर झुका रहा है ॥४॥

❀ भजन ❀

सदज्ञान क डंका आलम में, बजवा दिया सतगुरु प्यारे ने ।
गुरुवा जन के जाल सबी, परखा दिया सतगुरु प्यारे ने ॥टे०
घनघोर घटा भ्रम छाई थी, वह खानि वानि दुखदाई थी ।
स्वयं बोध परचार करी तम, हर लिया सतगुरु प्यारे ने ॥१॥
ये मत पंथों के जालों में, गुरुवा नारी के कालों में ।
दोनों में जीव बेहाली को, पुनि हर लिया सतगुरु प्यारे ने ॥२॥
द्रष्टा दृश्य से भिन्न कोई, सब कल्पित हैं निज भाव सोई ।
जड़ चेतन वस्तु अनादी है, दर्शा दिया सतगुरु प्यारे ने ॥३॥

बीजक उत्तम ज्ञान दिया , सब संशय मूल बिनाश किया ।
प्रेम दास को शरण लिया , श्री कबीर गुरु प्यारे ने ॥४॥

दो०—परख रूप गुरुदेव हो , मुद मंगल मय साध ।
बिगत क्लेश स्वच्छन्द हो, हरण सकल भव व्याध ॥

❀ गजल ❀

भरोसा है मुझे तेरा , तुही सब जाल परखाता ॥टेक॥
फँसे बानी व खानी में , जो हम भरमे अनादी से ।
जहाँ जाते वहाँ बटपार , मिलि हमको फँसा जाता ॥१॥
किया जप योग तप पूजन , सुना ब्रह्मज्ञान की चरचा ।
मगर संशय नहीं दिल से , हटा जिव और भटकाता ॥२॥
अनेकों कर्म बन्धन में , कभी ऊँचे कभी नीचे ।
भटकता था रहट माला के , सम नहिं शांति को पाता ॥३॥
मिले गुरु पारखी जब आप , तो सब जाल परखाये ।
यथारथ भेद को जाना , तभी से प्रेम गुण गाता ॥४॥

❀ गजल ❀

हमारे इष्ट सदगुरु पारखी , सदज्ञान के दाता ॥टेक॥
कोई पाताल के अन्दर , कोई आकाश के ऊपर ।
कोई गोलोक लोकों पर , स्वर्ग कोई चन्द्रशिल धाता ॥१॥
किसी का इष्ट पाथर कब्र , जप जग हवन करने का ।
किसी का इष्ट गिरजा घर, वो मस्जिद पै चढ़े गाता ॥२॥
किसी का ब्रह्म सुख व्यापक, कोई कह सुक्ख विषयों का ।
किसी का इष्ट वोई है , जो बहु बंधन फँसा जाता ॥३॥

सकल जालों को परखाते, नमो कब्बीर गुरु प्यारे।
वही आचार्य गुरु मेरे, वही मन प्रेम को भाता ॥४॥

* सवैया *

सत्य न्याई दयाल विराग हिये, भ्रम नाशक संत शिरोमणि जोई।
दाया क्षमा सत्य धीर विचार, प्रतंत्र हटाय स्वतन्त्र हैं वोई ॥
न सतावत काहु निर्वाह लिये, न लचावत बात कहैं सत कोई।
यह आदिक लक्षण लक्षित जो, मम शीश अचारज नित्य हैं सोई ॥

दो०—यह सब लक्षण आप में, श्री गुरु दीनदयाल।
तातें तुमहिं अचार्य्य हो, मेट्यो फन्दा काल ॥

सो०—सजग सदा गम्भीर, निर्णय करते सत्य का।
खानि बानि हरु पीर, साधु गुरू आचार्य्य हो ॥

छं०—जेहि हेतु मुनि जन योग जप तप ध्यान करि रट लावते।
साकार कहुँ निराकार कलिपत व्याप्य व्यापक गावते ॥
कहुँ द्वैत कहुँ अद्वैत वदि जग रूप हो दुख पावते।
सो सद्गुरू कब्बीर पारखि भरम भास प्रखावते ॥
हे सद्गुरो! महिमा अमित तव किस विधी को कहि सकै।
उपमा सवी जड़ दृश्य हैं द्रष्टा स्वयं को गहि सकै ॥
जे अन्ध आतुर पक्ष में तव शांति पद किं लहि सकैं।
जे पक्ष मोह विवाद तजि तेई सुजन जन गहि सकैं ॥

दो०—विविधि भाँति स्तुति करि, कर जोरे सब कोय।
निज निज ठाँवैं सब चलैं, मंगल गावत सोय ॥

❀ बोधिका-मंगल ❀

काय वचन मनसा गुरुदेवहि , ध्यान करौं सुखसार हो ।
जो दयालु होय दया पद देवत , जासे नशै भव भार हो ॥
जेहि जाने से ठहरत जीवहिं , पाँच विषय विष टार हो ।
दौड़ धूप मिटि बोध स्वरूपी , साँच अमृत निरधार हो ॥१॥
मन बुधि बानी देह जड़ पाँचौ , त्याग गहत ज्ञानाकार हो ।
सोई जमा पद शुद्ध परीक्षक , जेहि जानत तासे न्यार हो ॥२॥
न्यार अछत जड़ ग्रंथिहि ममता , बहत रह्यो भवधार हो ।
जड़ चेतन मिलि ग्रंथि मनोमय , चौरासी बिस्तार हो ॥३॥
शोक मोह कलि कलुष कल्पना , जेहि भोगै संसार हो ।
अब यह युक्ति विचारब नीके , जासे तरौं दुखधार हो ॥४॥
हौं अविनाशी सत्य अमर पद , वाद प्रपंच आसार हो ।
तब कहु कौन संबंध जगत से , झूँठ स्वप्न दुखकार हो ॥५॥
इन्द्रिय मन मेलित जो भोगहु , मृगतृष्णा ललकार हो ।
जानि सकल अघ मूल सदन तजु , लखि अनीति व्यवहार हो ॥६॥
जड़ासक्ति नाशौ हित हाली , कमर कसौ तय्यार हो ।
प्रेम दास हिम्मत नहिं हारौ , विघ्न परैं सब क्षार हो ॥७॥

दो०—मंगल गुरु मंगल वचन , मंगल गावै नीत ।
मंगल पूरण जानिये , गुरु पारख में प्रीत ॥

छं०—भव दुख दुखिया, ढूँढ़त सुखिया ।
पा गुरु मुखिया, बिनय करै ॥

❀ विनय ❀

दुनियाँ के जालों से घबराया हूँ !
शरणों में आप कि मैं आया हूँ ॥ टेक ॥
हे करुणा के सिन्धु प्रभो तुम,
दीन जनों के बन्धु अहो।
भव सिन्धू से पार हुये,
गुरु ज्ञान रवी शीलेन्दु अहो ॥
पतितों के पावन सुनि पाया हूँ ॥ १ ॥ श० ॥
संसार दावाग्नि से जलता हूँ,
तिसमें बहुत बेहाल हुआ।
आश तंतु से बंधा हुआ खुब,
विषय बिबश निज काल हुआ ॥
जग जालों में निज को फँसाया हूँ ॥ २ ॥ श० ॥
अज्ञान नदी तृष्णा जल पूरित,
अमित चाह ये धार बड़े।
सुख दुख तट कामादिक जंतू,
महा मोह भौंरादि पड़े ॥
ये भव धारों में बेग बहाया हूँ ॥ ३ ॥ श० ॥
सर्व परीक्षक गुरु पारख को तज कर,
और कहीं कल्यान नहीं।
यही यतन अब कीजे साहेब,
जिससे फिर मेरा जन्म नहीं ॥
हे सद्गुरु ! कृपा कि आश लगाया हूँ ॥ ४ ॥ श० ॥

दो०—इमि मुमुक्षु के वचन सुनि, द्रवित गुरु जन पाल।
वचन किर्ण रवि बिम्ब मुख, निकरत भ्रम तम टाल॥

गुरु वाक्य

हे अधिकारी धन्य हो, हुये आज कृतकृत्य।
निज भ्रम-बंधन मुक्ति हित, जो तुम पूछत भृत्य॥
नर पशु समता भोग में, अधिक बोध नर ज्ञान।
जो परमारथ ज्ञान नहिं, तो नर को पशु जान॥
हो मानुष तुम पूछहू, चहत नाश भव रोग।
दासन से गृह कार्य हो, भव नश निज उद्योग॥
अन्य निरोगी तृप्ति से, अपनी तृप्ति न होय।
निज तृषी निज बोध से, तृषा नाश गह तोय॥
रोग भार भूखादि निज, निज कर्त्तव्यहिं जाय।
मनरुज भ्रमनिज अमिततिमि, निज सुबोध विनशाय॥

पद—

महा अज्ञान जो सर्प डसा है, उसकी औषध करिये अब॥
तनिक विलम्ब न कीजै प्यारे, सावधान ह्वै सुनिये अब॥
शब्द जाल आरण्य महाँ घन, चित्त भ्रमावन काज सुनो॥
शब्दी शब्द को परख लो भाई, संग पारखी ज्ञान गुनो॥

दो०—प्रथम सुसंगति भक्ति कर, ज्ञानिन के पद टेक।
तब विवेक वैराग्य हो, पावे मुक्ति अछेक॥

* भजन *

जी सदा सत्य परमार्थ गहते चलो।
आप अपने को उद्धार करते चलो॥टेक॥

जिधर ही रहोगे उधर कुछ करोगे।
करोगे तु जैसाहि वैसा भरोगे॥
तब तो अच्छेहि कर्मों को करते चलो॥ १॥

है चारों तरफ जब कि सहनाहि सहना।
तो तृष्णा अथाही में काहे को बहना॥
उर में सन्तोष धन को तु लहते चलो॥ २॥

किसी न किसी ऐन ही में है चलना।
किसी न किसी की गुलामी हि करना॥
तब तो गुरु ऐन दासों में रहते चलो॥ ३॥

जो भोगों से रुकना हि पड़ता है सबको।
अपने इच्छा के उलटे सहन कुछ सि सब को॥
तब तो पहिले हि मन वेग रोकते चलो॥ ४॥

ये झड़ जायँ मद मस्तियाँ जो तुम्हारी।
कहीं न कहीं नम्रता होय हारी॥
तब तो माया के मस्ती से हटते चलो॥ ५॥

सबी कार्य में विघ्न होते हि रहते।
तो परमार्थ विघ्नों से काहे को तजते॥
तब सकल विघ्न बाधायें दलते चलो॥ ६॥

संग करना जरूरी सुसंगी बनो।
साधु सदगुरु के चरणों के प्रेमी बनो॥
अपने ठहराव को आप लहते चलो॥ ७॥

सो०–अभय दानि गुरुदेव, कह्यो कि इच्छितप्रश्न करु।
समाधान करि लेव, ऐसो समय न पाइहौ॥

दो०–अखिल जीव वत्सल परम, निर्मत्सर गुरुदेव।
हृदय रोग नाशक शरन, सुनहु प्रश्न मम एव॥

* प्रश्न-चतुर्दश *

१ का हित समझि गुरू मग लागै?
२ का हिये सोचि सकल मद त्यागै?
३ आपस में वर्तैं केहि भाँती?
४ मन का रूप लखावहु जाती?
५ मनोदमन की युक्ति है कौना?
६ गुरुपद प्राप्ति के लक्षण जौना?
७ काग चाल तजि हँस हो कैसे?
८ सदा एकरस ठहरत जैसे?
९ किमि वर्तैं कोई विघ्न न घेरे?
१० केहि घेरे रहि जन्म न हेरे?
११ मुख्य काज मोहिं कहि समझावहु?
१२ दास भेद कहि ठौर लगावहु?
१३ जेहि गुरु बोध मिल्यो ना भयऊ?
तेहि कर्तव्य उचित का लयऊ?
१४ बोधवान वर्तैं किमि तासे?
सब संक्षेप में कहि प्रभु मा से?

* क्रमशः संक्षेप उत्तर *

सुने प्रश्न इमि दीनदयाला । कहन लगे निज जन प्रतिपाला ॥
जग दुख देखि गुरू मग लागै । सादर सुनहु ध्यान धरि जागै ॥

(१)

जगत सघन वन आहि भयावन । सर्प सिंह सम नर दुख दावन ॥
ठौर ठौर विष कंटक वेली । गो मन विषय प्रवाहिक रेली ॥
काम क्रोध मद लोभ अपारा । डाकू चोर जहाँ बरियारा ॥
लूटि मारि त्रयताप जलावैं । आँखि फोरि जहँ तहँ भटकावैं॥
मन वश प्रानी ठग के रूपा । जड़ स्वभाव से चंचल कूपा ॥
दो०—ईश ब्रह्म जड़ सृष्टि त्रय, सब कानन के रूप ।
शिक्षक ताहि शिकार जन, द्विविधि जाल तम कूप ॥
आधि रु व्याधि उपाधि युत, चैन रहित संसार ।
यहि ते पार परीक्षक, सद्‌रहस्य युत सार ॥
ऐसे हिय में शोधि के, सकल परीक्षक ओर ।
लागै गुरु मग दुख छुटै, पावै अविचल ठौर ॥
साधन श्रम दासातना, जग गुरु दोनों ओर ।
तो गुरु ओरहिं लागि किन, मिटै जगत झकझोर ॥

(२)

विवश भूल सब शूल प्रद, भूल भूमि वपु धार ।
जरा रोग मन शोग नित, यहि विचारि मद टार ॥
तत्त्व सृष्टि प्रतिकूल है, मन वश जीव विरान ।
निज शिर दुख प्रारब्धि है, कहँ प्रमाद कर थान ॥

(३)

वैर प्रेम दुइ रोग बड़, सब दुर्गुण को मूल ।
जेहि ते उभय अभाव हो, निम्न चलै गुरु रूल ॥

* शब्द *

हम से क्या वास्ता किसी से कुछ भी नहीं ॥टेक॥
जबरन कुटिल कठोर छल, जन संग खल अनरीत ।
लखि उद्वेगन चित मम, संत हृदय शुभ नीत ॥
जग के चक्र से हम से कुछ काम नहीं ॥ १ ॥
दुःख जानि गृह त्याग हम, वे उनको गह लीन्ह ।
स्वार्थ मोह परतन्त्र फल, शिर अनीति तेहि चीन्ह ॥
जैसा बोते वो बीज फल पावें वही ॥ २ ॥
दुइ चित सज्जन लोग हैं, मम सँग औ जग मोह ।
तेहि ते तेहि शिर भार परि, हम नहिं चाहत वोह ॥
हम तो अमृत स्वरूप यक चित्त सही ॥ ३ ॥
दुर्जन क्षमा के बल दुरे, सज्जन मम सँग चाव ।
धर्म कर्म सन्तोष शुचि, तेहि कर फल यहि पाव ॥
हम से हानि किसी की हुई भी नहीं ॥ ४ ॥
निज निज सब व्यापार हित, लेन देन व्यौहार ।
लेन देन हित साध कर, पुनि सब न्यारो न्यार ॥
अपने अपने हि मारग तो हम भी गही ॥ ५ ॥
कूप ताल तरु धाम पथ, पंथी जन विश्राम ।
चलत रहत निज पंथ में, नहीं किसी से काम ॥
ममता रसरी को तोड़ि स्व धाम लही ॥ ६ ॥

शत्रु मित्र खल सुजन जन, दुख सुख जग व्यौहार ।
सब से पृथक विराग चित, साक्षी धर्म विचार ॥
अपने स्थिति स्वरूप निज धाम लही ॥ ७ ॥
दो०—शील क्षमा संतोष सह, हितकर सरल अमान ।
वर्ते सहित उदारता, योग्य अंग सुखदान ॥

(४)

मनोमई मृगजल मन रूपा । निज बल से वह बल ले भूपा ॥
पाँच ज्ञान इन्द्रिन के द्वारे । जो कुछ क्रिया भोग विस्तारे ॥
सोइ मानन्दी सुख मन जानौ । जड़ चेतन के मध्य पिछानौ ॥
चेतन मानि मानि भ्रम भूलै । विविधि क्रिया करि आदत भूलै ॥
पट पताक चल दल शिशु दामिन । नदी वेग वायू दिन यामिन ॥
सब से वेगवान मन धावै । पर गुरु युक्ति लहत ठहरावै ॥

(५)

दो०—चचल गज मन वश करन, स्थिति भक्ति विराग ।
अभ्यासन तेहि केर करि, सो होवै बड़भाग ॥

* स्थिति लक्षण *

औषध सम निर्वाह लै, सेवै नित एकान्त ।
सावधान दृढ़ साधि तन, देखै मन को भ्रांत ॥
देखत देखत मन जबै, संस्कार दहि जाय ।
ठहरै वृत्ति अभाव जब, यहि स्थिति पद आय ॥

* भक्ति लक्षण *

आज्ञा पालन सेव सब, गति मति गुरु अनुसार ।
अमद अछल पारख शरण, यहै भक्ति गहु सार ॥

* वैराग्य लक्षण *

राग तजै वैराग्य है, प्राप्ति अप्राप्ति न आश।
मनोनाश कब फिक्र नित, साधन मध्य हुलाश॥
तीनों आवैं सहज ही, जो गुरु पारख ऐन।
करि संयम नव नेह से, लहै स्थिती चैन॥
पंडित केर कुशिष्य ज्यों, भूतनाथ दुखदाय।
बाँस चढ़न उतरन महैं, ज्यों वश भयो सु आय॥
भय डर लज्जा जगत दुख, सन्मुख सजग हमेश।
चंचल मन थिर होत तिमि, मोदक संत कहेश॥
मन वश चचल दुख लहै, मन जीते सुख नित्य।
ज्यों शिशु सरि बहि इक पड़ै, करि अभ्यासहि भृत्य॥

(६)

* गुरु पद लक्षण गजल *

गुरु पद कि प्राप्ति जिसको, सो काज निज सवाँरे।
गहि ब्रह्मचर्य साँचो, आशा सकल कि टारे॥ टेक॥
सब हर्ष शोक तृष्णा, आरम्भ बंध छोड़े।
इन्द्रिन के वेग रोकै, साधन से मन को मारे॥ १॥
रज तम सबंध बहुधा, आरामि वस्तु तजि के।
हरदम सजग हो चौकस, सब बंध तोड़ डारे॥ २॥
आलस्य बैर बतबढ़, हठ शठ को दिल से भूले।
मन शत्रु को परेखै, किहुँ प्रेम में न हारे॥ ३॥
जग राग कीच धोये, निज स्थिती समोये।
भक्ती विराग बल से, भव पार होय प्यारे॥ ४॥

दो०– गुरु पद प्राप्ति के लक्षण , जग सुख से रहे टूट ।
केवल निज नैराश्य सुख , स्थिति यत्न में पूट ॥

(७)

साधु संग भक्ती करै , जीव दया उर लाव ।
काग हंस हो जाय इमि , नित्य लहै सद्भाव ॥

(८)

सदा एक रस रहन को , तजै मान सुख लोभ ।
मन इन्द्रिय गहि भक्ति करु, स्थिति सहित अक्षोभ ॥

(९)

सजग धीर शुचि हित वचन, क्षमा तोष नैराश ।
समता सहन रु स्थिती , भक्ति विघ्न हर खाश ॥
विघ्न अविघ्न के रूप दुइ , दुर्गुण सदगुण जान ।
विघ्न रहित होवन चहै , सब सद्गुण को ठान ॥

(१०)

श्री गुरु पारख घेरा माहीं । दग्ध बीज संसृत पुनि नाहीं ॥
जगत ब्रह्म आनन्द जु दोऊ । सो विराटमय अलग न कोऊ ॥
जेहि में संधि बीज हो जौना । अवशि जानिये होवै तौना ॥
बंचक वास ब्रह्म सुख भोगू । तेहि घेरा में मन भव रोगू ॥
तेहि के पार परीक्षक गुरुपद । सद्रहस्य युत विगत सकल मद ॥
गुरुपद घेरा सोई कहावै । जेहि रहस्य से बंधन जावै ॥
सो परिणाम देखि हित साधै । शील क्षमा सत धीर अराधै ॥
परख ऐन रहि भव नहिं फेरी । ताहि प्राप्ति में करिय न देरी ॥
परख ऐन सोई तुम जानो । सुखासक्ति जिमि नाश पिछानो ॥

सुखासक्ति नाशन की रहनी । कहे विविधि अभ्यास से गहनी ॥

(११)

मुख्य काज इच्छा जित होवै । भोग त्यागि नित सजग समोवै ॥
इच्छा पूर्ति ध्येय सब केरो । सो इच्छा रुज भोग से हेरो ॥
सो तजि भोग गुरू की दाया । गुरु रहस्य निज काज समाया ॥

(१२)

दासन के लक्षण निर्भेदा । छल बल रहित जगत से खेदा ॥
न्याय वृत्ति से देह निबाहै । जग तृष्णा से दूरि जो राहै ॥
सेवकाई से अंग न मोड़ै । पाठन पठन अर्थ चित जोड़ै ॥
खानि बानि को मद नहि लेवै । पक्षपात तजि साधुहिं सेवै ॥
साखी शब्द याद करि गावै । विरह भावना गुरु मग लावै ॥
निज संगी को गुरु मग जोड़ै । कटुक वचनकहि दिल नहि तोड़ै ॥
सब बंधन कब ह्वै निर्मूला । रहि रहि उठत हृदय में शूला ॥
देह सुखन में भूलै नाहीं । अविनाशी थिति को नितचाही ॥
सजग धैर्य धरि शोध लगावै । धर्म नीति बल देखि चलावै ॥
वैर भाव से बहुत डेरावै । क्षमा अंग गहि शांत समावै ॥
जग की बहुत न चहै बड़ाई । केवल गुरु की आश लगाई ॥
श्री गुरु के दरशन चलि जावै । पारख अंग सकल लव लावै ॥

दो०–तेहि कल्याण में देर नहिं, जो दासन गुण आय ।
पंच विषय सुख तुच्छ तृण, तोड़ि अचल पद पाय ॥

(१३)

जेहि गुरु बोध न होवै भाई । ताको यह कर्त्तव्य सदाई ॥

हिंसक वाम म्लेक्ष मत त्यागी । चहे गहै जो पंथ सुभागी ॥
कर्म उपासन योग रु ज्ञाना । वेद मार्ग गहि साधन नाना ॥
ऋजु तप तोष दयादिक दैवी । क्रोध मोह मद असुर दुखैवी ॥
दैवी सम्पति सकलौ धारे । असुर सम्पदा तजि दे सारे ॥
तो दुख भार हलुक तेहि होवै । पै संसृत बिन परख न खोवै ॥

(१४)

बोधवान अति सजग सँभारी । तिनके सँग वर्तैं समतारी ॥
वहुत तर्क करि किहुँ न पछारे । उत संशय इत संगति नारे ॥
दोउ से गये भये जड़वादी । तेहि ते कबहुँ न बनिय विवादी ॥
संगति पड़न योग्य बहु देखै । अधिकारी तेहि मान विशेखै ॥
पहिले वहुत प्रेम जहँ ताही । नहि खण्डन करि ताहि दुखाही ॥
ताहि सराहि अन्य बहु जाला । परखावै तेहि करै निहाला ॥
ज्यों ज्यों वहै हितैषी जानै । त्यों त्यों प्रेम बढ़ै सुख मानै ॥

दो०—जब अटूट प्रेमी लखै, प्रश्न करै वहु बार ।
इक इक तब परखावई, क्रम क्रम जाल पछार ॥
यहि विधि वर्ते सवन बिच, अधिक रहै उपराम ।
आपन काज सवाँरि चल, औरो बनिहैं काम ॥
प्रश्नोत्तर संक्षेप महँ, सुनि गुनि करै बिचार ।
तृण इव ग्रंथी तोड़ि पद, लहै शुद्ध अविकार ॥

* भजन कीर्तन *

जय गुरु पारख जय गुरु संत, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥टेक॥
मन प्राणी जड़ चेतन भेद, सकल दिखायो वचन अछेद ।
मन सम्भव सब मेटे खेद, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥१॥

निज स्वरूप अमृत परखाय, भटकत जीव को शरण लगाय।
पाँचो बिष को दीन्ह हटाय, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥२॥
क्षमा शील सत धीर बिचार, सत्संगति सदग्रंथ अधार।
भक्ति बिरति से बेड़ा पार, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥३॥
जनम जनम की पूरी आश, सकल परीक्षक ज्ञान प्रकाश।
भेंटे गुरुपद मेटी त्रास, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥४॥
गो गोचर सब भिन्न लखाय, द्रष्टा भिन्न परम पद पाय।
जन्म मरण सुख आश नशाय, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥५॥
जगत जीव सब मन बश काल, श्री कबीर गुरुदेव दयाल।
प्रेमी उर में बसो बिशाल, जय गुरु दानी करुणा कंत ॥६॥

दो०—यहि प्रकार गुरुदेव वच, सुनि उत्तम जिज्ञास।
बंध मोक्ष लखि भेद सब, स्तुति करत हुलास॥

❀ पद ❀

आप के वचनों को सुन कर गुरु, मेरे भ्रम सब दूर हुए॥
काय बचन मन शरणागत हूँ, मोह महा तम चूर हुए॥
उपकार आप के अमित अहैं, फिर प्रति उपकार न मुझसे हो॥
भक्ति भाव युत सदा शरण तव, और कहो क्या मुझ से हो॥
अब यही एक चाहना स्वामी, साधु गुरु पर प्रेम रहै॥
सदा अखण्ड गुरू पद धारण, भोग रोग मन नाहिं बहै॥
सदा आप थिर पारख गुरुवर, मैं भी स्थिति वही चहूँ॥
देह ब्रह्म जग आश नाश कर, परख रूप निर्द्वन्द रहूँ॥
सब उलझन को तज कर प्रभुजी, आप कृपा से कृतार्थ हुवा॥

परख अखण्ड अनादी पद में, शांत हुवा अब शांत हुवा ॥

दो०–यह सम्वाद विषाद हर, सकल सिद्ध प्रद काम।
वृत्ति तार पुहि धारिहैं, पइहैं अविचल ठाम ॥
ऐसे श्री गुरुदेव के, निर्णय सुनि सुनि लोग।
परमारथ के ओर लगि, भये परम पद योग ॥
मनोधार में जीव सब, मनो पार गुरुदेव।
गुरु तजि कौन समर्थ अस, मन से पार करेव ॥

सो०–लाभ मिल्यो तुम मीत, लाभ कथा अमृत झरी।
लाभ प्रीति नव नीत, लाभ मूल गुरु बोध लहि ॥
जीवन्मुक्त जे संत, मधुप लोभि या लाभ कर।
सुनत समाधि लहंत, जे न सुनैं ते ठगि गये ॥
अंत कथा भइ जान, करि वन्दन शिर धरि समुद।
चलत फिरत वहि ध्यान, मीत यही तन केर फल ॥

सत्यज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड का षष्टम प्रकाश
बोध निर्णय संक्षिप्त प्रश्नोत्तर प्रसंग समाप्त।
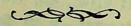
* सद्गुरवे नमः *

सत्य ज्ञान प्रकाश

व

ज्ञान मार्तण्ड

❀ सप्तम प्रकाश प्रारम्भ ❀

(रत्नावली-जीवन्मुक्ति स्थिति-नौ नियम-विदेह मोक्ष निरूपण)

सो०-संत सुजन सज्ञान, आय सबै टेरत गुरुहिं ।
गुरुवर कृपानिधान, थिति आसन आशीन शुभ ॥

❀ मुमुक्षु टेर ❀

आसक्ति मेरी हटा दो हे गुरुवर ।
जपूँ नित गुरुवर गुरुवर गुरुवर ॥टेक॥
जगत ये अखाड़ा में नटनी खड़ी है ।
अहै भर्म रूपी कमर कस चढ़ी है ॥
दै ताड़ खेली अकेली है गुरुवर ॥१॥ जपूँ०
यदपि इससे लड़ने गये शूर बीरा ।
बड़े एक से एक रण के जु धीरा ॥
लिये गर्व भारी जुटे ताँ हे गुरुवर ॥२॥ जपूँ०

सकल यंत्र औ मंत्र भोगी ने लाये।
सकल शास्त्रि औ वेद पाठी जु आये॥
उड़े होश तिस तन को लखते हि गुरुवर॥३॥ जपूँ०

हजारों को पग के तले मींज डाली।
लाखों असंख्यों को मुख काँख घाली॥
रहे कोड़े खाते धड़ाधड़ हे गुरुवर॥४॥ जपूँ०

पाँचो विषय डोरियाँ नाक डाली।
घुमाती है इच्छा इशारे से काली॥
अखिल जीवमर्कट नचाती हे गुरुवर॥५॥ जपूँ०

चैतन्य देवेन्द्र को भूल दीन्हीं।
महा जेल काया में है कैद कीन्हीं॥
सदा तीन तापों से दहती हे गुरुवर॥६॥ जपूँ०

ये नर नारि घट दो रची है असक्ती।
ये मद मोह कामादि कीलों से कसती॥
अहो ये कठिन दुक्ख देती हे गुरुवर॥७॥ जपूँ०

तृष्णा पिशाचिनि सहेली है उसकी।
सकल जीव जलते हैं लव से जु तिसकी॥
अवाकी भुगे भोग भूखी हे गुरुवर॥८॥ जपूँ०

किससे कहँ को सुने को बचा है।
चारों तरफ अग्नि हा! हा! मचा है॥
नहीं सूझ औ बूझ दुख में हे गुरुवर॥९॥ जपूँ०

माता पिता भ्रात नारी निरे हैं।
सकल भूल देवी के चक्कर फिरे हैं ॥
आपस में टक्कर वे खाते हे गुरुवर ॥१०॥ जपूँ०
फकत आप ही के है काबू वो डाकिनि।
जागृत स्वरूपी लखो भर्म साँपिनि ॥
सकल उसके पेचों के ज्ञाता हो गुरुवर ॥११॥ जपूँ०
परीक्षा व साधन के बल को लिये हो।
तिसे चूर चूरा नजायज किये हो ॥
वही शक्ति दे जन को तारे हो गुरुवर ॥१२॥ जपूँ०
दृढ़ ज्ञान भक्ती व वैराग्य भर दो।
सजगता व साहस व धीरज अमर दो ॥
जिससे कि हम भी दलैं तिसको गुरुवर ।१३॥ जपूँ०
सुने दीन के वैन जो वैरिशाला।
दिये शक्ति वर बोध युक्ति बिशाला ॥
आपै कि दाया से जय जीव गुरुवर ॥१४॥ जपूँ०
गुरूव्रत गुरूयत गुरूसत में लीना।
गुरूनेम गुरुच्छेम गुरुप्रेम पीना ॥
नशी तम असक्ती जु परकाश गुरुवर ॥१५॥ जपूँ०

सो०—अंजुलि धरि त्रय प्रीति, सादर करि जन बन्दगी।
बैठि गये शिप नीति, लखि अनुकूल जु शिष्यकहि ॥

❀ रत्नावली प्रारम्भ ❀

❀ शिष्य वाक्य ❀

छन्द— आप रक्षा कीजिये ।

नश्वर स्वभाव ये तनु सदा प्रति क्षण विनशता जा रहा ।
चित्त विषयासक्त हो तृष्णा प्रवाह बहा रहा ॥
निज रूप अपने आप शुचि कैसे ठहर सुख लीजिये ।
हे सत्यसिंधो दीनबन्धो ! आप रक्षा कीजिये ॥१॥
लक्ष्मी यौवन्य सुख दुख सर्व आपत से घिरा ।
तृष्णा व श्रम परतन्त्रता से पूर्ण लखि तो भी परा ॥
फूटे घड़े जल सम ये आयू जा रही सुधि दीजिये ।
हे पतितपावन ! भर्म ढावन ! आप रक्षा कीजिये ॥२॥
शम दम दया शुचि बन्दगी सद्धीरता गम्भीरता ।
समता सजगता एक भी साधन न है नहिं वीरता ॥
वाक्य ज्ञान से मुक्त इति दुर्बुद्धि ऐसी छीजिये ।
हे तरण तारण बोध कारण ! आप रक्षा कीजिये ॥३॥
त्वक कर्ण जिह्वा नाक नेत्र जु तिव्र अश्व से चल रहे ।
मन बुद्धि चित्तादिक कभी क्षण मात्र थिरता ना लहे ॥
आधि व्याधि उपाधि वेग में हम बहे लखि रीझिये ।
हे विरागी ! हे अदागी ! आप रक्षा कीजिये ॥४॥
स्वार्थ भोगासक्ति के झंझट व शोक अनन्त हैं ।
क्या पूर्ण वे होवैं कभी ? आवागमन के तन्त हैं ॥

अस जानि मानि सुधारते नहिं हाय ! चक्कर मीजिये ।
हे ज्ञान भानु सुजान सद्गुरु ! आप रक्षा कीजिये ॥५॥
दोनों प्रकार से है परीश्रम स्वार्थ औ परमार्थ में ।
स[१] अपूर्ण अगण्य[२] दुख से प[३] पूर्ण पद स्व पदार्थ में ॥
प माहिं दृढ़ता वृत्ति करि नैराश्य में रुचि दीजिये ।
हे असंशय ! पार भव भय आप रक्षा कीजिये ॥६॥
आप जैसे साधु गुरु गुण धाम क्षमता से भरे ।
आप के रुचि का न कछु आशय विरुद्धहिं हम करे ॥
हम से हुआ अपराध बहु किहु भाँति सन्मुख लीजिये ।
हे क्षमालो ! अब सँभालो ! आप रक्षा कीजिये ॥७॥
मत पन्थ ग्रन्थ अनन्त बाद जु भास खर्चा में बहे ।
भासिक जमा पद जीव हम जाने बिना भव भय रहे ॥
दृश्य जड़ खर्चा मिटा कर निज जमा दृढ़ कीजिये ।
गुरु कबीर जु भीर भव से आप रक्षा कीजिये ॥८॥

सो०—बन्दीछोर दयाल, निज रहनी सब देव मोहिं ।
सद्गुरुदेव विशाल, बार बार बन्दन करौं ॥
राति दिवस अब मोहिं, निज परमारथ लक्ष हो ।
बहु विधि विनवौं तोहिं, शरणपाल गुरुदेव जू ॥

छन्द—

भूल भूमिका देहा, नाथ होत सन्देहा ।
उलटत पलटत प्रानी, बश्य बासना जानी ॥

टि०—१ स्वार्थ । २ अनन्त । ३ परमार्थ ।

जौन बासना आगे, वहि जीवन अच्छा लागे।
पाँचो इन्द्रिय घेरे, पड़े वस्तु जग केरे॥
पूर्व बासना बासे, अन्तःकरण उजासे।
कछुक दिवस में आगे, पूर्व स्वभावहिं जागे॥
घिरे प्रलोभन भारी, ठगैं समीपी यारी।
प्रथमैं मन को हरहीं, प्रेम बहुत बिधि करहीं॥
संग दोष बुधि गयऊ, काम क्रोध मद ठयऊ।
तब बोध भाव सब नाशे, पुनि देहैं सुख सत भासे॥
जस जस ऊँचे श्रेणी, तेहिं महँ बहुतै छेनी।
सब से भारी रोगा, बदलत पैंट ये शोगा॥
तेहि ते डरपत जीवा, शरण तुम्हारे पीवा।
जेहि बिधि संतत थीरा, सो उपाय कहु धीरा॥
प्रभु लायक सामर्था, तेहि ते बिनवत अर्था।
चहिये पग आधारा, रहूँ सदा निर्धारा॥

दो०—जीवन गति सब जानहू, काह कहौं बहु देव!
मनोवेग वश जान मोहिं, दृढ़ अवलम्बन देव॥

गुरु-वाक्य

दो०—ऐसे जन की बिनय सुनि, जग से लखि उपराम।
बोले गुरु करुणानिधि, हरण मोह मद काम॥

सुनहु शिष्य भव भोग अचाही। मनोगती वश जिव थिर नाहीं॥
मनगति से जो तू उपरामा। हो बड़भागी सुमति जो जामा॥
ठग की ठगी जानि नहिं मोहा। करहु परीक्षा मनगति जोहा॥

जे मद मस्त गाफिली करहीं । करि कुसंग ते काहे न गिरहीं ?
करत रहत मन केर परीक्षा । ते कबहुँ नहिं बहत मनीक्षा ॥
जीवन्मुक्ति सु है रजधानी । मन झंझट गत शांति कि खानी ॥

दो०—सुदृढ़ किला गुरु बोध ही, सत साधन गुण सैन्य ।
सजग सुचित पारख नृपति, निर्भय राज्य अदैन्य ॥
माया कृत गुण दोष जो, काम क्रोध लोभादि ।
करि न सकत परवेश तहँ, काल जाल सब बादि ॥
सो कदापि भव मग विषे, पतित होत हैं नाहिं ।
जेहि अवलम्बन साधु गुरु, प्रिय पारख अति जाहि ॥
क्षमा गहन गो मन दमन, सरल शुद्ध व्यवहार ।
धीर अडिग गुरुसाधु गुण, तारण तरण उदार ॥
ईश ब्रह्म देवादि बहु, यदपि इष्ट बद बेद ।
सो तथापि सब संत से, ज्ञान होत भ्रम छेद ॥
सो संतन की शरण विधि, पूर्व कहे समझाय ।
अपर सुनहु परसंग सब, यक चित ध्यान लगाय ॥
एक अंग से बिजय नहिं, मनोराज्य दल भूरि ।
तैसेहि सब गहि अंग निज, तब पावै पद पूरि ॥
जेहि बिधि रक्षा तब सही, सो उपाय यहि तात ।
पीड़ित रुज संयम दवा, गहि के मन रुज जात ॥

सो०—गृहि विरक्त दुइ जान, देहाश्रय के ठाम हैं ।
स्वार्थ रूप गृह मान, परमारथ हित दूसरो ॥

दो०—प्रथमैं जौनी भूमि में, तहइँ करै सुधार।
शक्ति बढ़त आगे बढ़ै, ज्यों शिशु पढ़त विचार॥
केहु आश्रम केहु घट महैं, केहू वर्ण हो तात!
धर्म नीति शुभ आचरण, बोध गहे कुशलात॥

छं०—प्रथमैं परीक्षा लेहु, जेहि भाँति बदलत येहु।
सम्बन्ध औ संस्कार, पुरुषार्थ के आधार॥
कुसंग सुसंगति योग, पल्टत समझ सब रोग।
तेहि माहिं बल संस्कार, लहत बुद्धि बिचार॥
बुद्धि के अनुसार, शुभ अशुभ गति धार।
नीचे गती जल जैस, भूल बश जिव तैस॥
ऊपर चढ़ाने हेतु, परिशर्म बहु बिधि लेतु।
कुछ सुकृत कुछ संग, पुरुषार्थ कुछ करि रंग॥
परमार्थ में जे लीन, चलते हते परवीन।
चलत मार्ग सु बिघ्न, बहु भाँति गति मति सिघ्न॥

दो०—आलस विषयासक्ति बश, मान काम औ लोभ।
गहि कुसंग नीचे गिरे, धीर बीर बिन क्षोभ॥
पुनः उलटि परमार्थ से, तजि संयम शुचि ऐन।
विशद भेषधरि करत अघ, निज कर फोड़ स्व नैन॥

छं०—विशेष कर जड़वाद गहि परमार्थ मग तजि देत है।
देह भोग में मानि सुख चातुर्यता तेहि हेत है॥
भिन्न करि देखै सुनै त्यागै गहै नहिं चेत है॥
हे शिष्य! तू जड़ भास भ्रम तजु करु परीक्षा चेत है॥

सो०—यथार्थ मार्ग से तात ! सब की रक्षा होत है ।
कछु उपाय सुनु भ्रात ! यथार्थ मार्ग परमार्थ हित ॥
छं०—चैतन्य[१] जड़ की भिन्नता का ज्ञान निशि दिन चाहिए ।
सम्बन्ध[२] औ आवागमन[३] दृढ़ कर्म फल पुनि लाहिए ॥
सुख भोग जग दुख[४] रूप लखि दृढ़ मुक्ति[५] शुधि बुधि लाइए ।
साधक व बाधक[६] दृढ़ परीक्षा अंग ये दृढ़ ध्याइए ॥

* भजन *

सो लखौ जिव आपनि शक्ति महान ॥ टेक ॥
मन बुधि प्राण विषय पद भासे, भासिक चेतन जान ।
स्वयं प्रकाश वाद सब जड़ तम, है अपरोक्ष सुथान ॥ १ ॥
गो मन प्राण यन्त्र नहिं तुझ में, तू ही धारत मान ।
ह्वै नित तृप्त भोग क्यों चाहै, देह संयोग भुलान ॥ २ ॥
ज्यों जड़ सृष्टि परमाणु सहित सब, तौ बहु शक्ति दिखान ।
बीज बृक्ष बहु उभय अकर्षण, ठहरत शक्ति निदान ॥ ३ ॥
पंच स्वाद जड़ स्वादी चेतन, दुइ कर मेल मिलान ।
उभय ग्रन्थि निज भूल भर्म से, दृढ़ मानव के तान ॥ ४ ॥

टि० १—चैतन्य और जड़ के गुण धर्म सहित भिन्नता का निश्चय । २—उभय सम्बन्ध का यथार्थ बोध । ३—पुनर्जन्म कर्म फल का दृढ़ निश्चय । ४—समग्र विषय सुख दुःख रूप हैं, इसकी दृढ़ परीक्षा । ५—वासना त्याग से स्वरूप बोध ठहराव सहित मोक्ष का यथार्थ निश्चय । ६—कल्याण व परमार्थ मार्ग में सहायक और तिसके बाधकों की यथार्थ परीक्षा । इतने अंगों के दृढ़ बोध निश्चय से परमार्थ अङ्ग चालू रहता है ।

भूल से ग्रन्थि ग्रन्थि से भूल हो , यह संयोग लखान ।
ज्यों करि मीन मृगा अलि तैसहिं , पकड़त विषय अजान ॥ ५ ॥
ज्यों मशीन में दै वल विद्युत , नर छुवतै चरखान ।
त्यों सूक्ष्म वल दै दै जीवन , नाद विन्द प्रगटान ॥ ६ ॥
सकल मनोमय तुहीं उजासत , विन निज ज्ञान दुखान ।
आपहिं आप पृथक कर सब से, तब तोहिं शांति ठिकान ॥ ७ ॥
सकल कल्पना परखि आपनो , गुरु पद प्रेम समान ।
अंतर बाह्य खैंच निज वृत्ती , थिर हो ह्वै दुख हान ॥ ८ ॥

❀ कबित्त ❀

इन्द्रिन को जीत कर स्वभावन को कस कर,
मनहूँ को बश कर ज्ञान खड्ग लीजिये ।
बार बार चेत कर भूत भविष्य त्याग कर,
बर्तमान घर कर राग द्वेष छीजिये ॥
अनुमान त्याग कर प्रत्यक्ष प्रमाण कर,
हठ पक्ष दूरि कर सत्य ज्ञान पीजिये ।
कुसंगत का त्याग कर शंका समाधान कर,
पारखी का सँग कर शांति प्रेम लीजिये ॥ १ ॥
सत्य ही को जानना सत्य ही को मानना,
सत्य ही बखानना सत्यबादी कहिये ।
जगत स्वतः सिद्ध कोई नाहीं करतार,
जड़ अरु चेतन अनादी कहा चहिये ॥

घट पट घर आदि तत्त्वन के कार्य जड़,
तिन्हों को प्रवाह रूप जाने हिये रहिये।
सुखाध्यास पंच विषय खानी बानी बन्धन है,
जीव तू परख कर निज पद लहिये ॥ २ ॥

❀ छन्द ❀

यहि विधि यथारथ ध्येय, सब प्रसंग गुनेय,
जस साधु गुरु सद्ग्रन्थ, कहत हैं सद्पंथ।
तस धारु यदि तैं चित्त, कसपाव नहिं पद मित्त!
पुनि एकरस थिति हेत, सादर रहस्य सुनेत ॥

छं०—कैवल्य या परमात्म या परधाम जिसको कहत जू।
आनन्द सुक्ख समूह घन जेहि पाय अविचल चहत जू ॥
अजपा समाधी नाम धुन सब का प्रयोजन याहि जू।
पूर्ण इच्छा हो निवृत्ती चहत सब जन ताहि जू ॥
यद्यपि क्षणिक इच्छा निवृत्ती अन्य वृत्ती ध्यान से।
देखा सुना भोगा किया स्थूल सूक्षम भान से ॥
पर सामने जो भासता सो खानि बानि नशान से।
निज रूप बाद जो भिन्न कुछ भी अंत में बिलगान से ॥

सो०—आपहि आप रहाय, सदा एक रस स्थिती।
जो कुछ मन में आय, परखि परखि डालै सकल ॥
यही करै अभ्यास, संयम नियम एकाग्र है।
वृत्ति निरोधै खास, परम प्रयोजन जानि के ॥

दो०-चित्त निरोधन के लिये, शास्त्रहु माहिं उपाय।
ध्यान धारणा यम नियम, आसन बिविधि लगाय ॥
सब को फल यहई अहै, सदगत बृत्ती होय।
सत्य ईश कोइ मानई, पारख से नहिं जोय ॥
तेहि ते घूमि के बृत्ति वहि, होत जगत मग लीन।
सो अनुमान परोक्ष तजि, लहि साधन अँग पीन ॥
सो साधन सब याहि हित, असद् बृत्ति जल जाय।
ता अधार गुरु संत हैं, बोध रहनि जो गाय ॥
गुरू ध्यान गुरु तप करे, गुरु पारख यत लीन।
गुरु रहस्य धारै सकल, असद् बृत्ति ह्वै क्षीन ॥
खानि बानि सुख भासकी, बृत्ति दग्धि अभ्यास।
सो अभ्यासन विधि सुनो, जेहि ते ग्रन्थि बिनाश ॥
निज स्वरूप निरधार, भूल बिवश मन धार में।
उलटै ताहि बिचार, शुद्ध अधारहिं लेय सब ॥
जो जो स्थिति अंग, टुटै न देवै धार तेहि।
रक्षक सबहिं प्रसंग, गहे बिविधि ज्यों अशन नित ॥

* स्थिति रक्षक अङ्ग *

सो०-क्षमा निराशा जान, और परीक्षा तीसरो।
तीनहिं अंग प्रधान, इनके साधक अंग सुनु ॥

क्षमा अङ्ग

समता सरल अमान, सहन अहिंसा ब्रत लहै।
सत्प्रिय बचन सुजान, क्षमा अंग शिशु मातु ज्यों ॥

* निराशा अंग *

शम दम विरति अकाम , उपरति तोष उपासना ।
तत्परता शुचि धाम , ये निराश के अंग भल ॥

* परीक्षा अंग *

श्रवण मनन निदिध्यास , पठन रु द्रष्टा स्थिती ।
सद विचार जिज्ञास , यक रस सजग सुध्यान लहि ॥
मुख्य सार कुछ अर्थ , सुनुहु यथा सुइ तंतु वत ।
निज कारज सामर्थ , साधि लेहु निज दाँव लखि ॥

* वैराग्य लक्षण *

सकल भोग दुख रूप , बिबश मोह जड़ नाश दुख ।
यह वैराग्य अनूप , काग बिष्ठ वत त्याग तेहि ॥

* विवेक लक्षण *

दृश्य सकल जड़ भास , ज्ञान रूप थिर नित्य मैं ।
पावै मुक्ति निवास , यह विवेक दृढ़ उर धरै ॥

* शम दम लक्षण *

मन रोकै शम सोय , सकल मानना त्याग करि ।
दम लक्षण यह होय , गो गह विषयन से नितै ॥

* उपराम लक्षण *

मुख्य मनोजहिं त्याग , अतिव ग्लानि विषयान में ।
लख विष वत भग भाग , उपरति सोई जानहू ॥
बुधि बल बीर्य हरन्त , चंचल करि चिंता भरे ।
मोहक दवहिं जरन्त , लाचारी भय आश दै ॥

मोहक संग्रह त्याग, प्रमदा दुखद विकार मय।
मैथुन अष्ट न लाग, सोइ उपराम बखानिये॥

❀ सहन लक्षण ❀

भूख प्यास बहु द्वन्द, सुख दुख मान अपमान जो।
सहन तितिक्ष सुछन्द, सहत डिगै नहिं थिर रहै॥

❀ श्रवण मनन लक्षण ❀

श्रवण हेतु श्रद्धेय, भक्ति सहित गुरु वाक्य सुनु।
मनन कहे बुध तेय, हंस स्वतः निज रूप सद॥

❀ निदिध्यासन लक्षण ❀

विषय भास अध्यास, प्राण देह मन बुद्धि चित।
कहत ताहि निदिध्यास, अष्ट याम वाहि रंग रहि॥

* जिज्ञासा लक्षण *

किमि नाशै भव जाल, देह सहित संसार दुख।
यहि जिज्ञासा हाल, गर्जी बनि हित काज रत॥

* तत्परता लक्षण *

पीनस लेत कहार, नट पन्थी शिशु ज्यों पढ़त।
सूरत घट पनिहार, प्रथमै सहि पुनि सहज होय॥
प्रथमै कछु कठिनत्व, सत्साधन करु हर्ष युत।
सहज सरल पुनि सत्व, लीन सदा अभ्यास शम॥

* ध्यानादि लक्षण *

मनहिं देखु या शोध, गुरु पद ध्यान कि पठन करु।
एक चित्त मन रोध, देर तलग नित नेम मुद॥

आसन वह ही ध्यान , संयम वहि नियमौ वही ।
मन मनसा विलगान , जेहि ते सजग हो देर तक ॥

❀ कवित्त ❀

जोई जोई फूरना उठत उर माहिं वेग,
ताहि देखि देखि कर तहाँ ही विठाइये ।
वासना प्रवाह वेग बहिये न ताहि माहिं,
पारख स्वरूप दृष्टि मन को मिटाइये ॥
यहि विधि करे जु अभ्यास नित नित पुष्ट,
मन अरु इन्द्रिन को जीति तव जाइये ।
औषध समान तौल तौल व्यवहार राखि,
वोधहूँ के पीछे करतव्य याहि चाइये ॥ १ ॥
सकल विक्षेपन को हेतु तू सवन्ध जान,
राग द्वेष कामना सम्वन्ध शीघ्र डार रे ।
स्वस्थ और समान चित्त करने के हेतु नित,
परम विरागी गुरु पद ध्यान सार रे ॥
नित्य नेम एक काहू आसन से वैठि दृढ़,
सकल विजाति वृत्ति दृश्य जानि टार रे ।
मृत्त संस्कार दग्ध बीज होय याहि विधि,
उलटि प्रवाह सुख आश भूल जार रे ॥२॥
आलस्य प्रमाद भूल विषय आसक्ति सव,
राग द्वेष कामना सम्वन्ध को पछार रे ॥
प्रति क्षण सुख वृत्ति ठौर में अभाव वृत्ति,
पुष्ट करि एक रस धारणा को धार रे ॥

अतिहि निवृत्ति सुख पुष्ट करु दिन दिन,
धीरज सजग बीर धारि के बिचार रे।
पूर्व वेग मूल जड़ सुख आश काटि काटि,
फिर नाहिं होवै इमि संसृत निवार रे ॥३॥

छं०—सहज वृत्ति निरोध हित गुरुदेव वच ऐसे कहे।
सुनि २ कथा अभिलाष बाढ़त परम पद सिद्धी लहे ॥
को अहै गुरुदेव सम कोउ ब्रह्म हरि हर हो चहे।
पारख बिना कल्याण नहिं पुनि धार संसृत में बहे ॥

सो०—सुनहु मित्र धरि ध्यान, आगे कथा प्रवाह जो।
मज्जत मनमल हान, लहै शुद्ध अविकार पद ॥
दास कहै कर जोरि, अहो धन्य तव दरश ते।
अमृत सजीवन बोरि, घालि दियो मम उर सजग ॥
और पुष्टि हित एव, कहहु बचन वत्सल परख।
नमो नमो तव भेव, सदा बसै हृदि धाम मम ॥
प्रारब्धिक आवर्ण, मन माया काया जिते।
सक न रोंकि आचर्ण, गहि संयम गुरुवर कह्यो ॥

॥ ज्ञान कवर्गादि ॥

कक्का काय बचन औ मन से, श्री गुरु को परणाम करूँ।
सर्व कामना त्याग जु करि के, श्री सद्गुरु को ध्यान धरूँ ॥ १ ॥
खख्खा खबरि नहीं निज तन की, कब हो जावे नाश सही।
खानि बानि की आशा तृष्णा, क्यों करता तू नाश नहीं ॥ २ ॥
गग्गा गर्व करे क्यों भाई, स्वप्न समान ये भोग सभी।
भोग प्राप्ति अनप्राप्ति से दुःख हो, चाह नाश हो सुक्ख तभी ॥ ३ ॥

घघ्घा घर औ वन के माहीं, जीव चैन किमि पावेगा।
घनी वासना पिण्ड अण्ड की, नाश न जब तक जावेगा॥ ४॥
ङङ्ङा ङिञ्च २ के रटने से, काम नहीं कुछ होवेगा।
सर्व वासना त्याग न जब तक, तब तक भास में रोवेगा॥ ५॥
चच्चा चस्का खानि वानि का, दिल से तू सब नाश करे।
हो जावे शाहन्शाह तबी, राग द्वेष दिल नाहिं धरे॥ ६॥
छछ्छा छः वस्तू अनादि जब, वेदान्ती जी मान रहे।
फिर अद्वैत ब्रह्म हों कैसे, द्वैत सदा जब सान रहे॥ ७॥
जज्जा जब तक जड़ चेतन का, बोध नहीं हो जाता है।
जन्म मरण त्रय ताप जाल में, जीव आश भरमाता है॥ ८॥
झझ्झा झंझट त्याग सबी, दिल से जल्दी मेरे भाई।
पंच बिषय औ पंच कोश जड़, द्रष्टा चेतन तू साईं॥ ९॥
ञञ्ञा ञ म ङ ण न नाम नाक से, बैयाकरण सो कहता है।
बिना रूप निज बोध के प्यारे, ये सब काम न आता है॥१०॥
टट्टा टाटी लगा ज्ञान का, जगत दृश्य सब दूर करो।
बिरति अखण्डित धारण कर के, शांति रूप सुख शयन करो॥११॥
ठट्ठा ठोस बस्तु दोई हैं, गुण औ धर्म लखाता है।
ठोस बिना गुण धर्म के प्यारे, ईश ब्रह्म भ्रम ताता है॥१२॥
डड्डा डर भय मान जगत का, माया में क्यों धँसता है।
डसती नारी बानी तुझको, भूपति ह्वै क्यों फँसता है॥१३॥
ढड्ढा ढाल बिराग को लेकर, काम क्रोध अरि नाशि करो।
ढर जावेंगे मान सबी जब, मन में खूब सुभक्ति धरो॥१४॥
णण्णा णाक्त आप तू पारख, काया कोट में रहता है।
णो गुलाम मन को तुम जीतो, तब निज पद में बसता है॥१५॥
तत्ता तीन अनादी बस्तू, सब में ब्यापक ईश कहै।
बिबिधि पंथ औ दुर्गुण को सब, ईश्वर क्यों नहिं नाश लहै॥१६॥
थथ्था थकित भये जब सब ने, तब तो जग को ब्रह्म कहा।
जगत भर्म तब कैसे प्यारे, द्रष्टा दृश्य अनादि रहा॥१७॥

दद्दा दया करी जब गुरु ने, पंच वस्तु बतलाया है।
चार तत्त्व अरु पंचम चेतन, द्रव्य अनादि लखाया है ॥१८॥
धध्धा धर्म गहो मानुष का, क्यों पशु वत में खोते हो।
अमित कष्ट सहने के लिये अब, पाप बीज क्यों बोते हो ॥१९॥
नन्ना नास्ति भास को कहिये, भासिक स्वतः रहाता है।
भास आश सब नाश करे तब, सब दुख द्वन्द नशाता है ॥२०॥
पप्पा पाँच द्रव्य से न्यारे, और वस्तु परतीत नहीं।
गुण शक्ती औ धर्म बिना कोइ, वस्तु जहाँ में ठीक नहीं ॥२१॥
फफ्फा फँस फँस क्यों मरते हो, दल दल भोग भयंकर है।
भोग कामना सर्व तजो यह, काम बड़ो हि दुखंकर है ॥२२॥
बब्बा बहुत प्रपंच न कीजे, क्षणिक सकल दुखदाई है।
बलि पशु घास माहिं ज्यों भूले, सोई शूल दरशाई है ॥२३॥
भभ्भा भरे गुमान में फूले, मन भर भोग न होवेगा।
आखिर तृष्णा रहती बाकी, अंत माहिं तू रोवेगा ॥२४॥
मम्मा माया महा कठिन है, औ दुष्पूर रहाती है।
मोह इसी का छोड़ै जोई, उससे तो दब जाती है ॥२५॥
यय्या याद करो अपरोक्ष रूप तू, पारख नित्य सु स्थिर है।
गो गोचर औ ध्यान जहाँ लगि, सो सब भास न स्थिर है ॥२६॥
ररा रमण करै जो जग में, तो भोग कामना सर्व तजै।
सो साधू कहिये जग माहीं, चेतन हंस सु सत्य भजै ॥२७॥
लल्ला लाज जगत की तजि के, खूब भक्ति बैराग करो।
लास फाँस में जनम न हारो, सद्ग्रन्थन को पाठ करो ॥२८॥
वव्वा वही शूर है जग में, जो कोई जड़ध्यास तजै।
सदा विवेक निरन्तर कर के, मान मोह मद नाहिं भजै ॥२९॥
शश्शा शांति धरो तू दिल में, सबी द्वेष छुटि जावेगा।
क्या करना है भाई हमको, जब शरीर नशि जावेगा ॥३०॥

षष्षा खरा कहो नहिं सब से, बड़ा वैर हो जावेगा।
समता से बर्तो दुनियाँ में, दुःख न कोई पावेगा ॥३१॥
सस्सा समर करो हे भाई, इन्द्रिय मन ये दुश्मन है।
सकल दुःख इससे होता जब, मुक्ती नशि जावे मन है ॥३२॥
हह्हा हाय हाय क्यों करते हो, ये हमार गुरु ज्ञान सुनो।
हकार मान सब तजि के प्यारे, सद्बचनों को खूब गुनो ॥३३॥
क्षक्षा क्षमा बड़ो औजार यही, तू शीघ्र धरो अब हे भाई।
मानापमान हो सो हो पर, पारख पद थिति नहिं जाई ॥३४॥
त्रत्रा तृषत न होओ प्यारे, तू खुद भूप निराला है।
ईश ब्रह्म नहिं तुझ पर प्यारे, कह गुरुदेव विशाला है ॥३५॥
ज्ञज्ञा ज्ञान होत ही सब दुख, शीघ्र नाश हो जावेगा।
प्रेम दास निज तृप्त सदा तू, गुरू कृपा उर आवेगा ॥३६॥

❀ ज्ञान कबर्गादि समाप्त ❀

❀ अष्ट बशिता और निवारण यत्न-छन्द ❀

सब जीवन के भय की बशिता, नित भार परीश्रम की बशिता।
पुनि देह में रोगन की बशिता, पुरुषारथ में विघनौं बशिता ॥
पुनि भूल से गो मन की बशिता, जड़ तत्त्व क्रिया बिच की बशिता।
नित गाँसति प्रारब्धि की बशिता, जहँ आठहुँ याम रहै बशिता ॥
दो०—दुख सुख हानि रु लाभ पुनि, चिंता शोक रु मोह।
आठो बशिता चव तरफ, कहँ स्थिति जग खोह ॥
सो०—स्वबश स्वरूप स्वतंत्र, पर भूले से बशि परयो।
नरतन में करु यंत्र, पैरि पार सरि हो यथा ॥
दो०—अपर अंग जे मोक्ष के, तिनके हैं यह नाम।
सुनि गुनि ताको धारिये, बसो मोक्ष के धाम ॥

दृष्टि परीक्षा चाहिये, अरु कुसंग को त्याग ।
सुख बिषयन में दुक्ख गुनि, बीर सुसंगहि पाग ॥

प्रथमें नियम तुम्हैं जो गाऊँ । सो कुसंग का त्याग बताऊँ ॥
सो कुसंग कहिये हे ताता । माया भ्रम बहु जाल फँसाता ॥
जो अघ कर्मन में जिव घेरे । भूलि न संग ताहि के हेरे ॥
हिंसक क्रूर मन्द अविचारी । भर्मिक के संगति दुख भारी ॥
कुकृत कुलक्षण कुयश कुभावै । कुमति कुगति दुख धार डुबावै ॥
भूलि कुसंग न कीजै भाई । भलो चहै जो कोय सदाई ॥

दो०—शोक मोह अनुमान भ्रम, मिथ्या भाव कुसंग ।
ताको दलि शुचि भाव से, सब बिक्षेप हो भंग ॥

सो०—बचे रहो हे जीव, गुरुवा प्रमदा फंद ते ।
सतगुरु सत्य सुशीव, तेई दुक्ख छुड़ाइहैं ॥
दूसर नीयम साधु संग, जेहि ते भव दुख भंग ।
कछुक लक्षणा कहत तेहि, पावन परम प्रसंग ॥

❀ भजन ❀

सो ऐसे गुरु संत के सहज स्वभाव ॥ टेक ॥
पर उपकार बचन मन काया, जीव दया चित चाव ।
पर हित हेत देत निज लक्षहि, जिमि कपास को भाव ॥ १ ॥
कटु कुभाष सहि मन्दन केरो, सोचत हित तेहि काव ।
कुजन कुठार सुजन चन्दन सम, क्षमा सहित बर्ताव ॥ २ ॥
क्रोध कठोर लोभ मद माया, देत कुपन्थ न पाँव ।
बोध शोध अनुभव बुधि देवत, ज्ञान बिराग बढ़ाव ॥ ३ ॥

रहि सन्तुष्ट पुष्ट करि साधन , शुभ गुण पूरण लाव ।
प्रेम नेम समता के मूरति , खेवत भव से नाव ॥ ४ ॥

* भजन *

सो ऐसे प्रभु संत हैं सहज उदार ॥ टेक ॥
महा मोह तम हरण सूर्य सम , चन्द्र किरण बच सार ।
जग प्रपंच भव मोह सघन वन , पन्थ सरल शुभकार ॥ १ ॥
धीर वीर गम्भीर रात दिन , मनोवेग ललकार ।
मोह मनोज जीति अरि दल को , क्षण क्षण सजग सवार ॥ २ ॥
वैद्य भूप पन्थी परदेशी , गहे भाव सरकार ।
जो कोइ शरण गहै संतन की , शीघ्रहिं करत सुधार ॥ ३ ॥
जो हित करन चहौ निज भाई , तौ गुरु शरण अधार ।
मन बच काय करौ सत्संगति , प्रेम होहु भवपार ॥ ४ ॥

* कवित्त *

तन मन बच करि दूषत हैं काहू नाहिं,
कोमल विमल रुचि राग द्वेष त्यागे हैं ।
अहंवाद मोर तोर दुष्ट संग नाहीं करैं,
दुख सुख सम जानि जग सेति भागे हैं ॥
भय भ्रम दूरि करि पाप ताप नाश करि,
शीतल स्वच्छन्द निज पद अनुरागे हैं ।
उभय लोक आश तजि आपही में आप तृप्त,
ऐसे साधू पद माहीं प्रेम दिल पागे हैं ॥

अन अधिकार होय अधिकारी । अधिकारी को ज्ञान विचारी ॥

ज्ञान भक्ति तरु पोषण रक्षण । साधु संग ही जानु विचक्षण ॥
तीसर नियम परीक्षा दृष्टी । मैं हूँ कौन ? कौन है सृष्टी ॥
बन्धन कौन सु छूटूँ कैसे । सदा परीक्षा राखहु तैसे ॥
औगुण कौन ताहि किमि मारैं । शुभ गुण कित कौन विधि धारैं ॥
अल्प अहार अल्प व्यवहारा । औषध सम लहि काज सँभारा ॥
निशि दिन चिन्तन करै इकन्ता । मनो वृत्ति दलि लहि गुण सन्ता ॥
चौथा नियम कहूँ सो सुनिये । विषय सुखों में दुख को गुनिये ॥

❀ भजन ❀

दुख दुख दुख रूप भोगों को जान ।
पारख तु कर के तज दे मान ॥ टेक ॥
तृण सुख निज थिर विषय में, गिरि समान दुख मान ।
श्रम भय चिता ताप अति, तृष्णा परवश ठान ॥
सुख सब दुख हेतु कर ले पिछान ॥ १ ॥
जिव पतंग सुख अग्नि में, तपत सदा त्रय ताप ।
भूलि अचल निज रूप को, धावत मृगजल भाप ॥
करे सतसंग तो दीखे ठिकान ॥ २ ॥
पंच विषय के जाल में, प्रमदा को ललचाय ।
गुरु सन्मुख जावे नहीं, वंशी मत्स्य दुखाय ॥
मन वशि जीवन को सूझे न हान ॥ ३ ॥
बीछू गरल अग्नि अहि, देवै दुख इक बेर ।
भोगासक्त पुनि पुनि मरण, ताते ताहि निबेर ॥
गुरु पद को रात दिन धारै तु ध्यान ॥ ४ ॥

❀ भजन ❀

सकलौ दुनियाँ के भोगों में दुक्ख भरे।
चाहे मोक्ष तो शीघ्र तु त्यागन करे ॥ टेक ॥
पुरुष नारी नारि पुरुषो, श्वान शुनि सम मूत्र में।
करि प्रेम विष हित नाचते, तृष्णा वशी दुख कूप में ॥
याही विषयों के वशता दुख खानी गिरे ॥ १ ॥
पुत्र पुत्री देत दुक्ख यों, बिन मिले दुख एक है।
सगर्भ दुख अरु जन्म दुख, मरि जाय दुक्ख अनेक है ॥
तब भी मूढ़ प्राणी न तासे फिरे ॥ २ ॥
तजि नारि सुत धन को चहे, तेहि के सुखों में धूर है।
धन जोरि रक्षा करन खर्चे, नाश दुख को मूर है ॥
तिसकी तृष्णा में शांति न पल तू धरे ॥ ३ ॥
दामिनी घन रेल छाया, ओस मणि सम भोग है।
स्थिर नहीं तेहि मोह वश, लहता सदा दुख शोग है ॥
मृग तृष्णा से प्यास कभी न मरे ॥ ४ ॥
छोड़ दो सुखध्यास को, दुखध्यास दृढ़ हिय धारि के।
शम आदि सेना लेय करि, अरि मारि दो ललकारि के ॥
ऐसी भाँति से प्रेम तव दुक्ख टरे ॥ ५ ॥

पंचम नियम वीरता कहिये। सब भय त्यागि अभय पद लहिये ॥
जैसे वीर शस्त्र कूँ बाँधे। धरि धीरज रण माहिं सु काँधे ॥
तैसे गुरुहिं आठ औजारा। ताको धारि करै भ्रम क्षारा ॥
दया क्षमा सत धीर विचारा। बिरति बिवेक भक्ति आधारा ॥

याको धारि लड़ो सह चिंता । तब होवै माया भ्रम अंता ॥
बुधि विवेक बल धर्म विचारा । बर्तहु यथा योग्य टकसारा ॥
सुख दुख हानि लाभ मन घेरा । तजि इमि गहै सदा पद हेरा ॥

दो०—देह पात पर्यंत तक, गहे पूर्व सब अंग ।
सदा एक रस थिति लहै, सहजै अभय अभंग ॥
जौ लौं देह निरोग है, जरा रोग नहिं मृत्त ।
तौ लौं कर कल्याण निज, प्राण अन्त क्या मित्त !

छं०—गुरु संत बिन परमार्थ रक्षावलि भला को कहि सकै ।
सच्चे सहायक हे महात्मन् ! तव महात्म न हो सकै ॥
हंसा रहनि सह हृद बसौ यह दास उऋण न हो सकै ।
ऐसी दया संतत रहे जो भूलि तव पद ना सकै ॥

दो०—महिमा अमित अगाध, बुद्धि ओछ नहिं कहि सकै ।
करहु कृपा गुरु साध. जौ लौं तनु सम्बन्ध है ॥

* कवित्त *

देह की विशेषता न देह तो उपाधि मूल,
नारी सुत धन धाम नश्वर जु देखिये ।
बल बुधि राज काज अनुकूल साज सब,
सोऊ सब शोक मोह छिन्न भिन्न पेखिये ॥
ईश ब्रह्म प्रकृति रु माया की विशेषता न,
सकल जगत बीज भव भय शेखिये ।
पारख स्वरूप नित गुरू की विशेषता है,
जाहि पाय सर्व बंध कटत विशेखिये ॥

दो०—योग्य साज तब ही सुफल, जब गुरु परख मिलाय।
न तौ वादि सब साज है, घन ह्वै ह्वै उड़ि जाय॥
सो०—सर्व स्थिती अङ्ग, गहब यतन करि गुरु दया।
जेहि ते नित्य अभंग, राजूँ जीवन्मुक्ति में॥
छं०—मन शत्रु से ठगाया, सब भाँति से तपाया।
जिज्ञासु एक आया, करि प्रश्न तोष पाया॥

* प्रार्थना *

कछु ऐसा ज्ञान दृढ़ा दीजै, गुरुदेव दया की दृष्टी से।
संसृत चक्र मिटा दीजै, गुरुदेव कृपा की दृष्टी से॥टेक॥
मन धारा में मैं बहता हूँ, असमंजस सब की सहता हूँ।
ऐंचा खैंच मिटा दीजै, गुरुदेव दया की दृष्टी से॥ १॥
ज्ञान कथन तो करता हूँ, पर भोग चाह में जरता हूँ।
कछु साधन पक्ष दृढ़ा दीजै, गुरुदेव दया की दृष्टी से॥ २॥
सब उल्टे काम हमारे हैं, पर चाहत भक्ति तुम्हारे हैं।
निज मनसा रंग चढ़ा दीजै, गुवदेव दया की दृष्टी से॥ ३॥
विनय आप से करता हूँ, पद पंकज में शिर धरता हूँ।
नित नव प्रेम बढ़ा दीजै, गुरुदेव दया की दृष्टी से॥ ४॥

* गुरुदेव वचन *

सो०—जेहि विधि तव हित होय, और सकल जन हों अभय।
कहँ प्रगट शुभ सोय, नीयम नव कल्याण के॥

नेपाल—तारेश्वर—हिमगिरि पर कुछ काल विराजते हुये सद्गुरु विशाल देव—एकान्त शांत अतःकरण द्वारा—अखिल

जन कल्याण हेतु, नवधा-मंत्र (विचार) रूप आदेश दे रहे हैं उस आप सब मनन करें; आचरण में लाते हुये-स्वरूप में समान चित्त से शांत रहने का अभ्यास बना कर-जीवन कृतार्थ करें।

दो०-महात्मा विशाल देव कृत, हितकारी उपदेश।
ग्रहण करत सतमग चलत, हिय हारत नहिं लेश ॥ १ ॥
संत सुबुध सम्मत चरित, नित नव नीयम पाल।
दिन दिन साहस मुदित मन, रमन बोध तत्काल ॥ २ ॥

❀ अथ-कल्याण करने के मुख्य नियम ❀

❀ सर्व हितैषी नव नियम ❀

❀ चौपाई ❀

मन सोहरौना नहीं बनावै। सहन शील बनि आपु रहावै ॥
मन संकल्प करै नहिं पूरा। जानि के बन्ध तजै सोइ शूरा ॥
वस्तुन प्राप्ति माहिं तजि संचय। खाश अवश्यक राखि असंचय ॥
नहिं समाज को पीड़ा देवै। बनै तहाँ तक हित ही सेवै ॥
त्यागि जगत को घूमि न देखै। मानुष जन्म सुफल करि लेखै ॥
बनि प्रतिकूल न गुरु के रहिये। पालन राय सदा दिल चहिये ॥
जो कुछ आपन मानि जहाँ लो। सो सब इष्ट काहि दिल गुन लो ॥
गुरु उपकार मानि दिल धरई। गुरु की निन्दा कबहुँ न करई ॥
धर्ममई अन्तस यहि भाँती। मारग बिघ्न न ताहि भेंटाती ॥
सावधान हो इष्ट सदाही। अपने काम में पूर रहाही ॥

सो०–स्ववश शक्ति अपनै बनै, प्राप्ति साज मग केर।
सिद्ध होय कल्याण पद, करि परिश्रम न देर॥
[इति नवधा नियम पूर्ण]

❀ चौपाई ❀

सुनि अधिकारी वचन नवीने। पाय अधार सुखी जल मीने॥
धन्य धन्य महिमा गुरु तेरो। बिन तुम्हरे नहि जाय अँधेरो॥
तुम न कहत कस होत निवेरा। तुम्हरो वचन भयो मोहि बेरा॥
तुम समान गुरु संत पियारे। रहनी रहत सहज भव पारे॥
सो सब भक्ति करत गुरु तेरो। जग आसक्ति हनत नहिं देरो॥
माँगत भक्ति चरण रज सेवा। आन उपाय सहज नहिं देवा॥
ह्वै निर्माण सकल बुध यहि ते। जीवन भर चाहत प्रभु प्रिय ते॥
दो०–तव उपकार अनन्त शुभ, ध्यान धरत नशि जाल।
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रिय, वर्तमान प्रभु पाल॥
सो०–जेहि वश सकल दुखेव, मन सम्भव बश चक्र सें।
तेहि को जेहि विधि देव, सो सब यतन दिखाय प्रभु॥
बिजय रूप गुरुदेव, कह्यो बिजय को हाल सब।
सादर बिजय सुधेव, गहै तो क्यों नहि बिजय लहि॥
मानस युद्ध बिचार, गुप्त कोप ज्यों काढ़ि बल।
दुख दारिद्र संघार, होय स्वबल दलि शत्रु मन॥
अस कहि साधन पंथ, लग्यो चलन हर्षाय जन।
मनन करहिं सदग्रन्थ, ते भाजन हैं मोक्ष के॥
सोई सदा रणधीर, बिजई यशी पराक्रमी।
सुखाध्यास दलि धीर, गाय अर्थ जे शोधिहैं॥

* शिष्य प्रश्न *

दो०—अशरण शरण सु हित करन, जान्यों सब अब भेद।
जीवन्मुक्ति रहस्य सब, पाय विगत मन खेद॥
इक संशय मोहिं और है, सो कृपया कहि देव।
मुक्त होय जिव रहत कहँ, यह नहिं जानूँ भेव॥

* गुरु उत्तर *

दो०—देत लक्ष अंगुलिन से, गिरि गृह संज्ञा दूरि।
बिन साधन निज बोध के, उठत जु संशय भूरि॥
सो संशय के दमन हित, प्रथमैं रहनि सुधार।
साधन थिति के लहत ही, लखै स्वतः निर्धार॥

सो०—जल थल वायु जु गाँव, तो का मुक्त को ठाँव नहिं।
सासुर सुख पुनि ठाँव, जाय होत अनुभव स्वतः॥
कहत कछुक समझाय, अनुभव गम्य बिवेक सो।
बिषम मती न लखाय, खीर अन्ध बगु की दशा॥

दो०—ज्ञान स्वरूपी आप है, ज्ञानहिं से लखु तात!
सत्यज्ञान के होत ही, उल्चब निशि छुटि जात॥

छं०—इक गाँव में अंधेर उल्चत, अबुध सब ही शाम से।
छूँछ बेंडी हिलाय निशि भरि, भोर हो यह काम से॥
इस भाँति से बीते बहुत दिन, संत इक तहँ आ गये।
उल्चब अंधेर परखाय करि, छुड़वाय सत्य दृढ़ा गये॥
योग जप तप ईश आदी, अंधेर उल्चब छूटि गौ।
नारि सुत धन आदि सबहीं, कर्म बंधन टूटि गौ॥

संचित अगामी बीज मुनि, सद्ज्ञान अग्नी सो छये।
प्रारब्धि को अब भोग केवल, मुक्ति पद पर सो ठये॥

दो०—कटा वृक्ष जिमि पूर्व वल, हरा भरा दिखलाय।
तैसे संत सु कर्म मुनि, पूर्व भोग दर्शाय॥
प्रारब्धिक जब भोग इति, तब जिव स्वतः रहाय।
जीव गुणी गुण परख इक, निराधार रहि जाय॥
भर्मिक जोलहा एक ज्यों, बैठि कब्र के सायँ।
आप अछत कहै मैं नहीं, अहौं तो कौने ठायँ॥
देखन चाहैं जीव को, तैसे मति के छीन।
आप आप नहिं दृश्य हो, औरहुँ गोचर हीन॥
तो देखिये केहि भाँति से, देखिये सो जड़ होय।
चेतन अपनो आप खुद, जानि स्वतः थिर लोय॥
वस्तु देश वस्तुहि अहै, जड़ चेतन गुण सार।
निज निज गुण से सब भरे, द्रष्टा दृश्य विचार॥
शुन्य छोड़ि जड़ चारि ज्यों, कारण कारज देखि।
मूल शक्ति से ठहर सब, अग्नि उष्ण से लेखि॥
तैसे चेतन भूल बश, भ्रमत रह्यो भवधार।
भूल मिटे पारख लहे, सो ठहर्यो निरधार॥
जो ज्ञाता है सर्व कर, सत्य स्वयं परकाश।
गो गोचर से भिन्न पद, स्वयं थीर बिन भास॥
स्वयं सिद्ध न्यायक सकल, अपनो तेज सम्हार।
इच्छा युत तू चल रहे, इच्छाजित थित सार॥

विधि हरि हर लोकादि घन, जगत ब्रह्म तजु शूल।
आप आप तू थिर रहे, पारख अभय अभूल॥

आवन जान नहीं अब ताको। शुद्ध स्वतः चेतन है वाको॥
साक्षी भास इन्द्रियों द्वारे। सुख दुख हानि लाभ सब प्यारे॥
सो सम्बन्ध से जब ह्वै पारा। गो मन तहँ सम्बन्ध न धारा॥
केहि साधन से साक्षी होवै। तेहि ते साक्षी भास न जोवै॥
रवि समीप निशि जाय न सकई। स्वयं प्रकाश सदा सो रहई॥
राग छोड़ि जिव मुक्त सदाई। स्वयं प्रकाश आप रहि जाई॥
जन्म मरण त्रय शूलहिं नाशा। शोक मोह तम पार उजासा॥

* कवित्त *

तत्त्वन के कार्य सो तो कारण अधार जान,
कारण जु चार सो अनादि क्रिया धार है।
तत्त्वन को द्रष्टा जिव कारण हूँ कार्य नायँ*,
अजर अमर चिद नित्य निरधार है॥

---

*टि०- साखी—

पाँच भूत से तीनि नहिं, चारि से होय न सात।
समझो यहि के भेद को, तबही ह्वै कुशलात॥ १॥
जल से पावक होय नहिं, अनल से होय न वारि।
जड़ सकार से शुन्य नहिं, कहूँ भूमिका टारि॥ २॥
नहीं भूम्मिका भेद से, पृथ्वी वायू होय।
कारण कारज में लखौ, सकल भरम को खोय॥ ३॥
इनके जड़ कारज लखौ, पंच विषय चत्र धर्म।
मेल परस्पर है तहाँ, शक्ति क्रिया जड़ मर्म॥ ४॥

बासना के बश्य जिव भ्रमत रहत नित,
बासना को दग्ध करि मुक्त निरधार है।
पूरब को भोग पुनि देह बन्ध छूट कर,
तब हो बिदेह मुक्ति रहे निरधार है॥

दो०—ऐसो पद जेहि भाँति से, प्राप्ति होय रे भाय।
उसी भाँति से ठानिये, निज कर्तव्य कहाय॥

* गुरु रहस्याष्टक छन्द *

प्राप्त भोग को त्याग कर अनप्राप्त की नहिं चाह हो।
तृण तुल्य भोगन त्यागि के नित तृप्त शाहन्शाह हो॥
शेष नहिं कछु कार्य तो भी सजगता से राह हो।
सब भाँति सब का अंत करि नैराश्य ही निरबाह हो॥१॥

निज परख पद के रक्षिवे में आप वर हुशियार हो।
भूप सम सदबोध धन रखि गुप्त मंत्र विचार हो॥
देत दान मुमुक्षु लखि निर्भीक दानि उदार हो।
लखि अनाथ मुमुक्षु जन करि देत भव से पार हो॥२॥

सब बंध हेतु कुसंग संग्रह दूर ही से त्याग हो।
शुभ वेश सह शुभ रहनि युत दुर्वृत्ति नहिं उर दाग हो॥

ज्ञान शून्य ये भूत सब, कारण कारज हेरि।
शक्ति मेल गुणधर्म तिन, क्रिया जड़हि तिन केरि॥५॥
ज्ञान स्वरूप द्रष्टा रहा, कारण कारज पार।
बिन जाने सो आपको, भटकि रहा भ्रमधार॥६॥
"गुरु बिशाल"

सत्संग औ सद्ग्रन्थ के सद्बोध में अनुराग हो।
जे भर्म शंका हैं जनों के ते शमन हित पाग हो ॥३॥
ब्रह्म ईश रु तत्त्ववाद जे भास लक्ष को टाल हो।
जड़ जीव दुइ संतत अनादी टेरते भव काल हो ॥
हैं विजाती मेल दोनों मानना छुटि जाल हो।
पावै परख सत्संग करि इमि टेरते सु विशाल हो ॥४॥
भोग के सुख चाह में नित दोष दरशन करत हो।
चाह श्रम तृष्णा दुखद परिणाम मरणज हरत हो ॥
सुख चाहना में दुख भरा वदजन तराय सो तरत हो।
पतितपावन दीनबन्धो आधि रुज नहिं वरत हो ॥५॥
कोश मद मैथुन तजे निर्मान अति निर्द्वन्द हो।
अहर्निशि परिग्रह त्याग कर पड़ते नहीं यम फन्द हो ॥
दुष्ट ममता से परे चिद ज्ञान के प्रभु कन्द हो।
वाम वंचक मंद जन से दूर लखि तेहिं छन्द हो ॥६॥
अनुभव जनित सद्ज्ञानसिन्धू पुष्ट मति गुण धाम हो।
उद्वेग देकर लेत नहिं ऐश्वर्य से निष्काम हो ॥
है वासना जग मूल तेहि को धूल कर निज ठाम हो।
त्रय लोक विजई हो गुरो! मन जीति भूप ललाम हो ॥७॥
उपमा रहित अपरोक्ष चिद् जड़ भास से प्रभु न्यार हो।
वपु मेल में महिमा अमित को कहि सकै टकसार हो ॥
ये प्रेम किंकर चरणरज तव नमन बारम्बार हो।
सब भाँति सत पद पुष्ट करि कर दीजिये दुख क्षार हो ॥८॥

* सवैया *

जो कोई पाठ करै यह अष्टक कष्ट सबै भव के नशि जावै।
होय रहस्य सदा तेहि पुष्टित राग को छोड़ि विराग बढ़ावै॥
होय निराश सु आश तजै सब पारख रूप स्वरूप रहावै।
श्री गुरुदेव कृपा फल से नित प्रेम जु अष्टक के गुण गावै॥

दो०—सत्य भरी संशय टरी, जरी हरी भव दुक्ख।
रहनि धरी कारज सरी, खरी कथा सुनि सुक्ख॥

छन्द—इस भाँति से स्तुति करी सब जन गये निज निज घरे।
आनन्द मन वर्षे सुमन करि धन्य ध्वनि भक्ती भरे॥
सत्यज्ञान को परकाश करि अब सद्गुरू भी चल दिये।
बहु जीव को कल्याण करि निज रूप नित वासा किये॥

दो०—सुने कथा निर्मल सकल, तीनों सुत कर जोरि।
धन्य पिता सद्बोध कहि, कथा अमृत रस बोरि॥
शोक मोह अज्ञान गौ, मिल्यो सत्य पथ सार।
अस कहि साधन में लग्यो, निज निज शक्ति विचार॥
सततनु तो वैराग्य पथ, रजतनु भक्ति विशेष।
तमतनु शुद्ध सुकर्म गहि, गुरु पद मग में पेश॥

छंद—गुरु कथा सुविचार कहि कुल मोह तृण से तोड़ि के।
लाग्यो करन शुचि साधना गुरु संग में चित जोड़ के॥
आसक्ति मन को जीति के ठहर्यो परख थिति शोधि के।
प्रारब्ध भोग विवेक युत करि भोग वृत्ति को रोधि के॥
निरधार देश स्वरूप निज तम लेश ना अविकार जू।

गो मन स्वभाव रु काल कर्म स्व पार पारख सार जू ॥
ज्ञान रूप अखण्ड अविचल शोक मोह से पार जू ।
पारख स्वरूप शिरोमणी सो पद लह्यो सुविचार जू ॥
दो०—मित्र सुनायों गुरु कथा, सादर मनन करेहु ।
जड़ ग्रन्थी को भेदि के, स्वयं सत्य पद लेहु ॥
छंद—सुनि सम्बादा, युत अहलादा, मित्र उभय कर जोरी ।
धन्य बिरागी, सहज अदागी, ठहरत बन्धन तोरी ॥
विविध सु युक्ती, देवत मुक्ती, भव के पार सुजाना ।
धनि उपकारी, मोह निवारी, कथा पुनीत बखाना ॥
मन रुज शोगा, संशय भोगा, जेहि हित व्याकुल जीवा ।
तेहि देह बहाई, स्वयं रहाई, जानि अमर पद लीवा ॥
भूल से रागी, बोध से त्यागी, सतत सुसंग समावै ।
शुधि बुधि यतना, गुरु पद रतना, अजरअमर रहि जावै ॥
सो०—प्रेमाश्रू से पूर्ण, कहे बचन अति दीन है ।
असम्भावना चूर्ण, सकल भयो आपहिं दया ॥

* बिनय *

सन्मित्र नमों सन्मित्र नमों । तुम दीनन के दुख दूर करे ॥टेक॥
गुरुदेव कथा कहि के मधुरी । सब संशय औ विपरीत हरी ॥
सत पन्थ अरूढ़ कियो हमको ॥१॥ सन्मित्र नमों०
हम सोवत गोवत भटकि रहे । हम अन्ध हो भूलमें फटकि रहे ॥
सब भास हमार छोड़ाय दियो ॥२॥ सन्मित्र नमों०
यह मोहक धार प्रवाह बड़ो । यह खानि व बानि कराल कड़ो ॥
सो तृण तूरि बहाय दियो ॥ ३ ॥ सन्मित्र नमों०

सब योग जपादिक यज्ञ किये । सब तीरथ धाम में घूमि लिये ॥
बिन पारख संसृत नाहि छुटै ॥ ४ ॥ सन्मित्र नमों०
निजरूप अखण्ड अनादि भलो । जेहि जानि सदा त्रयताप टलो ॥
तेहि स्थिति ठौर विधान किये ॥५॥ सन्मित्र नमों०
केहि भाँति करों अरजी प्रभु से । कुछ लायक नाहिं कहौं गुरु से ॥
गुरु सन्त समान हो प्राण प्रिया ॥६॥ सन्मित्र नमों०
नहिं भूलुँ कभी गुरुकी जु कथा । करुँ पान रु ध्यान रु मान तथा ॥
नित प्रीत मेरे हिरदय में बसो ॥७॥ सन्मित्र नमों०
सो०—बारहिं बार निहोरि, नहिं कछु बाकी अब रह्यो ।
लाग्यों अविचल ठौर, अस कहि गुरु मग लीन भौ ॥
छं०—विद्या अविद्या पक्ष तजि, जे ग्रन्थ नित यह गाइहैं ।
सुभग सरल सुमार्ग ते, गुरु की कृपा से पाइहैं ॥
जन्म जन्म के शत्रु मन दलि, परख निज पद ध्याइहैं ।
श्री पारखी गुरुदेव के पद, प्रेम नित लवलाइहैं ॥
दो०—श्री गुरुदेव विशाल की, कृपा भई बरजोर ।
ग्रन्थ पूर्ण सो पूर्ण भो, याद रहहु हृदि मोर ॥

* गजल *

श्री पारखी गुरुदेव जी मुझको सम्हारिये ।
इस दुर्गुणी को देखि के दृष्टी न टारिये ॥ टेक ॥
जो जो कहे हैं आप ने वो सत्य सत्य है ।
हितकर परम धरम से माननीय अत्य है ॥
पर मुझे मन के बिबश अतिशय निहारिये ॥१॥

आप की करुणा भरी अपार युक्ति है।
क्षणमात्र भी जिसको गहे निर्छल से मुक्ति है॥
मुझ पात्र ही में दोष है भरोस तारिये ॥२॥

सब अंग पूर्ण आप में सद्‌गुण के सिन्धु हो।
सब ही त्रुटी है दास में तुम दीनबन्धु हो॥
त्रुटियाँ निकाल दीजिये अर्जी ये धारिये ॥३॥
आप जानते भले हैं प्रेमदास का हृदय।
अब प्रेरणा वो कीजिये जो दास हो अभय॥
पारख प्रकाश एक रस साक्षी साँवरिये ॥४॥

दो०-सत्य ज्ञान प्रकाश को, सक्षम पूर्ण प्रकाश।
गुरुपद रज मैं बन्दहूँ, पूर्ण भयो अब आश॥
पाये ध्याये जाहि को, जाने धारे जाहि।
शेष नहीं करतव्य कछु, सोइ पद कथन शमाहि॥
थोड़े में यह बहुत है, अति समझन की बात।
जे निर्पक्षिक जियरा, पढ़ि पैहैं कुशलात॥
जो कुछ यामें भूल हो, सो क्षमिहैं बुधिवन्त।
कृपा दृष्टि समझाइहैं, मैं कर जोरि कहंत॥
बन्दौ पारखि कमल पद, जिन कृपया सुख पाय।
खानी बानी जाल सब, दो अध्यास मिटाय॥
जस विशाल भवसिन्धु भव, तस गुरु यान बिशाल।
जो बिशाल जन दीन अति, दीनहिं रक्ष बिशाल॥

❀ कवित्त ❀

पूरण भयो है ग्रंथ प्रगट सु सत पंथ,
जोई कछु भूल भई संत क्षमा करैंगे।
महंत साधु सज्जन बिबेकी जे बिरागवान,
सबै मोहिं दास जानि बिनय ध्यान करैंगे॥
बादहूँ विवाद तजि पक्षपात शठ हठ,
सत्य न्याय जानि के मुमुक्षु जन तरैंगे।
बीजक के अनुसार सद्गुरु कबीर मत,
प्रेम दास गाय ध्याय दुक्ख नाहीं परैंगे॥

❀ चोकड़ी-छन्द ❀

सब मिलि बोलो जय गुरुदेव। जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥
पूर्ण उदय अब ज्ञान प्रकाश। संत भक्त राजीव विकाश॥
तारन ज्योति भई अब लीन। संशय भ्रम तम हो गयो छीन॥
बाल वृद्ध नर नारी कोय। सब के हितकर बैन लखोय॥
संत पारखी को मत येह। गहिये याको सहित सनेह॥
सो अनुभव सत्संग से जान। करि बिचार सद लेवो मान॥
नित्य पढ़े औ नित्य विचार। पावे सार शब्द टकसार॥
पुनि पुनि पढ़े जो आद्योपांत। कबहुँ न ब्यापे तिसको भ्रांत॥
सब मिलि बोलो जय गुरुदेव। जय गुरुदेव जय गुरुदेव॥
कबीर पूरण काशी लाल। रघुबर श्री गुरुदेव बिशाल॥
और जे संत हुए हैं होय। सब को बन्दौं जोरि कर दोय॥
संत गुरू सब दीन दयाल। प्रेम दास को कियो निहाल॥

—आरती—

गुरु आरती हो आप की, आरत हरन हरन ।
हम आर्त जीव आप के, आये शरन शरन ॥टेक॥
हम इन्द्रियों के वश में हो, विपरीति ही करैं ।
पाँचो विषय विजाति में, सुख मानि के जरैं ॥
विपरीति भूल नाशिये, आरत हरन हरन ॥ १ ॥
भूलन की गली हैं अमित, धारा भि जोर है ।
अब आप ही बचाइये, आश्रय न और है ॥
बहते को खैंच लीजिये, आरत हरन हरन ॥ २ ॥
सुख मान की तरह गुरुजी, आप प्रिय लगैं ।
तब हीं सबी बन्धन कटैं, सौभाग्य मम जगैं ॥
निजपद को प्रेम दीजिये, आरत हरन हरन ॥ ३ ॥
पारख प्रकाश एक रस, अविकार नित रहैं ।
साधन सुसंग प्रेम नेम, ये दया चहैं ॥
नमों नमों हे सदगुरु, आरत हरन हरन ॥ ४ ॥

दो०—स्थिति स्थित रूप गुरू, स्थिति भेद जो दीन्ह ।
स्थित परख में स्थिती, श्रोता वक्ता लीन्ह ॥

इति सत्य ज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड का सप्तम प्रकाश रत्नावली-जीवन्मुक्ति स्थिति, नव नियम विदेह मोक्ष निरूपण समाप्त

सद्गुरवे नमः

❀ बसन्त पत्रिका प्रारम्भ ❀

(चौकड़ी)

जस टकसार शुचि देत रैन, जस साधु गुरू के विमल बैन।
तस जीव जो मम करु विचार, सब जाय नशि संसृत विकार॥

छं०-परिवा कुसंगति त्याग बहुविधि, प्रथम साधू संग कर।
जो वाक्य हित के गुरु कहे, तेश्रवण मननाध्यास धर॥१॥
दुइज द्वैत विवेक लहि, चैतन्य जड़ निरुवारिये।
विवेक साधन पुष्ट करि, आसक्ति भव भ्रम टारिये॥२॥
तृतीया विवेक विराग भक्ती, को कभी नहिं छोड़िये।
धैर्य ध्येय सुधारणा में, चित्त को नित जोड़िये॥३॥
है चतुर्थी चार बातों, को सदा गहते चलो।
सन्तोष औ सत्संग सम, सुविचार को लहते चलो॥४॥
है पंचमी पाँचो विषय को, जानि विष छोड़ा करें।
पंच इन्द्रिय अश्व को, साधन सुपथ जोड़ा करे॥५॥
है छठी छ शास्त्र में जो, वाद बहु विधि से किये।
तज दृश्य भास विवाद झूंठा, आपको नहिं सानिये॥६॥
है सप्तमी सातों विकार जो, आश तृष्णा भोग से।
काम क्रोध रु लोभ मद वचु, स्वार्थ भ्रम संयोग से॥७॥
अष्टमी आठों जु मैथुन, में नहीं अनुरागिये।
कर्म मन बहु यत्न करि, प्रमदा विषय को त्यागिये॥८॥

नौमी नहाने के लिये, वैराग्यवान सुतीर्थ जू।
भ्रमि २ मरे क्यों अन्य ठाँ, सद्बोध बिन सब व्यर्थ जू ॥९॥
दशमी दशा को शुद्ध कर, न तु दुर्दशा मन होयगा।
छ चार नाम रु रूप तज, तब शान्त द्रष्टा होयगा ॥१०
एकादशी दश गो मना, तेहि भोग सुख नहिं लेहु रे।
शम दम विराग सु पूर्णता से, हंस वत निज गेहु रे ॥११
द्वादशी द्वादश जु हंसा, की रहनि सत्यादि से।
दृढ़ यत्न करि सब लाव गुण, छुटि जाय जन मरणादि से ॥१२
त्रयोदशी तेरह जु माया, जाल को जब पेखिये।
कोश१ वस्था२ वपु३ विलग, कर के अमर निज लेखिये ॥१३
है चतुर्दश जे भुवन कहुँ, शान्ति पावोगे नहीं।
जब तक कि द्रष्टा रूप तू, थिर होय जावोगे नहीं ॥१४
लहु पंचदश यह पूर्णिमा, गुरु परख पारख रूप जू।
साधु रहनी को गहे फिर, क्यों परे भवकूप जू ॥१५
होली जला त्रय पंच की, शुचि सन्त बृन्द बसन्त में।
गुरु कबीर कृपायतन से, नाश ताप अनन्त में ॥१६
संत बसंत समाज सुहावन। ग्रीष्म मोह त्रय ताप जुड़ावन ॥
प्रेम नेम तेहि पद गहु शरणा। गाय ध्याय भव दुख को हरणा ॥

टि० १—अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-ज्ञानमय-विज्ञानमय ये पंचकोष २—जाग्रत-स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था। ३—स्थूल-सूक्ष्म-कारण-महाकारण-कैवल्य ये पंच देह।

❋ बसंत पत्रिका समाप्त ❋

* सद्गुरुवे नमः *

सद्ग्रन्थ—नव नियम

स्थिति साधन संपन्न महात्मा

गुरुवर श्री विशाल देव

द्वारा विरचित ।

समय समय बहु व्यंजन माता ।
शिशु पुष्टत त्यों गुरु जन दाता ॥

टीकाकार—

प्रेमदास ।

सद्गुरवे नमः

अर्पण-छन्द

सन्त गुरु स्नेह महिमा जानहीं जिज्ञासु सब ।
निजमनकलुषछलबलबिगतसादरसुमगबिचथीरतब॥
नहिं राग द्वेष न मान मद नहिं हर्ष शोक सतावहीं ।
आदर्श सेवक भाव रखि गुरु गुण सदा शुभ गावहीं॥
जेहि धीर वीर कबीर के सत्संग रंग प्रभाव से ।
प्रेमि जन सब मुक्त बिचरत एक रस हित चाव से ॥
तिनको महा महिमा कहौं रबि दीप कथनी मम तथा ।
हे हंस देव विराजहू मेरे हृदय मन्दिर यथा ॥
ब्योहार सबही शुभ उचित मम बोल चाल सुधारिये ।
परमार्थ स्वारथ शुद्धि सब, सब कहँ सुखद निरुवारिये॥
निजपरसमाजसु लखिदशाअवसर सुदृष्टि सम्हारिये ।
कीरति ललित तव शुभ चरित गुरुवर नमो निर्धारिये॥

दोहा

पत्र पुष्प सन्मुख धरौं, पूजौं प्रभु पद माथ ।
अबल बाल लखि सबल करु, निज पद होउँ सनाथ॥१

* निवेदन-वार्तिक *

परम वैराग्यवान, एकान्त शान्त जीवन व्यतीत करते हुये सहज भाव से जन हिताय, जो आप सद्‌गुरु श्रीविशाल देव द्वारा वचनामृत की वर्षा हुई है, उसमें से यह नव नियम अर्थ भाव सहित प्रकाशित किया जारहा है। निश्चय है इसे प्रेम पूर्वक मनन करने वाले को अपने जीवन पथ में एक अद्भुद शक्ति मिलेगी जिस शक्ति के नव स्फूर्ति से स्वयं अपनी त्रुटियों को निकाल फेकेंगे और वे ही समाज के लिये एक आदर्श व्यक्ति बनेंगे, स्वयं तो वे अपना कल्याण करेंगे ही। इसमें संदेह ही क्या ? अर्थ करने में छोटे छोटे दृष्टान्तों सहित लक्ष्य को सरलता से हृदय में बैठाने का प्रयत्न किया गया है। बिना नियम के क्या कुछ सिद्ध हो सकता है ? दूसरे लोग क्या करते कहते हैं, इस दुनियाँ दारी मोर तोर प्रपंच से चित्त हटाय इन

नव नियम पर चलते ही चरित्र शुद्ध हो जायगा, जो आप का परम लक्ष्य है एक-एक बीजक और भवयान-शब्द इस लिये जोड़ दिये गये, कि वक्ता उसका स्वयं अर्थ संगत करके विस्तृत मनन करें, करावें। अन्य प्रमाण भी दिये गये हैं जिससे चित्त सर्व गुण ग्राही बनै। नित्य नित्य यह एक एक प्रसंग चिन्तन द्वारा हृदय प्रभावित हो रहे। या रुचि अनुसार एकान्त में बैठ अध्ययन शीलता से इसे चरितार्थ करें, जिससे मुक्त विषयक लक्ष्य पूर्ण हो जाय।

आप सब सज्जनों के लिये शुभ सन्देशक—प्रेमदास

कथा प्रसंग परिचय

(निर्माण अवसर)

दोहा

एक वार गिरि शृंगपर, तारेश्वर नेपाल ।
जाय रहे कुछ काल तहँ, श्रीगुरुदेव विशाल ॥१

अधिकारी–इष्ट देव सम्मत कथन

दोहा

श्रद्धा सुगति सुचाह लखि, कहि प्रबंध नवनेम ।
गुरुजन सम्मत संत प्रिय. जन हिताय-सब क्षेम ॥२

(प्रबंध महात्म्य)

दोहा

अति उदार वांणी विमल, सुकृत मूल सब धर्म ।
गृहि विरक्त नारी नरौ , ग्रहत लहत पद पर्म ॥३
विघ्न दहन कलि मल हरण, करण परख पद धाम ।
शोक विगत निर्भय रमण, श्रवणसफलशुभकाम॥४

(सत्य निर्णय की कथा श्रवण करने कराने पर विचार)

दोहा

बहुरि २ संकोच तजि, श्रवण अधिक रुचि देखि ।
सह सनेह जन मन मुदित, कहियत कथा विशेखि ॥५

(मङ्गल समय)

परम धरम सब समय शुभ, चित चाहत मन हर्ष ।
तब २ प्रिय संदेश कहि, सहज परम पद पर्श ॥६

मंगल समय सनेह बड़, बड़ भागी ह्वै जाय ।
पाय जनम फल प्रभु बचन, कहिय सुनिय हर्षाय ॥७

(अनधिकार चेष्टा परित्याग)

दोहा

अविनय अरुचि अभाव जहँ, तहँ न कहिय यहि नेम ।
का संदेश कहि फल लहै, जापर जाहि न प्रेम ॥८

(सादर इष्ट पूजा विधान)

दोहा

हित बानी सानी अमृत, आदि अंत सुनि प्रीति ।
पूजा बिधि गहि भक्तियुत, लहि प्रसाद शुभनीति ॥६

(समाज हित हेतु)

दोहा

प्रिय समाज हित हेतु यह, इष्ट देव अनुकूल ।
रीति प्रीति भल नीति गहि, मिटत त्रिबिधि भवशूल ॥१०

(स्वतः शांत तत्पर हेतु)

निजपद रुचि सब सुलभ, नाहित सकल अकाज ।
शांत मनन एकांत रहि, साहस सजग स्वराज ॥११

(नव नियम कथनानुसार धारणा में उत्साह)

याहि समय यहु साज सब, यह ई सब दिशि देखु ।
सबकुछकरिसबफललहै, लाभसमुझिगहिलेखु ॥१२

॥ पुनीत फल ॥

देह रचि फल दोय लखु, सत औ असत कि राह ।
सत्य स्वपद गहि कुशल सब, नाहितभ्रमतकुचाह ॥१३

प्रश्नोत्थान

नवधा नियमारम्भ में, प्रश्नोत्थान विधान ।
सादर गाइय शांत चित, जो भवयान प्रमान ॥१४

(प्रसंग परिचय कथन श्रवण आवश्यक)

दोहा

यहि प्रसंग परिचय पढ़े, ता चित मनन सुहर्ष ।
प्राणनाथ गुरुसाथलखि, कबहुँ न हिय त्रिच मर्ष ॥१५

(प्रश्नोत्थान) प्रश्न उठाना

शब्द

शरण आये तुम्हरी गुरु हमें पार लगावो ।
होवै कठिन टेक गुरु मारग, जस बन्धन मन भावो ॥टेक
जग से प्रेम हटाय गुरूजी, मेरा मेरे में लावो ।
उलटि आप में आप समावों, तव उपकार मनावों ॥१

निज को हारि गये हम सबमें,
होश न कबहूँ आवो।
सब दिन लाभ खोज में भरमें,
दुर्गति अमित कमावों ॥ २ ॥
स्व समाधि अविचल सुख तजिकैं,
जड़ में टक्कर खावों।
विषधर अहि बाँवी सुख खोजत,
कर में भुवंग डसावों ॥ ३ ॥
तुम्हरी कृपा जानि यह पाये,
जः कुछ मुख से गावों।
सब छिन भोगि दुखहिं दुख अब तक,
सुख की आश लगावों ॥ ४ ॥
नहिं कहुँ जानि मिल्यो यह धोखा,
जेहि में जन्म गवाँवों।
अब तौ आश तुह्मारी गुरुवर,
यहि से जान बचावो ॥ ५ ॥
भवयान

दोहा

निज कल्याण सुचाहना, तिन प्रति होय उदार।
कहन लगे नव नियम प्रभु, सद्ग्रन्थन मत सार ॥१

सद्गुरवे नमः

(कल्याण करने वालों के लिये मुख्य नव नियम)

— आरम्भः —

प्रथम - नियम

चौपाई

मन सोहरौना नहीं बनावै।
सहनशील बनि आप रहावै ॥१

टीका—

सोहरौना—कोमल स्पर्श, जैसे कोई बालक या पशु हस्त स्पर्श में सुख मानता। सत्मार्ग पर चलने ठहरने के लिये, मन को बड़ाई पाने स्वार्थ सुख लेने का आदती मत बनाइये, इन्हें भुलावा रूप परमार्थ से दूर करने वाले जानिये। सन्त गुरु सज्जन समाज मध्य दुख सुख मानापमान में फूलना पचकना छोड़ तहाँ शुभ साधन युक्त कष्ट सहिष्णु-बनके संत सत्संग सद्विचार में लगे पगे रहिये ॥१॥

पुष्टि-करण

एक थानेदार ने एक नाई से हाथ पाँव दबाने को कहा, नाई जान छुड़ाने के लक्ष्य से अनजान सरीखे थानेदार साहेब के पैर में बीच से अँगुली धँसा धँसा के सेवा करने लगा, थानेदार रुष्ट हो गये, वे दो सिपाहियों को लगवा के प्रथम तो १०-२० कोड़े जमवाये, तदन्तर रातभर खाट के पावा को उसी प्रकार दबवाया, जैसे कि अँगुली गड़ाया था, निदान उसकी सब अँगुलियाँ जख्मी होकर हथेली फूल गई । वह बहुत दुख उठाया, कितनी अच्छी बात होती कि वह प्रथम से ही प्रेम युक्त सेवा कर देता ।

सिद्धान्त यह है–सद्गुरू सन्त सज्जन सम्मत शिक्षा श्रवण कर, यह जीव निर्माण होकर सत्य स्वरूप बोध में शान्त होने का साधन नहीं करता । यही चाहता है कि, कोई मेरी बड़ाई करे, गोचर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थ उत्तम उत्तम सुख भोग का अधिकार कोई देवै, इस वासना के पुरौती रूपी

स्वार्थ कामना के कारण ही इसको अनन्त उपाधि सहनी पड़ती है। कितना उत्तम सौभाग्य उदय हो मन का प्यार दुलार करना छोड़ के अविनाशी रमैया राम स्वरूप बोध में शांत होने के उद्देश्य से शुभ गुणधारी निर्विकारी सज्जनों के समाज में रह के सहन शीलता का सेवन करता रहे।

अनुभव-युक्ति-प्रमाण कभी नहीं बतलाता कि आप असहन प्रकृति बना कर, अपने ही मन माना करके किसी प्रकार की उन्नति कर सकते हैं? आइये इस पर कुछ विवेक कीजिये, अखाड़ा में अपने वस्ताद के आगे न गिरे पड़े, उसका चार धक्का मुक्का न सहे तो कभी दंगली पहलवान नहीं हो सकता, ऐसे ही विद्या पढ़ने में शिक्षक की आधीनता स्वीकार न करे गृहि धर्म चलाने के लिये माँ बाप भाई वृद्ध गुणी जनों की सेवा सम्मति न स्वीकार करे, कल्याण करने के लिये सद्गुरु सन्त सज्जनों की सेवा आज्ञा पालन में सब से गुण लेने के लिये कष्ट न सहे, तो बताइये? सर्वत्र हार

मूढ़ता, कुशीलता अकल्याण रूप दुख द्वन्द की प्राप्ति होती ही रहेगी कि नहीं ? अवश्य उसके दुखों का थाह नहीं रहेगा। अतएव आप अच्छे भले संग में आइये सहन शील बन के कल्याण साधन पुष्ट कीजिये, सद्गुरु कबीर देव की बातों पर भी ध्यान दीजिये।

❀ रमैनी ❀

कबहुँ न भयउ संग औ साथा।
ऐसेहिं जन्म गमायउ आछा॥
बहुरि न पइ हौ ऐसो थाना।
साधु संगति तुम नहिं पहिचाना॥
अब तोर होइ नरक महँ वासा।
निशिदिन बसेउ लबार के पासा॥

❀ साखी ❀

जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेतवा हो तो चेत ले, नहि तो दिवस परतु है धार॥

अर्थ—ऐसे रतन समय में आपने क्या किया ! एक क्षण भी तो सत्पथ प्रदर्शक सन्त गुरु सुहृद

सज्जनों से परिचय नहीं प्राप्त किया, जब सत्संग के निकट ही नहीं गये तो सत्यज्ञान कहाँ से प्राप्त हो। हीरा जैसा स्वच्छ जीवन कौड़ी मोल व्यर्थ बेंच डाला गया। क्या फिर ऐसा शुभ साज समाज प्राप्त होगा। पारखी सन्तों के निकट जाकर आप अपने सत्य स्वरूप को पहिचाने ही नहीं। अब आप को पुनर्जन्म धारण करके नर्क रूपी देहों की बेगारी ढोनी पड़ेगी। रात दिन तो आप लम्पटों-झूठों अन्याइयों के घेर घार में पचते रहे। फिर कहाँ से सुधार की योग्यता प्राप्त हो ॥१॥

सद्गुरू कबीर देव प्रेमभरी बातों से खुले शब्दों द्वारा जगा रहे हैं, प्रिय बन्धुवो! इस प्रकार नर देह छोड़ कर सब बहुतेरे पुनर्जन्म धारण करके कष्ट उठा रहे हैं, आप जो नर देह में शेष हो समझना हो तो सत्सङ्ग में प्रेम करके सद्बुद्धि प्राप्त कर लीजिये, नहीं सद्बुद्धि प्राप्त करोगे तो दिन रूपी इस नर देह में धार-डाका लूट फूट बरजोरा हो ही रही है। उसी में आप भी लुट जावोगे!

प्रसंगानुसार-भवयान की शिक्षा भी आप सब मनन कीजिये। मात्र सन्तों के निकट जाय ज्ञान बढ़ाय शुभाचरण धारण करने में यह नर जीव-कायर हो रहा है, देखिये यह अपनी अपार भूल की परीक्षा भी नहीं करता, तो उसका त्याग कहाँ से हो अब इस जीव के भूल की परीक्षा करायी जा रही है-

'कष्ट अनन्त सहत नहिं विनशै,
कस न वीर वर हनि भ्रम इच्छा ॥
कहैं कबीर जो रण नहिं पछरै,
होय मोक्ष सोई जीति जगेच्छा ॥'

लक्ष्य–जब कामना इच्छा नहीं सताती तब आप सहज ही अनन्त शांत अनन्त आजाद स्ववश मुक्त सिन्धु है। जब कामना के वश हुये तो सारी शक्ति क्षीण हुई, जब भोग में प्रवृत हुये तो गुलामी पराधीनता रोग शोक के सिन्धु बन गये, अब भी जागो ! काम क्रोध तृष्णा वेग को रोक दो इसकी विस्तृत टीका भवयान या परस्पर सत्सङ्ग चर्चा से समझिये, शक्ति प्रदानार्थ

संक्षिप्त संकेत यह है कि आप स्वामी चेतन जीव होकर कभी विवेक किये हैं ! अपनी अखण्डता शुद्ध चेतनता को स्मर्ण कीजिये, प्रत्येक विषयों व्यवहारों को मानना संकल्प में बल देकर आप ही झूलते हो मन तरंगो आदतों व्यसनों के धारा में बहते हो, अनन्तो कष्ट सहते हुये फिर भी विनाश नहीं होते, ये सब आप अपने स्वरूप चेतन को भली प्रकार अध्ययन कर के देखिये जब कि अनंत कष्टों को सहते हुये आप किंचित खण्डन होकर नष्ट नहीं हुये, अमर ही रहे तो क्या आप में अपने ओर लौटने की शक्ति नहीं है अवश्य जब बाहर दौड़ने की शक्ति है तो अपने घर भी उसी पाँव से लौट आइये। देखिये आपके चेतन देश में किसी चीज की त्रुटि नहीं है, किन्तु आप सत्मार्ग के चलने में जो थोड़ी बहुत सहन गति है उसे क्यों नहीं सह लेते। जिससे नित्य नित्य की उपाधि शिर की बला टल जाय ! देखिये दो शब्दों पर और ध्यान दीजिये।

शब्द— अपनी अनन्त सहन शक्ति की स्मृति रखिये।

सत्पथ सहन रहित जिव होइगा ॥ टेक ॥

मात पिता भाई की सहतै,

बिना सहे नहिं बचिगा ॥ १ ॥

भगिनी भतीजे भावी से अरचन,

नारि विरह में बहिगा ॥ २ ॥

सुत बनिता के झगड़े छल बल,

विपति अनेकन दहिगा ॥ ३ ॥

सुख मानन्दी चाह असंख्यन,

राग द्वैष में धँसिगा ॥ ४ ॥

काम क्रोध में जलै हमेशा,

शत्रु मित्र में ढहिगा ॥ ५ ॥

लोभ मोह भ्रम जाल बिछा है,

औरहिं और को चहिगा ॥ ६ ॥

शब्द—गुरुमार्ग के तरफ पूर्व सहन गति उपयोग कीजिये।

राखौ मन गुरु का ज्ञान अधार ॥ टेक ॥

जगत अधार में बीति गये दिन,

लाभ के बदले निज को हार ॥ १ ॥

राग द्वेष तृष्णा धन पाये,
तेहि बिच बनि रहे मन के शिकार ॥२॥
आशा करत सुखहिं की निशदिन,
गाँसि मिलत तहँ दुखहिं अगार ॥३॥
दखल चहत हम सबके ऊपर,
भय पर बशिता तहाँ बेगार ॥४॥
सत्य मानि तन मन औ धन को,
अनित पना की बहते धार ॥५॥

वार्तिक लक्ष्य सार—नित्य सत्य शुद्ध चेतन की ओर आइये। जब कि यथार्थ विवेक प्रकाश द्वारा वस्तु स्थिति का ज्यों का त्यों बोध हो रहा है तब अखण्ड अनादि स्व स्थान को ही पकड़ना चाहिये स्व ज्ञाता वही अपना सदा तृप्त है निष्काम शांत सिन्धु है, भूल बस बाह्य प्राणी पदार्थों की ओर निज सुख को जो कल्पते आया है वही भूल ममता आसक्ति ध्वंस करने पर अखण्ड शान्ति मिलेगी।

* दोहा *

तूँ ही रीझत क्यों नहीं, कहा रिझावत और ।
तेरे ही चित शांत में, चिंता मणि सब ठौर ॥
काम क्रोध को वेग को, जो सहि सके सुभाय ।
सो योगी कतहूँ रहे, स्थिर सुख लपटाय ॥

(गीता)

साधन में सरलत्व–समदर्शन

* भजन *

निज स्वरूप को याद करै तो,
सहन शील बनि जायेगा ।
निश्चय लगन मगन हो मग में,
अविचल घर तू पायेगा ॥ टेक ॥
जब दुर्गुण सुख चाह लिये तूँ,
नितही बलि बलि बोझ लिये तूँ ।
तब सद्गुण में लाभ देखते,
क्यों नहिं काज बनायेगा ॥ १ ॥
अमित परीक्षा सजग सहनता,
निश्चय साहस परम अभयता ।

उक्ति युक्ति पुरुषार्थ प्रबलता,
सोचत ही बनि आयेगा ॥ २ ॥
मन के हित तूँ दौड़ लिया रे,
क्या न किया तूँ क्या न सहा रे।
अब तूँ द्रष्टा जीव के हेतू,
निजी शक्ति उल्टायेगा ॥ ३ ॥
अमर तृप्त अविचल तो तूँ ही,
कहाँ भटकता अहो बटोही।
आप में आप को पाकर अब तो,
सकलो भास बिलायेगा ॥ ४ ॥
निःसन्देह सोच तजि उठि के,
सन्त गुरु पद कमल में पड़ि के।
प्रेम नेम युत सेवा साधन,
नहिं दुख द्वन्द रहायेगा ॥ ५ ॥

सद्गुरु कबीर देव के मन्त्र को न भूलिये—साखी

वस्तू अन्ते खोजै अन्ते, क्यों कर आवै हाथ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखे साथ॥

'श्रीराम जी को वशिष्ठ जी ने मुख्य मुक्ति

के चार द्वारपालों को अनिवार्य रूप ग्रहण करने की आज्ञा दिये हैं।'

'संतोषः परमो लाभः सत्सगं परमं धनम्।
विचारः परमं ज्ञानं, शमश्च परमं सुखम्॥'

दोहा

'परम लाभ सन्तोष है, परमो धन सत्संग।
परमो ज्ञान विचार है, समता से दुख भंग॥'

(सत्पथ में सहनशील बनने के लिये उपयोगी साखियाँ)

साखी

दीन गरीबी बन्दगी, सब सो आदर भाव।
कहैं कबीर सोई बड़ा, जामें बड़ा स्वभाव॥
इक बानी सो दीनता, सब कुछ गुरु दरबार।
यही भेंट गुरुदेव की, सन्तन कियो विचार॥
दर्शन को तो साधु है, सुमिरन को गुरु नाम।
तरबे को आधीनता, डूबन को अभिमान॥
शील क्षमा जब उपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना शील पहुँचे नहीं, लाख कथे जो कोय॥
पढ़त गुनत रोगी भया, बढ़ा बहुत अभिमान।
भीतर ताप जु जगत का, घड़ी न पड़ती सान॥

निंदक से कुत्ता भला, हठ कर माड़ै रार ।
कुत्ते से क्रोधी बुरा, गुरू दिलावै गार ॥
कबीर निन्दक मरि गया, अब क्या कहिये जाय ।
ऐसा कोई न मिला, बीड़ा लेय उठाय ॥
दशों दिशा से क्रोध की, उठी अपरबल आग ।
शीतल संगत साधु की, तहाँ उबरिये भाग ॥
गालि अंगार क्रोध झल. निन्दा धूवाँ होय ।
इन तीनो को परिहरै, साधु कहावै सोय ॥

[कबीर अमृत वाणी]

द्वितीय-नियम

चौपाई

मन संकल्प करै नहिं पूरा ।
जानि के बंध तजै सोइ शूरा ॥२

टीका-मन में जो विषय सुख के असत संकल्प उठें-आकर्षण करें उन्हें पूर्ण मत कीजिये, क्योंकि-
'मन पूरा पूरा नहिं, जहँ तक करिये पूर ।
आखिर को रुकना दुखहिं, सब पुरुषारथ धूर ॥'

अनलाहुति के समान समस्त भोग वासनावों को पूर्ण करते करते ही तो अनादि से आज तक समस्त जन्म व्यतीत हो गये वासनायें कहाँ पूरी हुयीं, तन-मन तीन ताप प्रतन्त्र समस्त बन्धनों का मूल भूल कारिणी मन की वासनायें ही तो हैं ! ऐसा समझ बूझ के जो उनका त्याग करे, स्ववश रक्खे वही वीर धीर गम्भीर श्रेष्ठ नर रत्न है ।

पुष्टि करण

जीवों को सच्चे मार्ग पर खैंच के चलाने वाले सद्गुरु कबीर देव भी इसी सिद्धांत का बता रहे हैं, आप का निजी अनुभव और आपके सभी गुरुजन इसी संयम पथ को श्रेष्ठ संकेत दे रहे हैं । आप माने या न माने, हितपथ बताना सन्तों का सहज कर्तव्य है, प्रथम तो द्रष्टा चेतन को मन तन से पृथक नित्य समझिये जब कि द्रष्टा साक्षी ज्ञाता ध्याता प्रमाता आप स्वरूप से शुद्ध चैतन्य हैं तब कल्पित मनोमय का भास इन्द्रियोपाधि से खड़ा करके दृश्य भास अध्यास को बलवान बनाय

झूलावत आप क्यों झूल रहे हैं। इस झूलने झगड़ा झंझट से आपको सिवा दुख के सुख कहाँ मिलता है, अब विचारिये और मन से रचे समस्त असत संकल्पो को दूर करके अपने स्वतः प्रकाश घर में आइये।

साखी बीजक

मन स्वारथी आप रस, विषय लहर फहराय।
मन के चलाये तन चले, जाते सरबस जाय॥

टीका—मन की चाल विवेक रहित आप स्वारथी है, उसमें विषय सुख पाने की लहर पर लहर तरंगित होती ही रहती, झगडावत मन चलित होने से इन्द्रियाँ भी उधर घसीट जाती हैं। जिससे जीव की सदबुद्धि और शुद्ध धारणायें सभी संपत्ति नष्ट हो जाती है।

साखी

ई मन चञ्चल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार।
मन मन करते सुर नर मुनि जहड़े, मनके लक्ष दुवार॥
नैनन आगे मन बसे, पलक पलक करे दौर।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर॥

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत ।
कहहिं कबीर ते बाचिहैं, जाके हृदय विवेक ॥
बाजीगर का बाँदरा, ऐसा जीव मन के साथ ।
नाना नाँच नचाय के, ले राखे अपने हाथ ॥

टीका—ऐसे मन के हाथ बिकने से कितनी उपाधि मची है वह भी सुनिये ।

बीजक शब्द—२

सन्तो घर में झगरा भारी ॥
राति दिवस मिलि उठि उठि लागे, पाँच ढोटा एक नारी ॥१॥
न्यारो न्यारो भोजन चाहैं, पाँचो अधिक सवादी ।
कोइ काहु को हटा न मानैं, आपुहि आप मुरादी ॥२॥
दुर्मति केरि दोहागिनि मेटै, ढोटहिं चाप चपेरे ।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे ॥३॥

टीका—हे प्रेमी सन्तो ! इस शरीर रूपी घर में निरन्तर का द्वन्द-चल रहा है राति दिन स्वामी जीव के पीछे खाँव खाँव भूख भूख की चिल्ल पुकार आ रही है, पंच ज्ञानेन्द्री-रूपी द्वन्दी बालक और एक नारी रूपी बानी आसक्ती इनकी तृप्ति होती ही नहीं । ये पृथक-पृथक स्वाद लेने की याचना किया

ही करते आँख तो रूप देखने, जिह्वा तो स्वाद लेने, त्वचा तो कोमल स्पर्श करने, नासिका सुगंध लेने, कर्णेन्द्रिय सुरीले शब्द सुनने, के अत्यन्त स्वादी चाटी आदती व्यसनी हैं। और एक नारी वानी जड़ासक्ति तो जीव को नाकोदम किये ही है। ये सब इतने अंध आतुर हैं कि जीव के हानि लाभ का किंचित विचार नहीं करते या इनमें पड़कर जीव अपने हिताहित का विवेक खो बैठा है। ये तो कोई किसी की सुनते ही नहीं, अपने अपने स्वाद की पूर्ति चाहते हैं, जीव स्वाद देते देते अत्यन्त व्याकुल है, इस घर की दुर्गति, दुष्कामना, दुश्चरित्र, परख के मिटाइये इन बच्चों को ज्ञान बाण से मार कर शक्ति हत कीजिये। तभी हमारे प्यारे गुरुजन के मार्गावलम्बी हो सकोगे जब इस शरीर रूपी घर के झगड़े को शान्त करो।

[मन की अटपटी चाल का दर्शन]

कवित्त

काम जब जागे तब नेकु नाहीं माने शंक,
देखे सब जोई करि देखत न माधी है।

क्रोध जब जागे तब नेकु न सम्हारि सकै,
ऐसी विधि मूल की अविद्या निज साधी है ॥
लोभ जब जागे तब नृपति न क्यूँ ही होय,
सुन्दर कहत इन ऐसे ही में खाधी है ।
मोह मतवारो निशिदिन ही फिरत रहै,
मन सो न कहूँ हम देख्यो अपराधी है ॥ १ ॥

[मन सुसंग से अच्छा और कुसंग से दुराचारी बन जाता है]

वार्तिक

एक मनुष्य अच्छी सङ्गति करता है वह यथा लाभ सन्तोष करके कमाता खाता पीता सुख से रहता, कोई लत आदत व्यसन नहीं चोरी डाका कौन कहे जो अन्य के हजारों रुपिये पड़ा पा जाय तो वह उसी को उठा के दे देता है, या किसी प्रकार उसका लोभ नहीं करता, प्रत्युत अपने कमाये धन से आतिथ्य साधु सन्त सज्जनों की सेवा करता धीरे धीरे ज्ञान भक्ति वैराग्य का अधिकारी बनके वह नित्य सनातन चेतन स्वरूप में शांत हो जाता। इस प्रकार वह नर तन सफल कर लेता है। दूसरा कुसंग में पड़ के जड़ तन से पृथक अविनाशी चेतन

जीव जो उसका निरन्तर स्वरूप है उसी को भूल बैठा है जैसे एक मनुष्य लड़की के ब्याह भीड़ में व्यस्त था। वह हाथ में लालटेन लेते हुये दौड़ा दौड़ा घूमे सबसे पूछे भइया लोगों लालटेन कहाँ है। लोगों ने कहा आप उसी प्रकाश में देखकर चल रहे हैं। हाथ में लिये हैं, फिर भी पूछ रहे हैं लाल-टेन कहाँ है ? क्या आपकी बुद्धि दिमाग ठिकाने नहीं है। मनुष्य-हाँ तो मैं अवश्य भ्रान्त हो गया। इसी प्रकार जीव मन संकल्पों के भोड़ में पड़कर भ्रान्त हो रहा है। जिस स्वयं चेतन प्रकाश से जड़ इन्द्रिय गुण विषय जाने जाते हैं, त्याग एवं ग्रहण होते हैं, उसी अपने अपरोक्ष चेतन को भूल ही बैठा है मद्यपीवत। शुभ कर्मोचित व्यवहारो द्वारा यथा लोभ में देह निर्वाह न कर मन इन्द्रियों के बहकावे में प्राणी बड़े बड़े पाप करके इह लोक पुनर्जन्म रूपी परलोक दोनों बिगाड़ता रहता। प्रथम मन कहता है अधिक पाप न करना थोड़े में कोई हानि नहीं, चलो अमुक नातेदार सगे संबन्धी

जहाँ हम सेवा मान पा चुके हैं या जहाँ हम सब जान आये हैं, उसके कोई अन्य रक्षक नहीं। धन अपार है थोड़ा बहुत लूट लायें, अपार मन इच्छित संकल्प पूरी करें सुख लाभ बहुत हैं परीश्रम चिंता थोड़ी ! वाह खूब मन की हितकारी मंत्रणा ! मन का गुलाम अज्ञ जीव न कुछ परिणाम सोचा न कुछ, दलबन्दी करके अर्ध रात्रि को चल दिया, शीघ्रता से इधर उधर छल बल कपट से घर में प्रवेश कर उस बेचारे सोते प्राणी का गला दाब बैठे, अभी तो धनपूछना बाकी है न। 'बता-बता नहीं तो गला दबा देगें' ऐसा कहते हुये एक बर्छा छाती में लगाते हुये 'बता-बता वह भयभीत प्राणी बताता है ! रोता है। बीच २ में दम प्राण नहीं समाता है हाय हाय करता है। मारे भय के जोर से नहीं बोल सकता।' 'अरे पहिचान गया हूँ घर मालिक बोल उटता है !' हाय आप हमारे यहाँ कुछ दिन सेवित होकर भी इतना अत्याचार ! इतना भयंकर पाप !! डाकू 'मारो मारो जान से मारो'

चाहे हमारा भाई दामाद ससुर गुरु शिक्षक सन्त प्राण प्यारा क्यों न हो ? शीघ्रता से एक काँता बाँका गले पर चलाता है। समाप्त! खून की धारा से वहाँ सब लाल हो गया, मनुष्य नहीं यह बाघ भालू राक्षस! सब धन लेकर-चम्पत हो गये। जिन्हें इतना भी विचार नहीं कि हम अपना धन माल जान बचाते हैं, अपने ही समान दूसरे का अपहरण करते हैं, वह भी था उसी के समान जब हमारे ऊपर अत्याचार करेगा तब कैसी बीतेगी। क्या यह अन्याय उचित है? कदापि नहीं! बलात्कार चोरी लूट फूँक भी किया हिंसा रूप महा पाप भी किया अब जो धन लाया गया क्या हो समाज वाले 'हाँ-हाँ शराब लावो जी! चलो चलो शराब की दुकान पर!' मनमानी शराब मद्य भी पिया! 'हाँ हाँ नशे में मतवाले बन अभी खूब मजा नहीं उड़ा।' चलो चलो मांस अण्डा भक्षण हो, यह भी किया गया, अच्छा तो अभी मुख्य आनन्द लेना ही शेष है चलो चलो अमुक सुन्दर वैश्या

है, वैश्या गमन भी हुवा ! हाँ तो अभी तलाशी हो रही है। सर्कार द्वारा जन हत्या का अभियोग चलेगा, अर यार कब तक छिपोगे ! चलो चलो अच्छे वकील वारिष्टर ढूँढे। जो झूठे का सच सच को झूँठ क्षण में कर देवैं लो अब मिथ्या भाषण की बाढ़ आ गई। लड़ते भिड़ते दौड़ते हाफते काँपते कुछ दिनों के बाद ! अहो हाय फाँसी या बीसों वरष की जेल होगी। अब ऐसा करें कहीं फिर छल-बल से धन लायेंगे ही, पर अभी तो बचना है अपील हुवा कुछ बचे तो क्या बचे फिर फिर वही उत्पात ! कुछ चले गये जन्म भर के कारावास के प्रबल ज्वाला में। देखिये मन संकल्पों को स्ववश न करने का नतीजा ! यह तो एक ही जन्म के कुसंग का परिणाम है।

'ताहि कबहुँ भल कहै न कोई,
गुञ्जा गहै परश मणि खोई ॥' रा०

अहो यह मन जनम जनम सुख लोभ दिखा-कर क्या-क्या अन्याय नहीं करवाता ! हे मेरे

प्यारे ! अब आप सब मन के धोखे बाजी को भली प्रकार परीक्षा कीजिये गुरु कबीर देव की साखी को मत भूलिये—

साखी

यह मन नीचा मूल है, नीचा कर्म सुहाय ।
अमृत छाँड़ै मान करि, विषहि प्रीति करि खाय ॥
जेती लहरि समुद्र की, तेती मन की दौर ।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥

सार—इसलिये काय वचन मनकृत दश दोषों को हटाइये और दश गुणों को धारण कीजिये—

दोहा

चोरी[1] हिंसा[2] अरु त्रिया[3], निन्दा[4] मिथ्या[5] गालि[6] ।
क्रोध[7] ईर्षा[8] मान[9] छल[10], तन बच मन से टाल ॥

दोहा ग्राह्य

स्नान[1] दान[2] शुभ[3] जीविका, शिक्षा[4] सत्य[5] सु[6] भाख ।
शौरँज[7] न्याय[8] प्रीति[9] दया[10], तन बच मन में राख ॥

सार—ग्राह्य और अग्राह्य दोनों का निश्चय अवश्य रखिये । निश्चय ही चलने के पैर देखने को नेत्र समान है—यथार्थ निश्चय विवेक निर्मल

मन ही जीवन जीवन है। लाभ का लाभ है-पिंड ब्रह्माण्ड जड़ तत्वों में ज्ञान ही नहीं। ज्ञान कर्त्ता द्रष्टा साक्षी होने से नित्य अनादि है वे प्रत्येक देहों के सत्ता देकर चलाने वाले कर्म वासना वस प्रत्यक्ष चारो खानियों में पुनर्जन्म लेते हैं। इसलिये पाप पुण्य कर्मों का फल भोगना अवश्य है पुण्य का फल सुख शान्ति जान कर सतत शुभ कर्म संग्रह कीजिये, सदा के लिये मुक्त हेतु पंच विषयों की जड़ासक्ति निर्मूल करते रहिये। मन के मते मत चलिये-

साखी

मनमानी को पूर करि, रहा सुखी कब कौन।
तीन काल वर्तमान में, रहा लखि लीन तौन ॥[मुक्ति]

[प्रिय बंधुवों कल्याण चाहने वाले सज्जन वृन्द
मन के अशुभ संकल्पों को हटाते रहिये]

दृष्टांत

एक धनी मनुष्य था उसके मन में विषय संकल्प पूर्ण करने का हठ हो गया, सबसे विशेष अज्ञानता वस काम के संकल्प उठते हैं, वह अपनी

प्रथम की पतिव्रता स्त्री छोड़ कर नई चपला वैश्या ग्रहण किया, उसमें उसने इतनी आसक्ती बढ़ा लिया कि चलते फिरते उठते बैठते क्षण भी वियोग न सह सके। इस हेतु प्रतिक्षण वह उस वैश्या को निहारता ही रहे। चलते समय में भी मुख वैश्या की ओर करने से उसे पीछे हट हट के चलना पड़े! लोग देख देख हँसी उड़ावें, पर उसको किसकी चिन्ता! बारम्बार जब जब वह नारी चले तबतब वह उसके आगे हो हो उसे देख देखके पीछे हटता चले! वह चपला अत्यंत अपने में आसक्ती देख देख १०-२० जूते नित्य मारती और अनन्तो त्रास देती कटु कुवाक्य प्रहार करके निरादर करती, फिर भी वह उसे निहारने उसके देह के कीट बनने में मुख न मोड़ा। निदान वह वैश्या धन मानवीर्य ध्वंस करके विष देकर जान ले ली। यह हुवा मन माने सुख भोगों के इच्छा पुरौती का परिणाम !! इसी हेतु सब अनुभवी संत महोदय शिक्षा दे रहे हैं।

छन्द

विषयों में देखो तृप्त किसका मन हुआ है।
तृष्णा बढ़ै दिन रैनि इच्छा ना मुवा है॥
चिंता शोक मदादि आशा हुश्न भारी।
दिन दिन करोगे भोग होगा रोग जारी॥
विषयी महा मन मैल में नहि ज्ञान लगता।
पापी हृदय में ज्ञान सुनि के क्रोध जगता॥
तीनो भुवन का भोग तुमको आ मिलेगा।
तदपि नहीं मन मूर्ख तेरा दिल खिलेगा॥

(निर्मल ज्ञा० प्र०)

चौपाई

नर तन पाय विषय मन देही।
पलटि सुधा ते विष शठ लेही॥

(रा० उ०)

सार—उसे देश समाज घर बन में कोईप्रशंशा नहीं करता जिसका चरित्र गिर गया है जो चोरी डाका लूट फूक बेइमानी गलाघोटी वरजोरी ठगी आदि कुकर्मों द्वारा अपना सुख चाहता मा बाप गुरु संत बुद्धिमान देश शुभ समाज के किसी

हितकारी नियम पर नहीं चलता उस झूठे अन्यायी विधर्मी दगावाज की कौन निन्दा नहीं करता स्वयं भी पछताता, लजाता, किन्तु मारे अभिमान क्रोध आसक्ति से अंध बना कुछ सुधार नही कर पाता, आइये अवश्य सत्संग सुनिये ध्यान दीजिये पापी से पापी के हृदय में वही ज्ञान तत्व रूपी सूर्य ढका है जो पवित्रता सज्जनों के हृदय में है। अब आपको कितने असत संकल्प त्याग कर सुखी बनना है उसे मनन कीजिये प्राणी जो असत मिथ्या दुखप्रद बुद्धि विनाशक पंचस्वाद तथा मद्यादि तम्बाकू आदि में आनन्द अनुभव करते हैं वह व्यर्थ लत अभ्यास का कारण है।

'महा अंध को जो मदनातर,
निज भल करै सोई बड़ चातुर।
बांधत को विषयानुरागी,
को वा मुक्त विषय जिन त्यागी ॥' (विश्रा०)

भोग मनन से आकर्षण, तिसमें रुकावट से क्रोध क्रोध से बुद्धि विवेक नष्ट होकर प्राणी का

जीवन पागल इव हो जाता है इससे बचके जीवन स्ववश के हेतु–

[असत संकल्प परित्याग वर्णन हो रहा है]

ध्यान देंगे काम बनेगा नहीं तो वधिर को गीत सुनानेवत कुछ फल न होगा, फल प्राप्त हेतु अवश्य चित्त दीजिये–

शब्द—३८ इच्छा परीक्षा

आदति कुमग समुझि बिसराई ॥ टेक ॥

सुँघनी खानी धूम तमालहिं, गाँजा भँग लोभाई ।
सिगरट बीड़ी चन्डू ताड़ी, मदिरा माँस सिखाई ॥ १ ॥
अफीम धतूरा खबटा माटी, दोहरा राख लहाई ।
कोई एक कोइ दोय चार गहि, जौन जाहि मन भाई ॥ २ ॥
तेहि बिन चैन ताहि नहिं होवै, तन मन दुख दिखलाई ।
जो नहिं इनको धारण कीन्हें, नहिं तेहिके बिकलाई ॥ ३ ॥
नाच सिनेमा जुवा खेल गहि, पत्ता स्वांग रहाई ।
चोरी चुगुली गाली झगड़ा, हँसी दिलग्गी लाई ॥ ४ ॥
भाँति भाँति के बाजा लखिये, अनहित अंग चलाई ।
मर्दन अंग विविधि विधि कोमल, तन के परस बनाई ॥ ५ ॥
जेहि अभ्यासिक तेहि को भावै, सुख निश्चय धरि लाई ।
बिना ताहि के रहा न जावै, कष्ट बहुत दिखलाई ॥ ६ ॥

जो नहिं याहि फाँस में बँधुवा, ताहि गर्ज नहिं आई ।
गंध बिविधि ऐसहिं दुख देते, कोई गहै कोइ नाई ॥ ७ ॥
पंच विषय दोनो विधि देखा, बँधुवा कोई छुटाई ।
याते अन्य जौन मन करनी, तजे सबहिं तजि जाई ॥ ८ ॥
पंच विषय में अंग जौन जेहि, सबै एक समताई ।
कोई गहै कोइ तजै ताहि को, सन्मुख देय दिखाई ॥ ९ ॥
साहस गहौ न दुस्तर कछु भी, जो विजाति बिलगाई ।
मारि भगाओ ये सब शत्रुन, ह्वै रणधीर अभय पद पाई ॥१०॥

शब्द

ढूँढ़ि रह्यो कस सुख नहिं तुम्हरे
पचत फिरै कस दुख नहिं गुन रे ॥ टेक ॥

पंच बिषय इन्द्री मन बिलगै, नहीं देह झगरे ॥ १ ॥
देखब सुनब गुनब तब कैसे, रसना भोग न सपरशरे ॥ २ ॥
देखत वस्तु रही सब बिलगै, मिल्यो काह तोहिं रे ॥ ३ ॥
मानि-मानि तुम दुखिया बनिकै, ख्वाहिश आगि जलनि रे ॥ ४ ॥
चंचल वृत्ति को दुख माने चेतन, स्थिर होन में विषय धरे ॥ ५ ॥
जलत अगिनि पैठे कोई अगिनिहिं, भसम होय नहिं देर करे ॥ ६ ॥

चौपाई

अन्धकार सुख इच्छा जानौ । तेहि में भरमि के जीव भुलानौ ॥
दुख को सुख सुख को दुख जानै । उलटी क्रिया करत भल मानै ॥
दुख छूटन हित युक्ति विविधि विधि। बढ़तजायदुखज्यों२सुखसिधि॥
सुख के सिधि से इच्छा प्रबला । जेहिके वशि में खबरि न सबला ॥

सुख के छोड़े सब दुख जावै । तेहि की फिकिरि न कबहूँ लावै ॥
है यह भूल असक्ति को फेरा । अनादि प्रवाह चलति यहि हेरा ॥
तेहिते दुखको सुख करि मानै । हेतु न भूल केर पहिचानै ॥
जे समझैं ते भागैं यहि से । ज्ञान विराग मोक्ष के ख्वहिसे ॥

सोरठा

यह विषयन की चाह, कस न तजै मन मूढ़ तू ।
करत आहि फिर आह, आशा फाँस न परि हरे ॥

तृतीय-नियम

चौपाई

बस्तुन प्राप्ति माहिं तजि संचय ।
खाश अवश्यक राखि असंचय ३

अर्थ—हे मुक्ति भक्ति सदाचार प्राप्ति इच्छुक प्राणी ! जो अन्न धन वस्त्रादि उपयोगी पदार्थ शुभाचरण युक्त प्राप्त हों उन्हें जोड़ जोड़ के संग्रह

मत कीजिये मुख्य शरीर निर्वाहिक वस्तुयें रख के विशेष का संग्रह त्यागते रहिये ।

'ज्यो आवै त्यों फेरी हो ॥' बीजक ॥

पुष्टि-करण

(मन स्वभाव से लोभी होता है)

एक छोटे बालक को बतासा दिया गया, उसकी अंजुलि बतासे से धीरे धीरे भर दी गयी, दो चार बतासे जमीन पर गिर गये, अब तो वह अंजुलि पूर्ण बतासे से तृप्ति न मानकर उन दो चार बतासों के लिये रो रहा है, रोते वक्त दो चार और गिर गये, स्वयं उठा नहीं सकता, दूसरा कोई उठाकर भर दे, ऐसी आशा से वह व्यस्त हो रहा था, इतने में एक और बालक आ गया, धरती पर गिरे दो चार बतासों को वह लूट कर भाग गया, फिर तो यह पहला बालक मारे क्रोध के अंजुलि पूर्ण बतासों को जमीन पर बिखेर आप लोट पोट हो हाय हाय करके छटपटाने लगा । बस यही बात उन नर जीवों पर घटती है जो

दिनो दिन धन संग्रह करते हुये थोड़ी थोड़ी हानि होते देखकर असहन प्रकृति बनाय लूट फूँक मार कूट हिंसा अनीति छल बल करने को कमर कस रक्खे हैं। उन्हे मायाभिमान के नशा में यह भी नहीं दीखता कि यह संग्रह कबतक रहेगा जब कि यह देह ही क्षण भंगुर है, न जाने इसी पल में यह देह छूट जाय तो यह सब शासन राज्य सत्ता मोर तोर इतना विलुप्त हो जायेगा कि मुझे इसकी स्मृति भी न रहेगी। सज्जनों विचार तो करो! कूप से जल निकालते रहने से पुनः सोंत से जल पूरण हुवा करता है एक बीज बोने ही से हजार बीज लुनने को मिलते हैं। इसी लिये गृहस्थ विरक्त-सभी को निज निज श्रेणी अनुसार मुख्य धर्म करते ही रहना चाहिये! साथही खर्चने दान मान सन्मान परोपकार करने कराने का प्रमाद भी नहीं लेना चाहिये। धन्य! धन्य!! साथही–प्रेम प्यार के वे भी पात्र हैं जो सेवा या दान लेकर दानी उपकारी सेवक बनाने का शुभ अवसर प्रदान करते हैं!

कर्तव्य पालन करने वाला जब किसी सेवा दान पात्र को पाये ही न तो वह अपना कर्तव्य किसके हेतु पालन कर कैसे अपना अन्तःकरण शुद्धि करे, और कैसे लोक परलोक में सुखी शान्त या मुक्त होने का शुभ कर्तव्य करे ? ग्रहीता का भी कर्तव्य धर्म है श्रेणी अनुसार ही यथा संभव लेने के भार से बचते हुये, यथा लाभ सन्तोष रक्खे। दाता-ग्रहीता-दोनों बुद्धिशाली, देने लेने का अभिमान त्याग, सदैव शुभ कर्मी दानी उदार संतुष्ट बनके जीवन लाभ लेना चाहिये। उदारता दान, भक्ति, अंतस शुद्धि हेतु स्वपद शांत लक्ष से करना श्रेष्ट है सकाम इच्छा से मध्यम है। इस प्रबंध की पुष्टि हेतु लोभ परित्याग इच्छा परीक्षा का पुनः शब्द कहा जा रहा है, अर्थ विवेक से विस्तृत करके उदार बनिये बनाइये। और आपा स्वार्थी प्रमाद का बोझा डाल दीजिये।

शब्द—१८ इच्छा परीक्षा

हमारे मन लोभ से दूरि रहौ ॥

भय चिन्ता संताप विनाशै, सब अज्ञान दहौ ॥ टेक ॥

सकलौ मित्र शत्रु बनि जावैं, जो कहुँ लोभ गहौ ।
रक्षक अपने भक्षक होवै, नित दुख द्वन्द सहौ ॥ १ ॥
सकल राग की उत्पति होवै, नहिं वैराग्य तहौं ।
भक्ति विवेक निकट नहिं आवै, नाहिं धरम निबहौ ॥ २ ॥
वैराग्य को दुश्मन लोभ महा है, मन कृत रोग लहौ ।
यहि के गर्ज कुसंगति बहुतै, विद्या मान चहौ ॥ ३ ॥
साधु संग से अरुचि करै यह, गुरु से भेद रहौ ।
मान बड़ाई निज वह खोजै, तेहि के हानि ढहौ ॥ ४ ॥
करत याचना सबसे भरमै, जेहि विधि मान लहौ ।
सब धन विद्या चहै जगत को, घाटि न कतहुँ रहौ ॥ ५ ॥
नारि प्रपंच रहै वह बँधुवा, बनै अलिप्त तहौं ।
ज्ञान ध्यान तेहि मनहिं न भावै, निशि दिन जलनि जहौ ॥ ६ ॥
मोक्ष वैराग्य शांति सुनि जलते, तब वहँ त्याग कहौ ।
निज हित छोड़ि दरिद्र में भरमत, भोगत दुःख महौ ॥ ७ ॥

(और भी सद्‌गुरु कबीर की साखियाँ मत भुलाइये)

❀ साखी ❀

कबीर माया रूखड़ी, दो फल को दातार ।
खावत खर्चत मुक्ति है, संचत नर्क दुवार ॥
कबीर माया जात है, सुनो शब्द निज मोर ।
सुखियों के घर साधु जन, सूमो के घर चोर ॥

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि-भ्रमि माहि परंत ।
कोई एक गुरु ज्ञान ते, उबरे साधू सन्त ॥
माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर ।
आशा तृष्णा न मुई, यों कथि कहैं कबीर ॥
खान खरच बहु अन्तरा, मन में देखु विचार ।
एक खवावे साधु को, एक मिलावे छार ॥
गुरुको चेला बीष दे, जो गाँठी है दाम ।
पुत्र पिता को मारसी, ये माया के काम ॥
माया माया सब कहैं, माया लखै न कोय ।
जो मन से न ऊतरे, माया कहिये सोय ॥

बीजक की साखी में

अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज ।
भक्ति महातम ना तुले, ई सब कौने काज ॥

(सद्गुण शतक की सीख सामने रखिये)

❀ साखी ❀

थोड़े में निर्वाह ले, संचय छोड़ि सुपास ।
मन की आशा दूरि धरि, अभय स्वरूप मवास ॥
प्रारब्धि भोग तन दृश्य जो, तेहि हित भय को साथ ।
सो बिजाति दुख रूप है, तब कस होय अनाथ ॥

यथा योग्य वर्तै अभय, राखि न जग कुछ काज।
तबही दुख से मुक्त ह्वै, त्यागि मनोमय राज॥

दत्तात्रेय जी कहते हैं—

उभय बिंश जानहु मधु माखी।
रस रख कीन्ह इकट्ठे राखी॥
खाइनि नहिं निज काज कीन्ह्यो।
आय छुड़ाय आनही लीन्ह्यो॥
तैसहिं कृपिणि दरबि को पाई।
पुण्य न करहिं सकहिं नहिं खाई॥
विविध भाँति राखहि महि गोई।
करहिं भोग तेहिं आनहिं कोई॥

(बिश्रामसागर)

अतएव—

दोहा

धन पावै कछु दान करु, अथवा कीजै भोग।
दान भोग बिन धन गहे, बृथा बटोरत रोग॥

(बीजक शब्द ७२ का उपदेश)

फिरहु का फूले फूले फूले॥
जब दशमास उर्ध्व मुख होते, सो दिन काहेक भूले।
ज्यों माँखी सहतै नहिं बिहुरे, सोचि सोचि धन कीन्हा॥

मुये पीछे लेहु लेहु करें सब, भूत रहनि कस दीन्हा।
देहरि लौं वर नारि संग है, आगे संग सुहेला॥
मृतक थान लों संग खटोला, फिर पुनि हंस अकेला।
जारे देह भस्म होय जाई, गाड़े माटी खाई॥
काँच कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की इहैं बड़ाई।
राम न रमसि मोह के माते, परेउ काल बश कूवाँ।
कहहिं कबीर नर आप बँधायो, ज्यों ललनी भ्रम सूवा॥

सवैया

जोरि जमा गहिरे धन गाड़त भोजन को वे बनावत माड़ी।
सन्त गुरू कोइ देखि परै भितराय रहै जैसे खूशट भाड़ी॥
भाखै प्रधान पयान समय सब छोड़ि चले गृह घोड़ा औ गाड़ी।
चाँदी के बासन गाड़े रहे मरि पीपर में टाँगि छदाम की हाड़ी॥

अतएव— 'धन्य द्रव्य जो दान में लागै।
धनि प्रभुता मद मान न जागै॥ वि० सा०

चतुर्थ - नियम

चौपाई
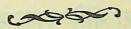
नहि समाज को पीड़ा देवै।
बनै तहाँ तक हितही सेवै॥४॥

अर्थः–जिस जन समूह से आपका निरन्तर संबंध है उस जन समाज को मन कर्म वाणी से किसी को कष्ट मत दीजिये ! अहित भावना मत रखिये । आपकी जहां तक उक्ति युक्ति शक्ति तुले तहाँ तक भर सक सर्व हिताय धारणा बनाइये । अन्य साथी करे या न करे उनकी किंचित राह नहीं देखिये, मात्र अपने सत्कर्तव्य पर ध्यान दीजिये, इससे आपको महान शान्ति स्ववशता की प्राप्ति होगी, दूसरे की हानि लाभ उसके हाथ है आपके हाथ नहीं ! आपकी हानि लाभ आपके सद कर्तव्य पर आधरित है अतएव सर्व हित की चेष्टा भलो प्रकार हृदय में अपनी नित्य स्थिति हेतु धारण करते रहिये !

पुष्टि-करण

दृष्टांत–एक राजा दो गरीबों को एक एक दुशाला जो कीमती थे उन्हें दिया । एक सज्जन था दूसरा दुर्जन स्वभाव का था । सज्जन तो नरेश का उकार मान दुशाला को प्रेम से स्वयं ओढ़ने

लगा, और समय पर अन्य को भी दे शीत निवारण कर उपकार करने लगा! दूसरा अभिमानी नरेश को गाली दे उस प्राप्त दुशाले को नोच २ फाड़ २ के चिथड़े बना डाले। और उनसे नाक पोछ पोछ के फेंक दिया, राजा गुप्तचरों द्वारा दोनों का पता लगा कर पुनः बुलाया पूछ जाँच के सदुपयोगी को तो सन्मान सहित रक्षण करके उच्चअधिकार दिया और दुरुपयोगी को प्रथम पचासों कोड़ों से पिटवा कर कारागार में डाल दिया।

इसका सिद्धांत है कि कीमती दुशाला रूपी यह नरतन है इसे स्वार्थ सुख इन्द्री बल विद्या वस्तु प्राणी से सदैव-समाज हित पर ध्यान के साथ ही अपनी निर्वासनिक स्थिति बना लीजिये। समाज को पीड़ा देकर अपना सुख चाहने वाला सदैव अधोगति को प्राप्त होता है।

दोहा

तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है, मिटहि न मरिहैं धोय॥

पर धन गुण यश रूप में, होत इर्षा जाहि ।
जलत रहे दुख अगिन में, कौन बचावै ताहि ॥

[सतोपदेश]

इसलिये समाज को खिला पिला मान सम्मान-प्रेम देकर भी आप कुछ भी किसी से मत इच्छा कीजिये। छोटे बड़े उत्तम मध्यम कम विशेष बुद्धि वाले सभी तरह के प्राणी समाज में रहते हैं उन सब के साथ आप प्रेमशील नम्रता से ही बर्तिये ।

साखी

हित चिंतक सबके बनो, जौन दशा में होउ ।
उत्तम मध्यम कनिष्ठ पर, करौ न इर्षा कोउ ॥

(मुक्तिद्वार)

इसी लक्ष्य से भवयान भक्ति भरण प्रकरण का एक शब्द मनन करिये और कराइये ।

शब्द—भक्ति भरण

लहौ मन समता क्षमा अमान ॥ टेक ॥
दया धरौ तब दया तुमहिं पर, निरदय क्रूर सदै दुख दान ।
यथा विवेकसे ताहि निरखि करि, निज हित परहित को मनमान ॥१
शील गहौ निरशील जलनि तजि, शांति मनन पुरुषारथ ज्ञान ।
तोष सदा निर्वाह में राखौ, होउ स्वतन्त्र महान ॥२

सत्य तुमहिं निज पद पहुँचावै, क्षण क्षण दुःख दहान।
एकरस वृत्ति को धारणा करिकै, मिलै सुगम निज थान ॥३
धीरज साहस जोर बढ़ावै, छाँड़ि अधीर नदान।
यहि धारण बिन काम न पूरा, कोटिन यतनि करान ॥४
वीर भाव वैराग्य राग जित, तेहि पावक लै बन्ध नशान।
रहौ उदार कामना तजि कै, डारो मान लदान ॥५
भक्ति सरल निर्छल मल नाशन, दुष्ट सुलभ फल दान।
पाय अचुक धन सब दुख जावै, सन्त सहायँ लहान ॥६

सार लक्ष्य—दूसरों के द्वारा निर्दय पूर्ण कुशीलत्व तृष्णात्व असत्यत्व अधीर उदार रहित्वादि व्यवहार आप को अन्याय लगता है तो आप वैसे ही दूसरों के साथ दुर्व्यहार क्यों करते हैं? जब अपना हृदय ही शुभ चरित्रों से स्ववश शांत अखैंच अभय निश्चिंत निर्भय हो रहा है तब वही शुभ मूल रहस्य ग्रहण कीजिये। अपना हित और समाज हित की चेष्टा दोनों एक एक के आश्रित हैं, कई रहस्यों से अपना और पराया सब समाज का हित होता है। सो ऊपर बताया जा चुका है पुनः संक्षेप में सुनिये—मैत्री, करुणा, मुदित

उपेक्षा, ये चारों को धारण करने से चित्त दोष शांत होने के पीछे सर्व हित होता है। सुखी से मित्रता, दुखी पर दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता। पापियों से उपेक्षा (दूर रहने की भावना) इन चारों को लेने से चित्त के द्वेष घृणा ईर्षा और क्रोध आदि मल दोष नाश होकर चित्त शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है, तब स्वभावतः समाज कल्याण के रहस्य आ जाते हैं।

सद्गुण शतक की बातें तो लाखों बातों का निचोड़ है—इसपर ध्यान जमाइये।

सकल विषय तृण जारि के, करै कामना भंग।
शुद्ध शील साथी मिलै, कबहुँ न तेहि को तंग॥
असहन कठिन स्वभाव तजि, गहै नम्रता चाल।
कबहुँ न काहुइ होय दुख, बोलत बचन सँभाल॥

गुरु कबीर का उपदेश अमूल्य हीरा है—अपनाइये—

साखी

है बिगरायल वोर कर, बिगरो नाहिं बिगारो।
घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो॥

बीजक

वार्त्तिक सार–मनुष्य को सबसे पहिले अपने को सद्‌गुण सद्विचारों से ठीक करना है, फिर तो रेडियो प्रसार मूल स्थान में बोलने से सर्वत्र वही बात प्रसार न्याय स्वतः ही सबका हित होता रहेगा।

समाज हितकारी विविध उपदेश नीति संग्रहित वचन।

यथा—यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवं परिसेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्ट मेव हि॥

१–निश्चित वस्तु को छोड़कर जो व्यक्ति अनिश्चित की ओर भागता है, उसको निश्चित वस्तु तो जाती रहती है, अनिश्चित तो पहिले ही से नष्ट थी।

चौपाई

निश्चित छोड़ि अनिश्चित धावै।
निश्चित छूटि न आगे पावै॥

सार–गुण लक्षण साधर्म्य युक्त सत्य नित्य शुद्ध स्वरूप ही में शांत होने का प्रयत्न करिये।

श्लोक–त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जन पदस्यार्थे आत्मार्थे पृथवीं त्यजेत्॥१०॥

२—कुल की रक्षा के लिये एक को ग्राम्य रक्षा के लिये कुल को देश की रक्षा के लिये ग्राम को और आत्म रक्षा के लिये पृथ्वी तक त्याग देना उचित है।

चौपाई

कुल रक्षा हित एक को तजिये।
ग्राम्य रक्ष हित कुल से भजिये॥
देश रक्ष हित ग्रामहुँ छोड़े।
स्वात्म हेतु सब रति प्रिय तोड़े॥१०

सार—एक से एक बढ़कर योग्य सेवा करते हुये अपने जीव के परमार्थ बनने पर विशेष चित्त देना।

श्लोक

नास्ति काम समो व्याधिः नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति कोप समो वह्नि नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥

३—काम के समान और कोई रोग नहीं है। अज्ञान के समान और कोई दुश्मन नहीं है। क्रोध के समान और कोई आग नहीं है। ज्ञान से बढ़कर और कोई सुख नहीं है॥ १२॥

चौपाई

नहि मनोज सम रोग पिछानौ ।
रिपु अज्ञान तुल्य कहँ ठानौ ॥
क्रोध अग्नि सम और न जारक ।
ज्ञान समान सुखद नहिं तारक ॥

श्लोक

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥

जीव आपही कर्म करता है। और उसका फल भी आपही भोगता है। आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्त होता है ॥ ६ ॥

दोहा

जीव कर्म आपै करै, फलहू भोगत आप ।
आप भ्रमत संसार में, मुक्ति लहत है आप ॥

सार—जीव ही नित्य सत्य चेतन शांत रूप है ।

श्लोल

शांति तुल्यं तपो नास्ति, न संतोषात्परं सुखम् ।
न तृष्णायाः परोव्याधिर्न च धर्मो दया परः ॥

(चाणक्य नीति)

टीका—शांति के समान तप नहीं है, सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं तृष्णा से बढ़कर व्याधि नहीं दया से बढ़कर धर्म नहीं ।

चौपाई

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्णय सकल पुराण बेद कर ।
कहेउ तात जानहिं कोविद नर ॥

(रामायण)

साखी

संत बचन अमृत कली, चर्चा फूले फूल ।
सत्संगत की बाग में, नाना फल रहे झूल ॥

सार—संत गुरु समाज में प्रेम करके कल्याण रूपी फल प्राप्त करना चाहिये ।

पंचम-नियम

चौपाई

त्यागि जगत को घूमि न देखै ।
मानुष जन्म सुफल करि लेखै ५

अर्थ—ज-जन्मने, गत मरने हेतु पंच विषय और सुखाध्यास के साधक कुल कुटुम्ब नारी और और धन जमीन आदि गृह के सर्व अधिकार रूप जगत दुखपूर्ण जान के परित्याग पूर्वक वैराग्य वेष में या मुमुक्षु दशा को धारण करने के साथही पुनः पुनः विवेक वैराग्य भक्ति दशा को ही सँभालता रहे। वैराग्य जीवन से उलट के पुनः सुखाध्यास साधक प्राणी पदार्थ कुल कुटुम्ब पाँच भोगों की ओर न ललचावे। तिनसे किंचित मोह संवध न जोड़े। यह जाने, बड़े प्रयत्न से कुल कानि लत आदत से छूट कर वैराग्य जीवन मिला, अहा इस वैराग्य जीवन की सौभाग्यता की तुल्यता कहाँ किससे की जा सकती है? मेरा मानव जीवन सफल धन्य हो गया! काम क्रोध लोभ मद मत्सर रागद्वेष कलह कल्पना आशा तृष्णा तो पशु कीट शूकरादि में भी है। इन पंच सुख क्षण मात्र के आनन्द से दूर रहकर जो मुझे चित वृत्ति निरोध करके अक्षय स्ववश रहने का स्वर्ण अवसर मिला

उससे मुझे कोई लाभ शेष न रहा मैं समस्त लाभ को पा गया ॥ ५ ॥

साखी

जाहि मनन में सुख निते, ध्यान क्रिया सुख ध्येय ।
घाटा तेहि में कौन है, जो औरे चित देय ॥
जगत राग सुख लेश नहिं, भूल थान दुख ज्येष्ठ ।
भूलि न तेहि में लक्ष दे, तेहि तजि मरना श्रेष्ठ ॥

[मुक्तिद्वार]

पुष्टि-करण

जीवन सफल करने के लिये गुरुवर कबीर देव की शिक्षा पर भी ध्यान दीजिये—

शब्द—१०७

खशम बिन तेली के बैल भयो ॥

बैठत नाहि साधु की संगति, नाधे जनम गयो ॥
बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ यम के दण्ड सह्यो ।
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो ॥
खशमहिं छाँड़ि विषय रंगराते, पाप के बीज बोयो ।
झूठीं मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो ॥
लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो ।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उन श्वान को पूँछ गह्यो ॥

सार लक्ष्य–तनमन का प्रेरक शुद्ध चैतन्य ही खशम है तिस स्वयं चैतन्य विषयक बोध रहस्य तो भूल ही गये नश्वर पाँचो विषय सुख हित परिवार जाल में मैं मैं तूँ तूँ करते करते झगड़ा द्वन्द रचते रचते भार वाही खर के समान शोक मोह में पीड़ित रहे। जो तुमने स्वर्गादि में जाना मुक्ति माना सो प्रेत रूपी जो कल्पना गढ़ के मर गये उनके जूठी कल्पित वानी श्रवण मनन करते हो तो कहाँ से सत्मार्ग मिले। कुत्ते की पूछ पकड़ने से कोई स्थिति नहीं पा सकता कुत्ते रूपी-पाप कर्म निरत कुसंग के पूछ में लटकने से कोई भी कल्याण नहीं कर सकता।

चौपाई

कैसेउ चतुर होय किन कोऊ।
नीच संग करि बिगरत ओऊ॥

(रामयण)

साखी

मारी मरे कुसंग की, केला साथे बेर।
वे हाले वै चीधरे, विधना संग निबेर॥

(बीजक)

वैराग्य प्रवर्धन— शब्द

करौ अभाव विषय सुख जग का ।
साँच विराग न राखे कोइ दुख का ॥ टेक ॥

सोय गये अनुभव सुख सबका, सुषुपति भये कहै का तबका ॥१
भय चिंता कोई दुख नहिं खुटका, राजा बादिशाह का उनका ॥२
इच्छा जिन से भिरै न कबहूँ, हैं सब तुच्छ कहे हम जिनका ॥३
जब वह शून्य होय मन इच्छा, देयँ प्रमाण काह अब वहिका ॥४
तेहिते स्ववश करौ मन इन्द्री, जेहि ते मिटै कठिन दुख नितका ॥५
लोभी सरिस न भूलौ यहिका, घात लगाय रहै जो धनका ॥६
कामी सरिस न यह मति टारो, नारि हेतु अर्पण तन मनका ॥७
मोही सरिस बिसारि जनि जाओ, मोह विवश समुझत नहिंतनका ॥८
जाहि वियोग भयो है वहि से, चहत खोदि लावन तेहि घरका ॥९
इन सबकी सरि संयमपालौ, करौ परीश्रम तजिसब सुखका ॥१०
जग करि स्ववश चहै सुख सबका, तिनहित सरल उपाय यह सुखका ११
सबके शिरे व होय अखण्डित, है कोइ लाभ न बाकी जेहिका ॥१२
रोगी ऋणी विवश रहै जबहूँ, तबहूँ न भूलि जाय वहि हितका ॥१३
घाव दुसह दुख प्राण जो निकरैं, तबहूँ रुचति रहै किरिचितका ॥१४

वार्त्तिक—एक शिक्षक ने एक नरेन्द्र सज्जन को इसका विस्तृत अर्थ समझाये पुनः नरेन्द्र बोला आपके इतना समझाने पर भी पूर्व का सम्बन्ध, अपना माना हुवा अहंकार, मोह और

अपनी रची भई आसक्तियाँ, शीघ्र नष्ट नहीं होती क्षण में नष्ट क्षण में पुनः आकर्षण करने लगती संत ने कहा है १–प्रथम सत्संग में प्रेम करके यथार्थ समझ पुष्ट कीजिये।

२–आश्रम या घर में रहकर कुटुम्ब पालन करते हुये भी-परमार्थ साधन पर भी ध्यान दीजिये। मांस मछली आदि हिंसकी भोजन तथा चरस मदिरा गाँजा अफीमादि नशीले चीजों की लत आदत भली प्रकार परित्याग कीजिये। परस्त्री गमन, मिथ्या भाषण स्वमाने हुये में भी लम्पटत्व चोरी जूवा आदि दोषप्रद कर्मों से दूर होइये। धीर वीर हो निज स्ववश माने हुये सूक्ष्म काम क्रोध मोह ग्रंथि को छेदन कीजिये।

३–पाँचों विषयों के झलकते हुये सुखों से निकले हुये सर्व तीन ताप और तृष्णादि ज्वाला बढ़ने का दुसह दुख देखते ही रहिये, निज मूल बस कुटुम्बासक्ति का परिणाम बन्धनप्रद बारम्बार मनन कीजिये।

४–दुख सुख हर्ष शोक द्वन्दों से पृथक एक स्थिति शांत पद रूपी मुक्ति की इच्छा उत्तेजित कीजिये। निज स्वरूप की शक्ति गुण स्थिति समझिये। और निरन्तर नित्य प्राप्त स्वयं प्रकाशी के स्मृति द्वारा जगत्त भाव दमन कीजिये।

५–सद्ग्रन्थ मनन सन्त सेवा, दीन दुखी की रक्षा में अपना तन मन धन का सदुपयोग करते चलिये। सद्धर्म विकाशक कार्यों में धन लगाते रहिये। न धन हो तो कोई चिन्ता नहीं लाखों से बढ़कर आपकी नेत्रादि इन्द्रियाँ सूक्ष्म अनुभव दिव्य वाक्य बोल चाल पास ही है, उसे सत की ओर ले जाना चाहिये। ढंग सत्संग से सीखिये।

६–एक सिद्धांत पर चलते हुये संत भक्त सज्जन जिसकी जिस प्रकार तन मन अन्नजल मान देकर सेवा करने योग्य हो उस प्रकार उदारता पूर्वक स्वयं करिये साथही सत्यज्ञान प्राप्त हेतु सुनने सीखने में लक्ष दीजिये। ये सब शुभ साधन करके जो बड़ाई अच्छाई स्ववशाई प्राप्त हो वह सब

गुरुदेव का है अर्थात् गुरु प्रताप का फल है, ।

७–गुरु जो बोध दायक रहस्य युक्त हों उनके एकाधार से शरण स्वीकार करके गुरुमुख हो भेष चिन्ह सादर धारण कर सर्व सद्गुणों का भी सेवन करने को उत्साहित होइये ।

अन्तिम सार–जैसा कि इस पूरे प्रकरण में कथन हो रहा है। यदि आप इतना श्रवण कर कठिनता माने तो इस अज्ञानता को भी विवेक से दूर कीजिये चाहे धनी मानी राजा विद्वान कीर्ति-वान हो या निर्धन गृही नर नारी दुखी दीन हो सबके लिये अधिकार है! शक्ति है संयोग और सहकार है कि वह सत्यासत्य समझे असत्य का त्याग और सत्य को ग्रहण करे !

साखी

उत्तम मध्यम कनिष्ट जो, सबही हित को साध ।
निज निज श्रेणी से चले, करते दुख को बाध ॥

(मुक्ति०)

इतना श्रवण कर नरेन्द्र सत्संगी बन के सुधार

विचार में लग पग के वैराग्य का अधिकार प्राप्त कर लिया।

मन मनसा की तरंग ही परमार्थ पथ से हटाती रहती है अतएव मन पर विजय प्राप्त हेतु वैराग्य पुष्टक पद पुनः स्मरण कीजिये—

कवित्त-

इन्द्रिन के सुख अरु काम आदि दूरि करु,
धूरि करु मान आदि राग प्रीति त्यागि दे।
बन्धुओ कि सुधि तजु सुधि तजु मित्र आदि,
और नाना नारी नरों देखते ही भागिदे॥
खलन से मुख फेरो मुख फेरो जग सेती,
अरु अविचार रूपी निशा मे से जागि दे।
औरहूँ अनेक भाँति औगुण सो बन जान,
ताहि माहि दौरि के विराग रूपी आगिदे॥१॥

(वैराग्य रत्नाकर)

वार्तिक-एक भूपाल ने एक विरागी महात्मा से कुछ मागने को कहा तब संत बोले-चार बातें दीजिये-१ वह पद कि जो संयोग वियोग रहित हो। २-जिसमे कामना का खिचाव तनाव न हो। ३-जो स्वयं प्रकाश नित्य शांत पद हो। ४-जो

निर्भय स्थान हो। भूपाल ने कहा ये चारो बातें हमारे पास नहीं है, संत ने कहा जो चार लक्षणों से युक्त मुक्त स्वरूप स्थिति है उसी का सेवन मैं करता हूँ। फिर क्या माँगना क्या चाहना—

दोहा

चाह गई चिंता मिटी, मनवाँ वे परवाह।
तिनको कछू न चाहिये, सब शाहन पति शाह॥

दोहा

प्राप्त वस्तु को त्यागते, अन प्रापत नहिं चाह।
सर्व शास्त्र तिन नरन को, वर वर कहते आह॥
मोक्ष विषय वैराग्य जो, बंधन विषय स्नेह।
यह सब ग्रंथन को मता, मन माने सु करेह॥
जिन गहि जीता काम को, सोइ ज्ञानी सोइ सिद्ध।
नहि तो थोथी बात है, घर घर करत असिद्ध॥
आशा धन तिय पुत्र की, जीवन आशा होय।
आशा स्वर्ग सिद्धि मुक्ति की, आशा बंधनलोय॥
आशा ते दुख और नहीं, आशा दुख का रूप।
जाकी आशा सब छूटिया, सो सुखिया सुख रूप॥

मृतक दशा ले आदि में, सोई करौं बखान।
सुख ब्रह्मा इन्द्रादि को, काग विष्टवत जान॥
काह मन्दिर संपति कहा, कहा त्रियन के भोग।
ये सबहीं क्षणभंग है, अचल समाधी योग॥

(वैराग्य शतक)

जीवन को परमार्थ पथ में शक्तिवान बनाने के हेतु उत्तम मध्यम कनिष्ठ सभी के लिये सरल मग विधान उपर्युक्त प्रकरण से किया गया है।

साखी

बोली ठोली मस्खरी, हाँसो खेल हराम।
मद माया औ स्त्री, नहि संतन के काम॥
घर में रहे तो भक्ति करु, ना तरु करु वैराग।
बैरागी बंधन करै, ताका बड़ा अभाग॥

(कबीर अमृत वाणी)

सार दर्शन साखी में कहा गया है।

वक्ता ज्ञानी जगत में, पंडित कवी अनन्त।
सत्य पदार्थं पारखी, विरला कोई संत॥
संत शिरोमणि है सोई, सारा सार विचार।
करि माया परपंच को, देवै ठोकर मार॥

सन्तो की सिद्धी यही, काटैं कर्म कलेश।
अति हित मीठे वचन कहि, देंय सत्य उपदेश ॥
नहि चन्दन नहि चन्द्रमा, नहिं फूलों की माल।
है प्रिय अस जस सन्त के, शीतल वचन रसाल ॥

पारखोक्त अर्थ सहित बीजक से लेकर वैराग्य शतक आदि पारखी सन्तो के उपदेशामृत अति रुचि से मनन करते हुये सार बोध में स्थिति दृढ़ कर लीजिये। भवयान सटीक मुक्तिद्वार सत्यनिष्ठा आदि ग्रन्थों में ग्रन्थकर्त्ता विस्तृत रूप से वैराग्य साधन वर्णन किये हैं इस हेतु यहाँ संक्षिप्त निर्णय किया गया है।

सत्य न्याय से पारख स्थिति समाधि पदावली

भजन

वही आज संक्षिप्त गाये हुये हैं।
सकल जो विवेकी बताये हुये हैं ॥टेक॥

किसी पारखी संत को शोध लीजै।
सेवा शरण से यथा बोध पीजै ॥
वैराग्य का मर्म पाये हुये हैं ॥१॥

नियम बैठ एकान्त स्थिर लहीजै ।
तन मन बचन वेग को शांत कीजै ॥
निरोधक रहै थीर भाये हुये हैं ॥२॥
आचर्ण शुद्धी से अंतस कि शुद्धी ।
द्रष्टा पना बोध लीजै सुबुद्धी ॥
अब शेष पारख रहाये हुये हैं ॥३॥
यदी दुक्ख से पार होना तुम्हें है ।
सकल देह भासों से न्यारा गुने है ॥
यथा नाव जल पै तिराये हुये हैं ॥४॥
यही बात कब्बीर साहेब कहे हैं ।
मनसा तरंगा को छेदन किये हैं ॥
वही पर्ख भवयान भाये हुये हैं ॥५॥

षष्ठ (छठा) नियम

चौपाई

बनि प्रतिकूल न गुरु के रहिये ।
पालन राय सदा दिल चहिये ६

अर्थ-पारख प्रभु बोधदाता गुरुवर के शरण जाकर भक्त संत वेष लेकर गुरुदेव के न्याय मनसानुसार ही विचरना कभी भी प्रतिकूल उल्टा विरोध न करना यही अंतस में उल्लास बढ़ाते रहना कि मैं जीवन पर्यन्त गुरु प्रसन्नता हेतु सिद्धांत रहस्य उपकार की स्मृति रख के कृतज्ञ रहूँगा, गुरु आज्ञा मस्तक पर लेकर सब शक्ति लगाय पालन करूँगा इसी में मेरा सर्वदा हित है।

पुष्टि-करण

एक राजा की सवारी निकली, वह गरीबों को यथोचित अन्न वस्त्र धन दान रूप में देते गया, एक अन्धा हाँथ पसारे बैठा था, नरेन्द्र को उसे देख बड़ी करुणा लगी ये अन्धा विचारा कहाँ कहाँ भटकता दुख उठाता होगा ऐसा सोच कर स्वयं भूपाल उसे अपने यहाँ उठवा ले गया और उसके आँख पर माड़ा का पर्दा था, औषधी द्वारा पर्दा नष्ट कर दिया उसे दिव्य ज्योति मिल गई, अपार हर्ष हुवा। तदनन्तर भूपाल ने उसे एक दिव्य हीरा

दिया, वह हीरा का मर्म नहीं जानता था और जौहरी द्वारा राजा ने उसका सारा भेद बता कर उस हीरे को भँजवा दिया वह लाखों की संपति पाकर जीवन भर के लिये दरिद्रता रहित सुखी हो गया।

सिद्धांत–गुरुदेव, जो मैं कौन हूँ जगत क्या है? संबंध और मोक्ष रहस्य बता कर जीवन बन्दि जड़ाध्यास से छुड़ा लेते हैं ऐसे बन्दि मोचन गुरुदेव धन्य है आपही भटकते डूबते बहते व्यथित जीवों को सन्मुख देखकर निःस्वार्थ द्रवित हो उठते हैं।

'अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलते येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥ १ ॥'

अज्ञान रूपी पटल से आच्छादित जीव अन्ध सदृश है हृदय चक्षु में बोध का अंजन शलाका लगाय जो भूल अज्ञान नष्ट कर दिये, दिव्य दृष्टि दे दिये, इसलिये ऐसे गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

कवित्त–

जैसे वायु बादल बिखेर के उड़ाय देत,
रवि तो अकाश माहिं सदाहि उद्योत है।
जैसे बैद आँख में शलाका मेलि शुद्ध करै,
पटल गये ते ज्यों की त्यों ही जोत है।
जैसे कोऊ सिकली गर दर्पण को शुद्ध करै,
मुख में न फेर कोऊ वहै वाको पोत है।
सुन्दर कहत भ्रम छिन में बिलाय जात,
साधु ही के संग ते स्वरूप ज्ञान होत है ॥

(सुन्दर वि०)

श्री कबीरदेव कहते हैं

'जाको सतगुरु ना मिला, व्याकुल दहुँ दिशि धाय।
आँखि न सूझै बावरा, घर जरे घूर बुताय ॥
ये मरजीव अमृत पीवा, क्या धँसि मरसि पतार।
गुरु की दया साधु की संगति, निकरि आव यहि द्वार ॥

गुरु सर्कार की स्वीकृति–नीर छीर का कर निबेरा। कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥ जो जड़ चेतन सम्बन्ध मोक्ष साधक बाधक समझ के सत्य सार ग्रहण करता है शुभ चरित्रवान है–यही-गुरु सर्कार की स्वीकृति है।

साखी

सतगुरु मिले जु सब मिले, ना तो मिला न कोय।
मात पिता सुत बान्धवा, ये तो घर घर होय॥
सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भाड़ा तोड़ि कर, रहे निराला होय॥
सतगुरु की मानै नहीं, अपनी कहै बनाय।
कहैं कबीर क्या कीजिये, और मता मन माय॥

वार्तिक

इस प्रकार विवेक करना चाहिये अज्ञान हालत में सदा से बोधक गुरु सन्त से उलटा ही चलते रहा सौभाग्य बस गुरुदेव के मिलने शरण लेने पर भी मनमानी चंचलता पूर्ति हेतु, उदण्ड स्वछन्द अभिमानी होकर उपकार भुला दिया जायगा तो फिर सद्बोध की रक्षा किस अधार से हो सकेगा, जहाँ का गुलाम था तहाँ ही फिर समा गया, 'ज्ञानी गुणी शूर कवि दाता, ई जो कहै बड़ हमहीं। जहाँ से उपजे तहाँ समाने छूटि गये सब तबहीं॥' अतएव स्थूल सूक्ष्म सर्व दृश्य प्रमाद त्याग कर अवश्य गुरु सर्कार महा प्रभु की आज्ञा पाल के

दास बन के संतत गुरुदेव से यही याचना चाहिये, जैसे मान सेवा पूज्यता अपने लिये चाहता हूँ, उसी प्रकार अन्तस शुद्धि हेतु मैं दूसरे को मान सेवा पूज्यता देऊँ। जैसे दूसरे को न्यायोक्त शिक्षित देखना चाहता हूँ, उसी प्रकार मैं स्वयं न्यायोक्त धारण पूर्ण होऊँ। जैसे स्वामी से मन की कराना चाहता हूँ, उसी प्रकार स्वामी साहेब के मनसा पर निछावर हो जाऊँ यथा—

भवयान विनय-विधान-शब्द ॥ ३ ॥

गुरु मुझे भक्ति शरण पद देवो ॥ टेक ॥

काया बीर कबीर गुरूवर, तिन सम और न देवो।
गहि कै शरण भरम सब त्यागौं, स्व स्वरूप रहि लेवों ॥१॥
बसन पात्र प्रभु योग्य भूम्मिका, स्वक्ष करौं मन तेवो।
जल प्रभाति अनुकूल क्रिया करि, दिल अविचार तजेवों ॥२॥
माफिक अशन वचन अनुकूलहि, कहि कहि मोद लहेवों।
सुनि गुरु बचन मनन निदिध्यासन, हिय में ताहि धरेवों ॥३॥
धरिकै चिन्ह गरे उर माहीं, करि बन्दन नित धेवों।
तजि छल दम्भ प्रीति उर साँची, चरण कमल रज सेवों ॥४॥
लहि संतोष करम मन बानी, इक्षा भूँख मिटेवो।
ममता अहं त्रास तजि जग की, ज्ञान ध्यान दिन ठेवों ॥५॥

जन्म अनन्त सबै कुछ कीन्हें, नहिं गुरु भक्ति मिलैवो।
भाग्य उदैं जो आजु मिलै सोइ, दिन २ अधिक रुचैवो ॥६॥
ह्वै निर्मान जोरि कर विनवों, यह रुचि पूर करैवो।
दास शरण अनुकूलहि करिये, भवनिधि सहज तरैवों ॥७॥

सार—सद्ग्रन्थ पड़े हैं, महात्मा खड़े हैं, आप का जीवन डाक गाड़ी से तेज चंचल है, जिस मन के बहकावे में आप पड़े हैं, वह बड़प्पन के गर्व रूपी मूसल से कूट रहा है, जब क्रोध की कामोंपभोग की प्रतिकूलता और अभाव की ज्वाला आपको प्रत्यक्ष झुलसित कर रही है तब इसी हेतु शीतल रूपी सद्गुरु सिद्धांत में आइये, पूर्वोक्त भक्ति मणि धारण कर सुशोभित होइये।

गुरु की सेवा आज्ञा पालानादि रूप कसौटी में जब जिज्ञासु जन खरा उतरेंगे तब उनका पूर्ण काम बनेगा, गुरु आज्ञा मानने प्रति कहा गया है।

सवैया—सुन्दर विलाश

ज्यों कपड़ा दरजी गहि ब्योंतत, काष्ठहि को बढ़ई घसियानै।
कंचन कूँ जु सुनार कसै पुनि लोहे क घाट लोहारहिं जानै॥
पाहन को कसि लेत सिलावट, पात्र कुम्हार के हाथ निपानै।
तैसहिं शिष्य कसैं गुरुदेव जु, सुन्दर दास तबै मनमानै॥

चौपाई

वन्दौ गुरु पद बारहिं बारा।
जासु कृपा छूटत संसारा॥
होत विमल मति मान बड़ाई।
मिटत विभेद कपट कुटिलाई॥

(विश्राम सागर)

वार्तिक–अविनाशी अमृत नित्य धर्म ज्ञान करके अखण्ड एकरस शाश्वत शुद्ध सत्य स्वरूप श्री सद्गुरुदेव जो एकान्तिक शांत सुख से पूर्ण हैं, प्रारब्ध जीवन जिनका हर्ष शोक हानि लाभ सुख दुख पथ में मिले धूल या तृण के समान तुच्छ है, मात्र निर्विषय स्वरूप ही का लक्ष्य है, ऐसे गुरुदेव बोध कर्त्ता को मैं काय बचन मन से शरण हो नमस्कार करता हूँ।

साखी

बोध भये प्रारब्धि तन, जब तक तेहि के पास।
उपकार मान्य संबंध में, स्वतः ठहरि तजि आश॥

(गुरु नि० ३४)

पद—आज्ञा गुरु की जहाँ जो कि होवै,

वही दास करने की उत्साह दिल में ।।टेक।।

है कल्याण सबका इसी में सुधारा ।

जो गुरुदेव रक्षक उन्ही के चरण में ।।१।।

नहीं कुछ भी हठता गुरु जी जिधर से ।

निजी सैन देकर निबाहें परन में ।।२।।

हमारा नहीं कुछ न हम हैं किसी के ।

चहौं छूटे सर्वस्व गुरु के बचन में ।।३।।

प्रारब्ध के दुक्ख सहना सबी को ।

तो हम क्यों न गुरुपद जुझैं जाके रन में ।।४।।

बड़ भाग हो प्रेम-प्रमुदित गुरू जी ।

हुवा काम पूरा जो अविचल सदन में ।।५।।

साखी—बीजक

समझाये समझै नहीं, पर हाथ आपु बिकाय ।
मैं खैंचत हौं आपको, चला सो यमपुर जाय ॥

चौपाई—पंचग्रन्थी

परख लहहु साहेब के शरना ।
स्वतः स्वभाव सबै दुख हरना ॥

वार्तिक–राग द्वेष कामना कुसंग कुचाल त्याग कर शांत निष्काम सेवा भक्ति वैराग्य विवेक युत वर्तने में सदा गुरुदेव प्रसन्न होते हैं ।

सप्तम-नियम

चौपाई

जो कुछ आपन मानि जहाँ लों।
सो सब इष्ट काहि दिल गुन लो ७

अर्थ—तन मन धन प्राणी पदार्थ मान विद्या सेवक पूज्यता गुरुता कहाँ तक कहा जाय सब जहाँ तक जो कुछ अहं मान्यता मन में दृढ़ होवै सो सब हम हमारी नहीं, सब पूज्य गुरुदेव का है, ऐसा हृदय में सदा विचार सामने रक्खे ॥७॥

पुष्टि-करण

यहाँ सद्गुरु कबीर साहेब और अन्य सन्तों के बचन पर ध्यान देकर अपना विचार परम पथ योग्य बनाइये।

साखी

मैं चितवत हौं तोहि को, तूँ चितवत कछु और।
लानत ऐसे चित्त पर, एक चित्त दुइ ठौर॥

॥ बीजक ॥

दृष्टांत

एक सज्जन ने एक संत से कहा मुझे भी अविनाशी तत्व का दर्शन कराइये, संत ने कहा पर्दा हटा कर शेष अविनाशी द्रष्टा ही रह जायेगा, पर्दा तन मन धन विद्या बुद्धि का प्रमाद है। प्रमाद मुझे दे दीजिये ! इतना श्रवण कर, वह निर्माण बन गया, नित्य सत्य पद में वह शांत हुवा।

उदाहरण

श्री राम का दूत श्री हनुमान जी को जान कर भरतजी की कहानी सुनिये—

चौपाई

दीन बंधु रघुपति कर किंकर।
सुनत भरत भेटें उठि सादर॥
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता।
नयन श्रवत जल पुलकित गाता॥
कपि तव दरश सकल दुख बीते।
मिले आजु मोहि राम सप्रीते॥
बार बार पूछी कुशलाता।
तो कह काह देउँ सुनु भ्राता॥

यह सन्देश सरिस जग माहीं।
करि विचार देखा कुछ नाहीं॥
नाहिं न उरिण तात मैं तोहीं।
अब प्रभु चरित सुनावहु मोहीं॥

सिद्धांत

साहेब दीन दयाल गुरु, सो पर और न कोय।
शरण आय यम से बचे, आवागमन न होय॥

(पंचग्रन्थी)

शिष्य ने पूछा–संसार में जमा क्या है? जिसके आधार पर समस्त मत पंथ ग्रन्थ सिद्धांत चल रहे हैं।

गुरुदेव उत्तर देते हैं–यह जीव जमा ही सबको जान मान कर ठहराकर भूल बस अपने कृतम को ही कर्त्तामान बैठा वास्तविक सर्व ज्ञाता जीव जमा ही सत्य है। सो प्रत्यक्ष ही नर जीव सबको खड़ा किये हैं।

प्रश्न–जीव जमा क्या है?

उत्तर–जीव जमा दृश्य नहीं द्रष्टा है, जड़ पाँच विषय नहीं चेतन है, तन मन प्राण जाग्रत

स्वप्न सुषुप्ति सर्व साक्ष्य ज्ञेय का साक्षी ज्ञाता स्वयं प्रकाश ज्ञान मात्र अखण्ड अनन्त अनादि सत्य है।

प्रश्न—अनेकों मतों में इस जीव जमा बिषयक यही निर्णय किया हैं या और कुछ ?

उत्तर—रामायण में ईश्वर का ही अंश, गीता में मुझ कृष्ण का अंश, खुदाई मत में खुदा का नूर और भी नाना मतों में सत्पुरुष का अंश अथवा राधा-स्वामी मत में सुरत बुन्द का तार प्रकाश, किन्तु वेदांत मत में इस जीव ही को सर्वोपर ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। अहं ब्रह्मास्मि मैं ब्रह्म हूँ ? यह श्रुति वाक्य माना गया है।

यथा कवित्त—

दीनता को त्यागि नर आपनो स्वरूप लखि,
तूँ तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी हैं।
अपने अज्ञान से जगत सब तूँ ही रचे,
सर्व को संहार करे आप अविनाशी है॥
मिथ्या परपंच देखि दुख जानि मानि हिये,
देवन को देव तूँ तो सब सुख राशी है।

जीव जग ईश होय माया प्रभा से तोही,
जैसे रज्जु साँप सीप रूप ह्वै प्रभासी है ॥

(विचार सागर)

कवित्त—

तू तो कुछ भूम्मि नाही आप तेज वायु नाहिं,
ब्योम पंच विषय नाहि सो तो भ्रम रूप है।
तू तो कछु इन्द्री अरु अंतःकरण नाहिं,
तीन गुण तू तो नाहि नातो छाहीं धूप है ॥
तू तो अहंकार नाहिं पुनि महातत्त्व नाहिं,
प्रकृति पुरुष नाहि तू तो स्व अनूप है।
सुन्दर विचारि ऐसे शिष्य सुँ कहत गुरू,
नाहीं नाहीं कहत रहै सोई तेरो रूप है ॥

(सु० वि०)

किन्तु इस प्रकार साध्य दृश्य का निषेध करके द्रष्टा स्वरूप का प्रतिपादन करने पर भी निःसन्देह चेतन स्वरूप का वेदांतीजन निर्णय न कर सके। इसलिये कि आगे चलकर जड़ चेतन द्रष्टा दृश्य द्वैत को मिथ्या बताय पुनः जगत ब्रह्म एकही सर्वत्र ब्याप्त बताय गुम सुम हो गये। सन्देह ही में स्थिति मान लिये देखिये सुन्दर दास जी स्वयं कह रहे हैं—

सवैया-

एकहिं ब्रह्म रह्यो भर पूर तो दूसर कौन बतावन हारो।
जो कोइ जीव करे परमान, तो जीव कहा कछु ब्रह्म से न्यारो॥
जो कहि जीव भयो जगदीश से, तौ रवि महि कहाँ को अंधारो।
सुन्दर मौन गही यह जानि के, कौनिउ भाँति न होय निरधारो॥

इस प्रकार ईश ब्रह्म और जड़वाद जो देह ही जीव मानता है, तीन सिद्धांत चल रहे हैं।'

प्रश्न-इनमें से कौन सत्य है ?

उत्तर—जो प्रत्यक्ष विवेक युक्त जड़ और चेतन के गुण धर्म सम्बन्ध और मोक्ष के यथार्थ ज्ञान रहित कथन है, वह सब असत्य है क्यों कि सत्य के लक्षणों से ही सत्य होता है, केवल बानी मात्र से सत्य नहीं, जब तक कि पृथ्वी जल अग्नि और वायु ये जड़ तथा अनन्त देहों के द्रष्टे चेतन जीव शाश्वत अजर अमर अविनाशी है, फिर विनाश रहित स्वयं ज्ञाता ही को समझने हेतु जड़ दृश्य के गुण धर्म जानकर तिससे पृथक् होना ही सत्य स्वदेश है। अनन्त जीव तो सदा से रहते ही आये हैं, और आगे सदा रहैगें ही। तब इनको

जड़ तत्वोंवत कारण कार्य अंश या बुन्द या छाया तथा पंचविषय देह रूप मानना कितना अज्ञान है? जब जड़ कारण कारज चार तत्व तिनके गुण पाँच विषय में कहीं ज्ञान मानन्दी नहीं शीत उष्ण कठिन कोमल शब्द रूप रस स्पर्श गंध सर्व पिण्ड ब्रह्मांड जड़ में चेतनता का अभाव है, तब अभाव से भाव रूप चेतन गुण पारख गुणी की उत्पत्ति कैसे होगी अतएव जड़ तत्वों से चेतन सर्वथा पृथक है अग्नि उष्ण कहने को दो वस्तु एक है इसी प्रकार जीव पारख चेतन कहने को दो वस्तु एक ज्ञान मात्र अखण्ड है। वह जड़ तत्वोंवत कारण कार्य नहीं होता। क्यों कि सदैव से वे संस्कार बस कर्म करते भोगते पृथक पृथक अनादि से ही भाव रूप ज्ञाते जीव जड़ध्यास रखने से देह धरते छोड़ते प्रत्यक्ष ही दिख रहे हैं। यही सत्यन्याय है यह पारख सिद्धांत सर्व गुणग्राही होकर सर्व मतों के कसर विकार छोड़ते हुये शुद्ध पारख रूप निराधार पारखी सन्त स्थित रहते हैं।

गुरुमहिमा दोहा

ब्रह्म ज्ञान गुरु ज्ञान से, बड़ो अन्तरो जान।
मूल विकारी ब्रह्म है, छुटकारी गुरु ज्ञान॥

१-कार्य रूप घड़ा घर आदि बनते बिगड़ते प्रवाह रूप से दिन रात बीज बृक्षादि की धारा अनादि से चली ही आरही है, कारण मूल भूत शीत उष्णा कठिन कोमल और पंच विषय रूप इंद्रिय गोचर पृथ्वी पमुद्र सूर्य चन्द्र वायु मण्डल वे कारण रूप से ही प्रत्यक्ष अनादि है।

२-उत्पति रहित को स्वतः अनादि कहते हैं। सर्व द्रष्टे जीव अखण्ड अनादि है—

दोहा

जो नाशे उत्पति सोई, देखि रह्यो सब काल।
कबहुँ न देख्यो नाश जेहि, उत्पति कौन सवाल॥

३-संस्कार की धारा मध्य में न बनने से जड़ चेतन की ग्रंथि भी प्रवाह रूप अनादि है।

४-कर्म करने भोगने की धारा भी प्रवाह अनादि है।

५—ब्रह्माण्ड में गर्मी सर्दी बर्षात की धारा भी प्रवाह अनादि है।

६—विजातीय भूल बस संबंध होने पर भी नर देह में स्वरूप बोध प्राप्त कर विवेक वैराग्य उपासना युक्त सदैव के लिये मुक्त हो सकता है। ये सब बातें युक्ति युक्त बारम्बार महाप्रभु बोधक सद्गुरुदेव समझा कर पारख दृष्टि दे दिये। तब इस सत्य सन्देश के पटतर में शिष्य के पास क्या है? जो देकर उरिण हो सके। बस यही कि अपने नश्वर तन मन धन वाणी से सब प्रकार सेवा आज्ञा पालन करते रहना इसमें भी शिष्य की ही एकरस स्थितिरूप महा लाभ की सिद्धि है। गुरुदेव से पारख बोध रूप महा लाभ प्राप्त कर श्री पूरण साहेब वन्दना करते हैं—वह संतत स्मरणीय है।

छन्द—

तुम होहु जाहि दयाल सकलो जाल ताकर नाशि हो।
तुम बिना न मिटि हैं काल सुकृत पाल परख प्रकाशि हो ॥१॥

क्या करौं मैं स्तुति आज सद्गुरु कियो बहुत उपकार हो।
तुम बन्दी छोर कबीर साहेब मेटिया भव भार हो ॥२
सब करौं निछावर तोहिं परम गुरु तन-मन-धन सब खेह हो।
मम सुरति राखो चरण में यह नाशमान है देह हो ॥३
पारख पद को पाय साहेब मिटि गयो सब भास हो।
ब्रह्म जक्त अनेक बाणी रही न काहु कि आश हो ॥४

सोरठा

शरण शरण गुरु राय, बहुत सुखी मोको कियो।
पूरण बन्दत पाँय, सब अपराध क्षमा करो ॥
मैं नालायक प्रश्न कियो, तुम समझायो मोहि।
मोसे बोलत ना बन्यो, क्षमा करो प्रभु सोहि ॥

श्रीराम रहस साहेब जी के बचन से बोधक रक्षक गुरुदेव के चरणों में सर्वतो भाव अर्पण होकर सदा कृतज्ञ रहने का हेतु सुनिये—

साखी

बहे बहाये जात थे, भवसार के माहिं।
दया करी परखाय सब, शरणाये गहि बाहिं ॥
वारौं तन मन धन सबै, पद परखावन हार।
युग अनन्त जो पचिमरै, बिनु गुरु नहिं निस्तार ॥

चौपाई

सन्मुख प्रभु के आज्ञाकारी। पारख गुरु तेई अधिकारी

प्रत्यक्ष देव संत गुरु जान । मान महातम भरम भुलान
जामुख निर्णय लखे विशेष । ते गुरुसम न और कोइलेख
साहेबदास शिष्य सो होय । भक्ति तेई अधिकारी सोय
और भी श्री कबीर साहेब के साखी ग्रंथ में कहा गया है–

साखी

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
शीश दिये जो गुरु मिलैं, तो भी सस्ता जान ॥
कबीर गुरु सबको चहै, गुरु को चहै न कोय ।
जबलौं आश शरीर की, तब लगि दास न होय ॥
खेत बिगारेउ खरतुआ, सभा बिगारी कूर ।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर ॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दम्भ विचार ।
उदर भरन के कारने, जन्म गवायें सार ॥
भाव बिना नहिं भक्ति जग, भक्ति बिना नहिं भाव ।
भक्ति भाव इक रूप है, दोऊ एक स्वभाव ॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव ।
कहैं कबीर वह क्यों मिले, निहकामी निज देव ॥

भक्ति महल बहु ऊँच है, दूरहिं ते दरशाय।
जो कोइ जन भक्ती करै, शोभा बरनि न जाय॥
(कबीर वचनामृत)

वार्तिक

एक बड़े साधनिक एकान्तवासी रहस्यवान प्रसिद्ध महात्मा थे, उनके प्रभाव से प्रभावित बहुत से नर-नारी भक्ति-भाव से चल रहे थे अनेकों सन्त अनेको ब्रह्मचारी गुरुदेव के पास आया जाया करते थे, सबको वहाँ आश्रय मिलता था, सेवक गण सब मिलि के तन मन धन से सत्कार करके वहाँ सन्तों के सत्संग निर्णय श्रवण के लिये आते जाते रहते। उस सन्त दर्बार में भक्ति धर्म का नाता सम्बन्ध खूब जोरों से चल रहा था। एक दिन दूर देश के सन्त आये, दर्श पर्श करने के तद-नन्तर बोले, हे सन्त राज एकान्तवासी आप बड़े श्रेष्ठ हैं आपकी बुद्धि प्रभा बड़ी ही सुन्दर एवं अद्भुत है। जो इस ढंग से आप सबको रक्षा कर रहे हैं। एकान्तवासी सन्त बड़ी नम्रता से बोले—मेरा निश्चय है। १—आप सन्त गुरु न मिलते तो मैं

दो कौड़ी का भी न पूछा जाता। २-बाहरी पूज्यता प्रभाव आकर्षण का आधार हम हमारा नहीं। गुरु का बोध गुरु रहस्य गुरु भूमिका पर स्थिरता ही कारण है। जैसे थानेदार जिसे हथकड़ी बेड़ी डाल कर चालान करने जाता है उसी के घर में पूरी बनवा के खाता है इतनी हुकूमत की प्रबलता! जब वही सरकारी नौकरी का पद त्याग देता है तब उससे कोई भय नहीं मानता, तो वहाँ सकामतायुक्त मार काट त्रास देकर राज्य सत्ता है, यहाँ समता क्षमाशील और निष्काम की सत्ता का जोर है। पारख स्थित गुरुदेव युक्ति लगाय न चेताते, शरण में न लगाते, भेष विवेक की कृपा न करते, तो कभी यह अज्ञानी जीव जो गुरुपद का दुश्मन था दूर से ही विरोध मानता था, इस प्रकार का साधु सज्जन नहीं हो पाता। इसलिये हमे स्मृति रहती है—

'उपकारिन में उपकार गुरु, दानिन में गुरु दान।
रक्षक में रक्षक गुरू, गुरु सम अन्य न आन॥'

अनुभव विद्या देय के, सबसों कीन्ह उदास।
निज ही दीन्ह निवास गुरु, तोड़ि अन्य की आस ॥

(अपना बोध)

चौपाई

जो निज खाल खैंचि गुरु पनहीं।
तदपि उरिण नहिं मन अस गुनहीं ॥

अतएव मुझमें जो उक्ति युक्ति गुण प्रभाव आकर्षण है वह मेरा नहीं, गुरुदेव की दृष्टि और रहस्य भूमिका पर ठहरने की यह सब महिमा है। क्या हमहीं आगे हमसे बढ़ बढ़ के नामी गुण ग्रामी पुज्यपाद सद्गुरु कबीरदेव आदि तिनके पश्चात होते हुये अनेकों रहस्यज्ञान सन्त आजतक आगे भी होते ही रहेंगे, मुझ एक की क्या गिनती। कोई भी गुरुबोध रहस्य भूमिका पर आरूढ़ होकर तरन तारन हाना स्वभाविक है। इसका प्रमाण यह है आज ही गुरुबोध और विवेक वैराग्य रहस्य लक्षण छोड़ दिया जाय बस आज ही सारा प्रभाव समाप्त! अतएव सद्गुरु से यही मागना चाहिये! हे गुरुदेव मैं आप से तन मन धन अधिकार सुख भोग मान

बड़ाई कुछ नहीं माँगता, इनको तो बहुबार पा चुका हूँ, इनसे दुखी होकर मात्र मैं स्वतः गुरुपद चाहता हूँ, जैसे आप कोई भी स्वार्थ सुख की मनुष्यों से अपेक्षा न रख के निःस्वार्थ शिक्षा देते हैं तैसे मेरा भी आपसे वही निवेदन है कि मुझे भी निःस्वार्थ बनाय मात्र स्वरूप स्थिति जो निष्काम पूर्ण है उसे ही चाहूँ माँगू अर्थात् आप से आपका प्रिय सिद्धांत ही चाहता हूँ ! जो सर्व कामना वर्जित है। स्वरूप स्थिति की कामना, अन्य कामनाओं को भस्म करने हेतु प्रबल अनल है। अतएव वह कामना नहीं कही जाती।

दोहा

सो इच्छा इच्छा नहीं, वह तो इच्छा काट।
वैराग्य भक्ति स्थिति ठहरि, छोड़ि जो मन की बाट ॥

श्रेय - शुभ - संकल्प

नित हम सबों का सद्गुरु के पद कमल में प्रीति हो।
प्रभु के परख सिद्धांत में निश्चय अडिग शुभ रीति हो ॥
पाँचों विषय के प्रेम जैसा सहना गुरुपद धीति हो।
हानि तो निज पद विमुखता लाभ नवधा नीति हो ॥१॥

चैतन्य बोध प्रकाश सन्मुख ज्ञान रूप अखण्ड हो।
निर्विकार निराश निर्मम ज्ञान धाम प्रचण्ड हो॥
अध्यास कृत बंधन परखि सुख भोग ठेलि स्व मुक्त हो।
काम क्रोध व लोभ मद सुख भास में नहिं लक्ष हो॥२॥
सब के गुणौं का मान्य हो सादर हृदय गुण ग्राह्य हो।
निज दोष दुर्गुण त्याज्य हो पर हानि भाव न राज्य हो॥
दुष्कृत जनों से दूरि हो पर दोष चर्चा त्यक्त हो।
सन्तोष कष्ट सहिष्णु तप गहि शान्ति पथ अनुरक्ति हो॥३॥
सेवा व साधन बोध निशिदिन सद्गुणौं का चाव हो।
जिसके किये बिन हानि निज कर्तव्य वहि सरसाव हो॥
काँटा गड़ाय निकाल पुनि करिये भला क्या ताव हो।
शम दम क्षमा सब साधु गुन निर्मान शांत स्वभाव हो॥४॥
प्रत्येक क्षण अद्भुद अनोखा जानि मानि उदार हो।
प्रारब्ध वश कौनिउ समय नहिं जो न गुरु पद प्यार हो॥
संयम सुचित्त विराग पथ प्रिय वृत्ति नित निरधार हो।
नित्य प्रेम सुसंग से सपनेउ कुसंग न धार हो॥५॥
चित शांत हित सब मानरखि सेवा करें हम नम्र हो।
लखि काल जाल प्रपंच तजि शुभ शील युत सद्धर्म हो॥
कुछ ना बने किहुँ से यदी तो भी क्षमा बल पर्म हो।
हानि लाभ व सुक्ख दुख में भी कभी ना भर्म हो॥६॥
सब स्वयं कर्तव्य फल इस हेतु निज कर्तव्य हो।
कोई करे या ना करे किंचित न इसका लक्ष हो॥

सब की सहैं सब गुन लहैं फिर भी न वड़ मद पक्ष हो।
यहि प्रेम जन की है विनय गुरुदेव दो वल रक्ष हो ॥७॥
यहि अष्टकौ दलि कष्टकौ जन्मादि भव भय ध्वंस हो।
जे कण्ठ मणि हृदि धारिहैं तेई सदा शुभ हंस हो ॥
प्रारब्ध भोग समाप्त कर निरधार अविचल मुक्त हो।
इह जैसे कथन तैसहिं रमण सब काल जाल विलुप्त हो ॥८॥

दोहा

यहि अष्टक जो धारही, पावहिं फल तत्काल।
हृदय शांत निर्भ्रान्त ह्वै, लहि रहि स्वपद विशाल ॥

अष्टम-नियम

चौपाई

गुरु उपकार मानि दिल धरई।
गुरु की निन्दा कबहुँ न करई ॥८
धर्ममयी अन्तस यहि भाँती।
मारग विघ्न न ताहि भेंटाती ॥९

अर्थ–गुरुदेव जो कि आप समता क्षमा

उदारता पूर्वक शिष्य का चित्त खैंच कर अपने नित्य शुद्ध चैतन्य का स्पष्ट बोध और तिसकी एकरस स्वरूप स्थिति तथा रक्षक रहस्यों का स्पष्ट समझौता करके जो दिव्य दृष्टि दे दिये हैं, वह उपकार आपका अनन्त है, ऐसा शिष्य जनों का अतःकरण साक्षी है तब फिर गुरुवर देव की त्रुटि चर्चा करे या अनन्त उपकार का हर्षयुत गायन करे! जो गुरुदेव के किये अनन्त उपकार को भुलाके निन्दा करता है वह मानो जोंक के समान दूध न खैंचकर खून भक्षण करके अपनी सदा के लिये हानि करता है। जो खानि बानी अष्ट मद के जड़ाध्यासी हैं वे गुरुपद नहीं, जो विवेक वैराग्ययुक्त बोध दाता हैं उनमें त्रुटि ही क्या है? जो आवश्यक प्रारब्ध देह का व्यवहार देख कर निन्दा करता है वह स्वयं भूल वस परमार्थ दृष्टि रहित है। बोधक महाप्रभु की सदा स्तुति करनी चाहिये। जैसे सन्ध्यापाठ विनय विधान आदि गुरु उपकार मानकर बर्तने वाले का अन्तस धर्म

मर्यादा से पूर्ण हो जाता है। जिससे उसके परमार्थ पथ में विघ्न करने वाले कुसंग कुभाव कुमार्ग आकर्षण नहीं कर सकते ! यही महान पुनीत फल गुरु उपकार मानने पर प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

पुष्टि-करण

एक मनुष्य घर का मार्ग भूलकर घोर जंगल में जा भटका। चलते चलते आगे घोर आपदा में वह फँस गया, देखता है कि सामने तो सिंह दहाड़ता चला आ रहा है पीछे भागना चाहता है तो उन्मत्त हाथी-पटकने के लिय द्रुत गति से आ रहा है, दहिने ओर भालू बायें ओर विषधर सर्प दिखायी दिया, होस हवाश उड़ गये ! हाय कहाँ जाऊँ। पास ही एक अंधकूप दिखाई दिया, उसमें लटकी बौड़ियों लतावों के सहारे वह कूप में लटक गया, कूप के तली में कई सर्प विषधर दिखाई दिये, पुनः ऊपर देखने पर जिस लतावों को वह पकड़े है उसके जड़ को दो चूहे काट रहे हैं, फैली लता पुंज को हाथी गाल में डाल रहा है। देखते देखते बौड़ी

का आधार समाप्त हुवा वह अंध कूप में गिर के अनन्तों दुखों का अनुभव करने लगा। और त्राहि त्राहि अर्तनाद कर ही रहा था कि एक महाराज वीर धीर फौज सहित वहाँ आ निकला! उसी कूप गत दुखी का आर्तनाद श्रवण कर समस्त विघ्न वाधावों को चण में दूर कर दिया और उस पतित मनुष्य को रस्सी का सहारा देकर निकाल लिया और बहुत सम्मान करके निकटवर्ती बना लिया, उसके विनम्र शील स्वभाव से भूपाल प्रसन्न होकर राज मंत्री का पद दिया, धीरे धीरे राज्याधिकार सौंप कर उसे अपने समान कर दिया।

सिद्धांत–यह अविनाशी चेतन जीव अपनी स्थिति रूपी घर भूमि को भूल कर संसार जंगल विषयक तन पथ में भटकते हुये देखता है कि आगे वृद्धावस्था और मृत्यु रूप सिंह है, पीछे बाल युवावस्था की प्रचगड मानसिक खैंच उन्मत हाथी है, दहिने बायें भालू सर्प के सदृश भयंकर कुसंग लत आदत ब्यसन है, आयु रूपी बोड़ी के

आधार में गृहस्थाश्रम रूपी कूये में लटक कर वह अपना छुटकारा देखने लगता है इतने में पुनः देखता है तो दिन रात रूपी दो चूहे आयु को शीघ्रता से समाप्त करते जा रहे हैं। वर्ष रूपी हाथी तो बड़े वेग से शरीर यात्रा के समय को चर्वण कर रहा है। गृहस्थाश्रम मोह माया के शृंखला से जकड़ा हुआ उसमें काम क्रोध मद मोह इर्षा राग द्वेष जड़ासक्ति आशा तृष्णा रूपी सर्प बड़े विषधर हैं। इनमें पतन हो होकर कोटि प्रकार जीव असह्य पीड़ा से छुटकारा हेतु त्राहि त्राहि कर रहा है इतने में गुरुवर रूप नरेन्द्र आ जाते हैं और जीव को आपत्ति ग्रस्त से पृथक कर लेते हैं। आप कैसे हैं– यथा– दश लुटेरे एक धनिक को लूट के मार पीट द्वारा अनन्य त्रास दे रहे हों, तब तक कोई सिपाही आकर दशों को मार भगाय उसे बचा ले। तैसे गुरुदेव महानबीर हैं, जैसे महादरिद्र को कोई नरेन्द्र अपनाय अपने समान कर लेवे। धन्य !

चौपाई

सचिव विराग विवेक नरेशू ।
विपिन सुहावन पावन देशू ॥
भट यम नियम शैल रज धानी ।
शान्ति सुमति शुचि सुन्दरि रानी ॥

दोहा

जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुवाल ।
करत अकण्टक राज्यपुर, सुख संपदा सुकाल ॥

॥ रामायण ॥

शब्द

अरिदल बीच समर गुरु आये,
हैं रणधीर जो शूर लखाये ॥टेक॥
विवेक विराग शस्त्र जो लीन्हे,
नैराश्य वीरता छाये ।
शम दम मन निग्रह से पूरण,
बल जेहि अमित पार नहिं गाये ॥ १ ॥

पूरा शब्द भवयान भक्ति भरण का प्रथम शब्द देखिये

पूर्वोक्त लक्षणों युक्त श्री सद्गुरु आ गये और इतने भयंकर आपदा ग्रसित जीव को उसके

स्वरूप की स्मृति रूपी पुष्ट रस्सी का सहारा देकर उस मिथ्या मोह माया से खैंच के समस्त काल रूपी मन वेगों को अपने श्रेष्ठ आचरण रूपी सैन्य शक्ति देकर अनगन्य आपदावों से बचाय आप अभय बोध रूपी शरण में बैठार लिये, जीवन पर्यन्त संत भक्त विराग ज्ञान के लक्षणों को पुष्ट करके निर्वासनिक अचल पारख स्वपद में स्थित कर दिये। बलिहारी गुरुदेव की !

॥ गुरुपद विनयावली ॥

श्री गुरु बड़े उदार बोध दीन पीन जू।
हम बड़े पतित कुबुद्धि नाहि चीन्ह लीन जू ॥
तुम्हें बहुत कुवाक्य औ कुचाल भाल घात से।
हाय हाय कष्ट दीन ज्यों कुबाल मात से ॥१
का करौं उपाय क्या विवश कु चाह धार में।
बहा कियों मनोमयी अपार प्यार प्यार में ॥
मूल को न सींचता हूँ वृक्ष को हरा चहूँ।
केहरी को वेष चाल स्यार से बढ़ा चहूँ ॥२
गोड़ को तो तोड़ता हुँ शैर को करा चहूँ।
स्वरूप मूल भूलता हूँ दृष्य में मिला चहूँ ॥

आग को बुझावता हूँ डाल डाल घृत्त को ।
मानिनी को चाहता हूँ पंच भोग चित्त को ॥३

चाह भोग बीज बृत्त संस्कार देह को ।
बार बार जन्म मर्ण ताप रूप देह को ॥

स्वबोध निष्ठ देवजी अपार प्यार घर्ख दे ।
चलत उटत पुष्ट बाल-प्रेम धन्य हर्ष दे ॥४

स्ववश मुक्त शांत लाभ जीव पाय पायगो ।
स्वरूप ज्ञान जान के जो जान ही रहायगो ॥

दृश्य भास आश बोझ पर्खि डाल डाल के ।
परख भूप रूप शांत देव पाल पाल के ॥५

दोहा

बोधक रत्तक प्रभु सुयश, शील त्तमा उपकार ।
गावत पावत परम पद, जन मन के आधार ॥

निर्विघ्न पद प्राप्ति, गुरु महिमा-गजल

गुरुदेव की महिमा बड़ी, निज में समो गये ।
मन काल की महिमा घटी, दुख द्वन्द खो गये ॥टे०

सुख भोग बाढ़ ग्रासती, हम भाग भाग के ।
हृदय विराग भाव ले, निजमें समो गये ॥१

सब जीव अपना जानिके, पर घात क्यों करे ।
सब छूटना पिछान के, निज में समो गये ॥२

प्रारब्ध भोग चल रहा, तब तक विवेक से ।
सार शब्द भाव ले, निज में समो गये ॥३

पाना रहा सो पा लिया, अवशेष कुछ नहीं ।
अवशेष पर्व प्रेम ही, निज में समो गये ॥४

कवित्त–

काम बस युवती को चक्र चले श्वान गति,
क्रोध बस हानि पर घात के प्रवाह में ।
लोभ बस छल बल ज्वाला में जलत हाय,
अष्ट मद माड़ा कछु सूझे न अथाह में ॥
जोई जोई सुख बस भावना प्रबल होय,
सोई सब विघ्न रूप हृदय कुदाह में ।
गुरुदेव धन्य उपकारी निज पद खैंचि,
निर्विघ्न राजत स्वदेश निर्वाह में ॥१॥

वार्तिक–रामायण में शुभ गुणों का रथ वर्णन करते हुये अन्त में विभीषण से श्रीरामजी ने कहा–

सखा धर्म मय अस रथ जाके ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

दोहा

महा घोर संसार रिपु, जीति सकै सो बीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥
(लंकाकांड)

कादर कादर सब बने, जहँ तक मन के देश ।
ताहि नाशि न्यारा किये, दै पारख उपदेश ॥
(मुक्तिद्वार)

उपकार दातावों के उपकार को न भुलाना ही धर्म सार है, सबसे बड़ा उपकार उन्हीं का है, जो सत्यबोध दे सत्यमार्ग में लगा दिये ।

साखी

सब ते साँचा भला, जो साँचा दिल होय ।
साँच बिना सुख नाहि ना, कोटि करै जो कोय ॥

अतएव—

दोहा

सत्यबोध सद्गुरु दिये, दास कृतारथ कीन ।
तन मन धन वारौं सबै, ह्वै अति दीन अधीन ॥
(निर्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन)

वार्तिक—क्या कर्त्ता देवादि वानी दल दल से निकलने की आशा थी ? क्या काम क्रोध मद-मत्सरादि शत्रुओं से छूटने की और कुसंग कुल परिवार की कठिन बेंड़ी छूट सकती थी, क्या सर्व दृश्य से लक्ष घूम सकता था ? बड़ो अपार कृपामृत वर्षा हुई गुरुदेव की !

'धनि गुरुदेव भरम दुख नाश्यो ॥'
(देखिये भवयान ज. चे. नि. का ४७ वाँ शब्द)

भवयान शब्द १६, भक्ति भरण

जइये गुरु पास विमल तन मन से ॥ टेक ॥
कर मृत्तिका जल शौच सुधारौ,
पट तन शुद्ध करौ नित जल से ॥ १ ॥
प्रिय बानी निर्छल निर्मानै,
शुद्ध ध्येय रखि बिचलि न चल से ॥ २ ॥
मन प्रतिकूल सहन करि हित से,
सेय निदेश कुमग तजि दिल से ॥ ३ ॥
तन असार रुचि ताहि दुखद लखि,
करि परियत्न स्वतः हित सुख से ॥ ४ ॥

दोहा

इन सबको धारण किहे, कबहुँ न गाँसे विघ्न ।
सदा रहे निज पद विषे, गुरू कृपा निर्विघ्न ॥

१—जो सर्व प्रेम का मूल है, जिसके हेतु से समस्त प्रेम सुख लाभ पुरुषार्थ की सिद्धि होती है उस प्रेम मूल स्वयं साक्षी देव को बताये हैं ।

२—जो शत्रु मित्र प्रेमी अप्रेमी सर्व में समता क्षमा निराशता युक्त असंग रहने को सिखाये हैं ।

३—जो शरीर रक्षा व्यवहार को शुद्धता पूर्वक लेते हुये जीवन्मुक्त दशा दृढ़ाये हैं जो अपनी

सूक्ष्म स्थूल हन्ता को मर्दन किये हैं। शिष्यों को निर्मल पारख में शांत दृढ़ाये हैं।

४—जो मन बुद्धि शरीर तत्व विषय सर्व जड़ दृश्य से परे अविनाशी जान को जनाये हैं।

५—जो इन्द्रिय मन के दुरासक्ति से छुड़ाये हैं, ऐसे अनन्त उपकारी गुरुदेव की मैं निरन्तर सेवा शरण उपासना करता हूँ।

नव-नियम

सावधान हो इष्ट सदाही। अपने काम में पूर रहाही॥१०॥

अर्थ—जो गुरुजन बहुतों को शिक्षा देकर निज आधार से सबका हित करते हों, वे इष्ट देव पूज्य हैं, उनका भी यह कर्तव्य होता है कि वे सदा सर्वदा, मन तन प्राणी पदार्थ विषय पिंड ब्रह्मांड भास अध्यास अनुमान कल्पना यहाँ तक कि अपने स्वरूप पारख के अतिरिक्त जो कुछ भास हो सबसे

सजग सतर्क रह के किसी आशा बासा में न भूलें। अपनी सर्वोपरि पारख स्थिति के साधन विवेक वैराग्य उपासना अंग को पूर्ण करते हुये जीवन यात्रा व्यतीत करें।

साखी

जैसी कहै करै जो तैसी, राग द्वेष निरुवारे।
तामें घटे बढ़े रतियो नाहीं, यहि विधि आप सँवारे॥

(बीजक)

पुष्टि-करण

सत्य निर्णय से जो सिद्धांत और रहस्य कल्याणकारी है उसी को ग्रहण करने कराने हेतु गुरु शिष्य दोनों के शुद्ध रहस्य वर्णन किये गये हैं, गुरुपदारूढ़ पुरुषोत्तम शिक्षक सन्त सद्गुरु देव गुरुपद चरित्र और गुरुपद प्रेमियों के सुधार हित सु चरित्र से पूर्ण जो नौ नियमों को यहाँ वर्णन किये हैं वह कैसा अद्भुद शांत प्रद सरल सरस निर्विकारी पथ है कि जिसे ग्रहण करते हो जीवन का सारा उद्देश्य लक्ष्य परीश्रम सफली भूत हो जाता है। अन्य प्रसंगों में कइयों प्रकार से सद्ग्रंथों

में सन्त चरित्र का कथन हुवा है, वह सब समय समय के बहु व्यंजन समान सर्व ग्राह्य है।

[अथ गुरु निर्णय द्वारा संत गुरु, जिज्ञासु सर्व कल्याणार्थियों के पुनः रहस्य दर्शन]

साखी-गुरुनिर्णय

निज निज धर्म पालन करैं, गुरु शिष्य जो दोउ।
श्रेष्ठ समझ औ धर्म यहि, स्वार्थ कामना धोउ ॥११७

रहित कामना मोक्ष है, त्रिवश कामना कीन।
सन्तोष क्षमा दाया लिहे, तनकी रक्षा लीन ॥११८

जो सबहिन को हित चहै, मान कामना धूल।
तुकार कटुक दिल से तजे, पर अघ मान न फूल ॥११९

आप उपाधिन त्यागि कै, उपाधिवान तजि संग।
निज कारज सब छिन रमै, छोड़ि सकल मन रंग ॥१२०

क्षमिय क्षमावन भावतजि, रखि सुखिया निरबंध।
बिबश करै नहि बिबश ह्वै, जानि सबै दुख धंध ॥१२१

सत्य सरल समता लहै, साधु नीति को राखि।
स्वरूप लक्ष से जानि तेहि, देह भाव नहिं आँखि ॥१२२

सावधानी सवैया

काम को मारि के धर्म सँभारहि, त्याग किये सब भोग जगै।
सत्य सहायक भर्म नशावन, आप स्वरूप के ज्ञान पगै ॥
जग पार बसैं सब लोभ तजे, नहिं द्वेषके मारग जाय लगैं।
मन राखि सदा अपने बशि में, कहुँ लागि न जाय व जग्त मगै ॥१

(भवयान)

दोहा

परख साधु गुरु परख कबीर, पारख पद पहिचान।
पारख के परताप से, सब भ्रम जाला मान॥
पारख में जो हो गयो थीरा। तिन पायो गुरु सत्त कबीरा॥
(निर्णय सार)

नौ रहस्य धारण का फल वर्णन

* दोहा *

स्ववश शक्ति अपने बने,
प्राप्त साज मग केर।
सिद्धि होय कल्याण पद,
करि परिशर्म न देर॥१

टीका—मन इन्द्री प्राणी पंच विषय काम क्रोध मद मत्सर राग द्वेष आसक्ति के नर्क धारा में—

पड़े जीव बूड़े उतराहीं। एकौ पल सुपास जहँ नाहीं॥
करि विचार देखहु मन माहीं। पराधीन सुख सपनेहुँ नाहीं॥

यह जीव मन के कारण परवश नाना नाच नाच रहा है—

चौपाई

काम क्रोध मद मत्सर आदी । जहँ है तहँ के सुख सब वादी ॥

(विश्राम०)

ऐसे मानसिक रोग रूपी शत्रुवों के फन्दे से छूट कर पूर्ण विजयी बन जावोगे मन वेग से बच कर स्ववश स्वतंत्र रहने की महान शक्ति आपमें आ जायेगी प्रारब्ध देह पर्यन्त परमार्थ पथ के साधक समस्त सद्गुण चारों ओर से आ मिलेंगे, पुनः परम पारख में स्थिति पुष्ट होकर आप मुक्त शांत हो जायेंगे, इस प्रकार आपका परम हित पथ पूर्ण हो जायेगा, इसलिये आप इन नव नियमों के पालन में परिश्रम कीजिये विलम्ब की कोइ आवश्यकता नहीं । क्योंकि—

हानि लाभ निज जीव की, बंधन छूटन केरि ।
ताहि छोड़ि नहिं हानि कछु, लाभ न कतहूँ हेरि ॥
धन तरुणी सुत मित्र जो, धिय नाती कुल जाति ।
बाँधव जन प्रभुता सबै, नहिं इनसे कुशलाति ॥
मिथ्या भरमें जीव सब, हर्ष शोक में बूड़ि ।
समय अमूल्य खराब करि, छोड़ि काज दुख ढूँढ़ि ॥

मन की उलटी रीति तजि, निज स्वरूप लखि सूध ।
गुप्त भेद गुरु को लखौ, नहि कँटक मग रूध ॥
बुद्धिमान बलवान सोइ, शूर धनी सोइ साधु ।
सोइ दानी पुरुषारथी, सबन हितू दुख बाधु ॥
जो न करै जग में कोई, आदि अंत जेहि मद्धि ।
मन रुज दुख व्यापै नहीं, सोई करो जिव सद्धि ॥

बीजक साखी

चुम्बक लोहे प्रीति है, लोहे लेत उठाय ।
ऐसा शब्द कबीर का, काल से लेत छुड़ाय ॥
मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय ।
ऐसा होय के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय ॥

मुक्तीद्वार साखी

मन देखत मन लीन नहि, निज शक्ती लौटारि ।
शक्ती जब पावै नहीं, तब सो चीण निहारि ॥
करत करत अभ्यास यहि, मन निरशन होय जाय ।
अंधकार आशक्ति मिटि, जीव स्ववश ठहराय ॥
जो जानै यहि भेद को, भरम हानि पद प्राप्ति ।
सफल तबै पुरुषार्थ सब, उलटा मार्ग तजाप्ति ॥

वार्तिक–जितना ही इस ग्रन्थ को पठन मनन तदनुसार आचरण में ध्यान दिया जायेगा उतना ही मनुष्य शीघ्र अनन्त शांत पद में बिराजेगा।

गुरुपद इष्ट और सन्त सज्जन समाज महिमा

चौपाई

जो प्रारब्धि भोग में ऐसे। बर्तत सदा बेगार हो जैसे।
जो क्रियमाण वीज दहि ऐसे। मानो प्रबल अनल तृण जैसे॥
जो संचित कहँ मूल उखारे। सुखाध्यास हनि स्वपद सदारे॥
जेहि रहस्य निश्चय अस भारी। करत सकल साधन नहिं हारी॥
यथा जीव निज जीवहि हेतू। करत प्रयत्न न थाकत केतू॥
जेहि जीवन परमारथ जीवन। सहज यथा विषयी विष लीवन॥
जेहि निवास नित चेतन भूमी। यथा अज्ञ जड़ तन सुख भूमी॥
जाको अज्ञ भेद नहिं जानै। जानत गुरुहि कृपा गुरु मानै॥
गुरुवर कृपा भई अब ऐसे। मनोराज्य भूप दै जैसे॥

दोहा

आगे पीछे मार्ग पै, चलत ध्येय इक राखि।
हिय हारत नहिं मुदित मन, संत गुरू बल भाखि॥

कवित्त–

कितने तो ग्रंथ पढ़ि अर्थ भाव धारि हिय,
सेवा भक्ति करि करि बोध में रमतु है।

कितने तो तन मन धन अर्पि सेइ सेइ,
होय निर्माण निज पारख लहतु है ॥
कितने तो प्रेमिन से पारख विधान करैं,
देत उपदेश हित मद न धरतु है ।
कितने तो विरति प्रबल मन शांत हेतु,
जाय के एकांत शम शम शम ही रहतु है ॥१॥

एक एक अंग परमारथ को आगे राखि,
और सब अंगन को पुष्टि हित हेतु से ।
करत प्रयत्न मानो गृही कार वार सब,
समय समय सब साधन को लेतु से ॥
उत धन मान नारी सुख भोग पंच हित,
इत निर्चाह निर्माण पद लेतु से ।
यहि विधि बोध भक्ति विरति त्रिसाधन से,
शोभत समाज धन्य गुरुपद चेतु से ॥२॥

सवैया

जो महिमा सत भूमि सुशोभित ता रवि कूँ किमि दीप दिखावै ।
जो सब लाख करोड़ दै पालत सो किमि कौड़ी के लोभ में आवै ॥
जो जड़ भास अध्यास परे रहि, ताहि भला किमि कौन मोहावै ।
जो अस साहेब आपनि ओर से जीवहिं पालि विशाल निभावै ॥३
जे गुरु संत को सेवत लेवत पारख बोध न आलस लावैं ।
देखत अन्तस आपन मैलहि धोयहि धोय के स्वच्छ सुभावैं ॥
नाहिन उलझन और उलाहन नाहिन द्वेष रु संग बढ़ावैं ।

आपन ही पथ पूर में शूर हो काहेक दोष वृथा परचावैं ।।
जो कुछ साधु दशा हित आपनि काह बड़ो हम आँखि दिखावै ।।४
किंचित है अधिकार न अन्य पै आपहिं आप से आप बतावैं ।
आप स्वयं अपरोक्ष प्रकाशित क्यों चित चिंता परोक्ष को लावैं ।।
धन्य महा महिमा गुरुदेव की ध्यान व सेव सदा मन भावैं ।
काम रु क्रोध विकार गये सब प्रेम अभय गुरु के गुण गावैं ।।५

बीजक साखी प्रमाण (पारख बोध रहस्य वरिष्ठता)

पारस रूपी जीव है, लोह रूप संसार ।
पारस ते पारस भया, परख भया टकसार ।।

चौ०—परख प्रखावन जीवन केरा । यह व्यवहार यथार्थ निबेरा ।।
(पंचग्रन्थी)

बीजक शब्द में कथन हुवा है गुरु कबीर सिद्धा सार

भजन

भूला लोग कहै घर मेरा ।
जा घर में तू भूला डोलै, सो घर नाहीं तेरा ।।१।।
हाथी घोड़ा बैल बाहना, संग्रह कियो घनेरा ।
बस्ती में से दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा ।।२।।
गाँठी बाँधि खर्च नहिं पठयो, बहुरि न किये फेरा ।
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मिया का डेरा ।।३।।
नौ मन सूत अरुझि नहिं, सरुझयो जनम २ उरझेरा ।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, यह पद का करहु निबेरा ।।४।।

लक्ष्य सार—यह माटी का घर तन तन से इकत्र किये जगह जमीन हाथी घोड़ा बैल रुपिया पैसा तमाम संग्रह यह तन छूटते ही छूट जायेगा, लोग वस्ती मेसे बाहर डाल देंगे आप इतनी यहाँ की सुधि बुधि भूल जायेंगे कि कभी देखने भी नहीं आयेंगे और न विदेश गामी नौकरी वाले व्यक्ति के समान घर के लिये कुछ पैसा ही भेजेगें। आप चेतन की बीबी-वृत्ति है, हरम महल-गर्भवास है, मियाँ आप जीव है—लीजिये आपका मुकाम गर्भवास हुवा। नौ तत्व, पंच विषय और चितचतुष्टय अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध और चितमन बुधि-अहंकार ये नौ मन-मानन्दी जाल में सूत जीव आसक्त हो रहा है, यही बात जनम जनम में रही आज भी वही बात! सद्गुरु कबीर देव कहते हैं भाई इस मनुष्य देह में तो निर्णय करके सर्व मिथ्या राग से मन हटाय चित्त वृत्तियों का निरोध करलो तब चित्त वृत्ति निरोधक आप चेतन अविचल स्वरूपस्थ रहेगा यह

तन पाने का परम लक्ष्य निश्चय कर लो ॥ ४ ॥

यह बात सदा सामने रखिये—

'अभ्यास आदत व इच्छा कलपना ।
जब तक न छूटेगा तब तक जलपना ॥
मिलो जाके जल्दी गुरू पारखी से ।
यथारथ परख ले भरम भास खीसे ॥

[निर्मल सत्य ज्ञान प्रभाकर]

अन्तिम मंगल कल्याणकारी चेष्टा

(१)

वार्तिक—अब मैं प्रथम गुरुवर श्रीकबीर साहेब के चरण कमलों की बन्दना करके उनके सत्य सिद्धांत को धारण करता हूँ, जो सत्य भूमि सत्य स्व पारख बोध में शांत एकरस हैं ऐसे सत्योपदेष्टा सद्गुरु श्री कबीर देव के रविवत प्रकाश पुञ्ज सद्ग्रंथ बीजक टकसार द्वारा प्रकाशित उस पारख सिद्धांत का मैं निरन्तर आश्रय लेता हूँ। जो सर्व कल्याण केन्द्र है। परम भद्र मंगलमय विशद भूमि है।

(२)

आपको शिक्षा से प्रभावित अब मैं सर्व विवेकी पारखी सन्तों को नमस्कार करता हूँ। जो साधु गुण सम्पन्न परोपकारी निर्विकारी हैं, उन्हें मैं गुरुपद रूप जानकर सेवा शरण चाहता हूँ और बीजक से लेकर वैराग्य शतक तिमिर भास्कर आदि समस्त पारखी सत्यन्यायी कृत सद्ग्रन्थों को आदर देता हूँ। यथावत गुण सिद्धांत ग्रहण के लिये उल्लसित हूँ।

अब मैं निज बोधक मान्यवर श्रद्धेय सद्गुरु श्री विशाल देव के शरण में रहता हूँ तिनके दासों के दास बन के आपकी सदा सेवा शरण चाहता हूँ आप जो चार ग्रंथ रचना किये हैं भवयान मुक्तिद्वार सत्यनिष्ठा और नवनियम, इन्हें भ्रमरवत पान कर अन्तिम स्वरूप स्थिति चाहता हूँ। आप का परिचय कितना हृदयग्राही धर्म सम्मत है।

साखी—गुरु कृपा औ संत मिलि, जो मोहि दीन्हा कोष।
सोई लै दरशित किया, प्रथम कहाँ यह होश॥

अंतिम निवेदन, सत्य निर्णय ग्राह्य

* भजन *

जो सत्संग में मन लगाये हुये हैं ।
वही दोष दुर्गुण दुराये हुये हैं ॥टेक॥
शोक सब दिल को जलावै वाह्य सुख से क्या हुवा
शूल पीड़ित सेज सुख क्या हाय हाय व्यथा मुवा
सब ओर तो करना हि कुछ सब ओर तो सहना पड़े
इस हेतु सत्यहिं के लिये हे जीव तूँ क्यों ना अड़े
अमित शक्ति गुरु बल सुझाये हुये हैं ॥१॥
बहते हुये तट देखना अधिकार सबका जान लो
पापी मलिन बंधन पतित भी यान औषध ठान लो
मूल नेत्र को फोड़ के चस्मा भला क्या लाभ दे
निज रूप ही जब ज्ञान नहिं तब क्या भला कुछ रामदे
जो पर्दा हटा रवि उगाये हुये हैं ॥२॥
पारख स्वस्थिति पुष्टिहित नित २ पढ़ो सद्ग्रन्थ को
सब मर्म संतन से लखौ अविनाशि धन सत्पंथ को
ज्ञाता स्वयं नित प्राप्त है आवर्ण भंजन कीजिये
इस हेतु से शुभ नेम प्रेम सुपंथ स्वीकृत कीजिये
जो पारख प्रकाशी प्रखाये हुये हैं ॥३॥

आरती-प्रार्थना

जय जय सद्गुरु देव हरे। जय जय पारख देव हरे॥
सत्य अहिंसा विरति विमल पथ, अनुपम तेज लखे। प्रभु अ०
गुरु दर्बार कमी कुछ कैसे, सच्चिद शांत सखे॥ जय जय
प्रभु निःस्वार्थ अचाह जगत से, देखत जीव बहे। प्रभु दे०
पारख ज्ञान यान बैठाये, डूबत बाँह गहे॥ जय जय
जड़ चेतन दुइ वस्तु अनादी, बन्धन मोक्ष कहे। प्रभु बं०
सत्य यथारथ बोध उदय रवि, कैसे बन्ध रहे॥ जय जय
गुरुपद तुल्य कहाँ कुछ पाइय, सन्मुख पतित परे। प्रभु स०
दोउ कर बद्ध शीश दै सेवक, गुरुपद पद्म धरे॥ जय जय
पत्र पुष्प फल माल सु चन्दन, पूजा सविधि करे। प्रभु पू०
तन मन धन यश प्रभु को दे बलि, श्रद्धा शुद्ध भरे॥ जय जय
अजर अमर अविकार स्वपद लहि, जीवन सफल किये। प्रभु जी०
पुनि न भेंट त्रय ताप मनोभव, ऐसी युक्ति दिये॥ जय जय
संत भक्त सज्जन सब हर्षित, पारख नित्य गहे। प्रभु पा०
सेवा शील मधुर शुभ निर्मद, सब सद्भाव लहे॥ जय जय
यह आरति गावत प्रभु ध्यावत, दिन दिन भाव घने। प्रभु दि०
प्रेम सहित गुरु नेम निबाहत, पूरण काज बने॥ जय जय

साखी

गुरु से निज को चीन्ह भै, गुरु से गुरु को चीन्ह।
गुरु से बंधन चीन्ह भै, गुरु से निज मग लीन्ह॥

गुरु से गुरु को मानता, गुरु से जगहिं अभाव ।
गुरु से गुरू न कुछ रहा, गुरु से निज ठहराव ॥
गुरु की महिमा अमित है, यहि से पार न कोय ।
और चहै भटकै तहाँ, इतही खोजे होय ॥
संत पारखी मम शिरे, जो मन मानी पार ।
हानि लाभ तिनके नहीं, जिनको जगत असार ॥

गुरु गीता (गुरुनिर्णय)

न गुरोरधिकं तत्वं, न गुरोरधिकं तपः ।
गुरोः ज्ञानात्परं नास्ति, तस्मै सद्गुरवे नमः ॥१
ध्यान मूलं गुरोमूर्त्ति, पूजा मूलं गुरो पदम् ।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरो कृपाः ॥२
गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो, गुरो निष्ठाः परं तपः ।
गुरोः परतरं नास्ति, नास्ति तत्वं गुरोः परम् ॥३
दो०—बन्दौं सन्मुख पारखी, शीश भेंटधरुँ हाथ ।
बचन उचारौं बन्दगी, सत्य प्रेम के साथ ॥

(पंचग्रन्थी)

मुद्रक—श्री विशेश्वर प्रेस बुलानाला वाराणसी ।
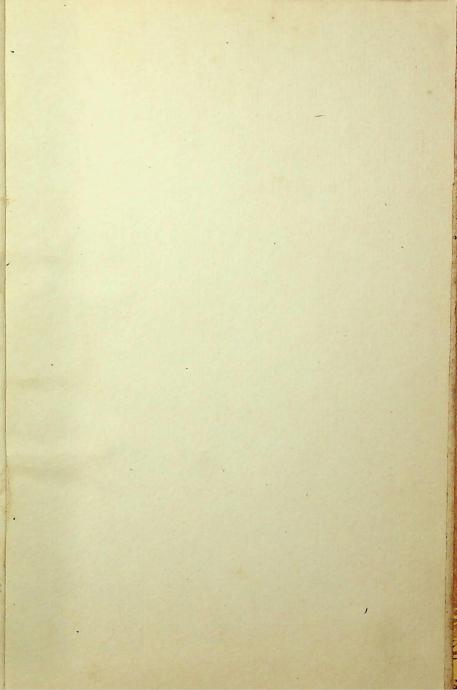
सद्गुरु श्रीविशाल साहेब के आधार में प्रकाशित पुस्तकें—

१	भवयान सटीक	१०'००
२	मुक्तिद्वार सटीक	७'००
३	सत्यनिष्ठा सटीक	६'००
४	मुमुक्षुस्थिति शिक्षा प्रवाह	५'००
५	अपनी जागृति	४'००
६	सत्यज्ञान प्रकाश व ज्ञान मार्तण्ड तथा नवनियम सटीक	४'००
	नवनियम सटीक	१'००
८	भवयान मूल	२'००
९	मुक्तिद्वार मूल	१'८०
१०	सत्यनिष्ठा मूल	०'४०
११	विशालि वचनामृत (भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा मूल एक में)	४'००
१२	प्रकाश भजनावली	०'५०
१३	गुरुपद विनोद	१'५४
१४	शिक्षावली	१'३४
१५	प्रकाश भजनावली	०'५४
१६	गुरु महिमा रहस्य	०'२७
१७	सद्गुण शतक	०'२०
१८	दुखहरन छन्दावली	०'१६

पुस्तक मिलने का पहला पता

बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर,

राजादरवाजा वाराणसी–१

पुस्तक मिलने का दूसरा पता

भक्त दस्तगीर (कबीरपंथी) मु० पो० सआदतगंज

जिला बाराबंकी।